हिन्दी पुस्तक एजेन्सी माला—२२ संख्या

राय बहादुर श्रीयुत कालीप्रसन्न घोष सी० आई० ई० कृत

"भ्रान्ति विनोद" का हिन्दी अनुवाद—

गोलमाल

अनुवादक—
आरा निवासी—
पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६, हरिसन रोड,
कलकत्ता। सब तरहकी पुस्तकें मिलनेका स्थान
— साहित्य उद्यान कार्यालय,
अजमेर।

प्रथमवार] सं० १६७६ [मूल्य १।)

प्रकाशक—
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर—
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

भूमिका

—+०+—

अभी उस दिन हमारे स्नेह-भाजन पण्डित नरोत्तम व्यासने हमें बंगलाके चिन्ताशील सुलेखक राय बहादुर श्रीयुक्त काली-प्रसन्न घोष सी० आई० ई० महोदयकी "भ्रान्ति विनोद" नामक पुस्तक पढ़नेके लिये दी और देते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा भी की। उसी दिन हमने उसे आद्योपान्त पढ़ डाला और हमारा विचार उसका अनुवाद करनेका हुआ। बस झटपट हमने अनुवाद भी कर लिया और प्रकाशकोंके परम उत्साहसे महीने सवा महीनेके भीतर ही यह पुस्तक प्रकाशित भी हो गयी। इस अनुवादमें हमने और सब तो ज्योंका त्यों रहने दिया है, केवल वही अंश उड़ा दिया है, जो बंगाल, बंगाली और बंगला भाषाके ही सम्बन्धमें लिखे गये हैं। उन अंशोंको हमने सार्व-देशिक बनानेका प्रयत्न किया है। आशा है, कि यह पुस्तक बंकिम बाबूके "चौबेका चिट्ठा" और "लोक रहस्य"की भांति हिन्दी-संसारमें वाञ्छनीय होकर आदर प्राप्त कर सकेगी।

'भ्रान्तिविनोद" नाम हिन्दीमें अच्छा न लगा, इसीलिये हमने इसका नाम '*गोलमाल*' रखा है और बिना स्वीकृति प्राप्त किये ही "श्रीमती" गोलमाल कारिणी सभाके "गोलमाला-नन्दजी" को समर्पित कर दिया है, जिससे इसका यह नाम सार्थक हो जाय।

६।३, बलराम दे स्ट्रीट,
कलकत्ता
२०—१२—२१

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

विषय सूची

समर्पण

हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक और सुकवि,

हमारे सच्चे सुहृद,

"गोल-माल-कारिणी सभाके"

अन्यतम जन्मदाता,

स्वर्गीय पण्डित मन्नन द्विवेदी, गजपुरी,

-: की :-

वैकुण्ठ-विहारी आत्माको

यह **'गोलमाल'**

सादर, सप्रेम, सभक्ति

समर्पित है ।

—ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा ।
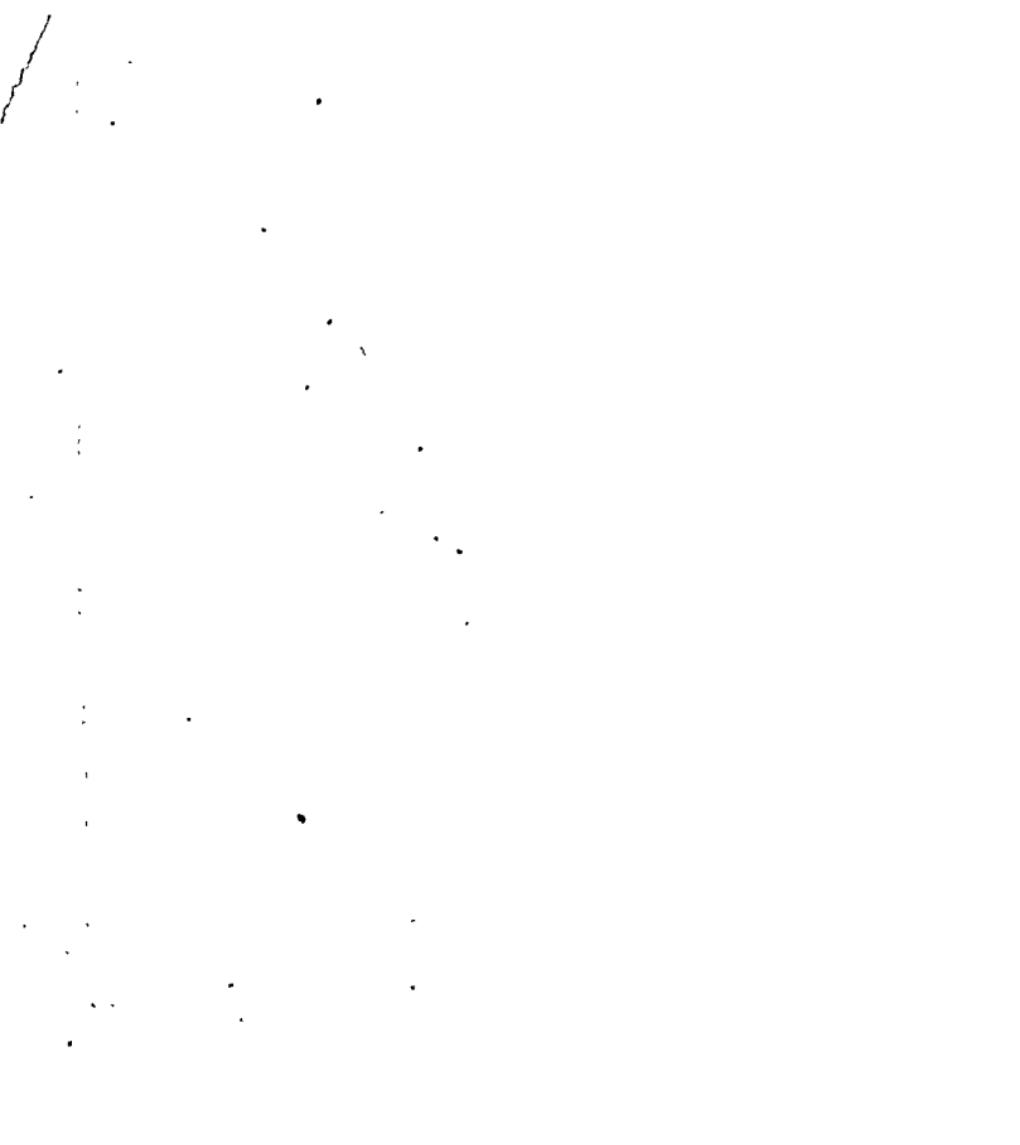
गोलमाल

रसिकता और रसीली बातें

सच पूछो, तो हमारा देश रसिकताका एक समुद्र ही है। पुराण बनानेवाले क्षीर—समुद्र, लवण—समुद्र, सुरा—समुद्र आदि सात समुद्रोंका हाल लिख गये हैं। लेकिन यदि वे दिव्य नेत्रोंसे हमारे देशका वर्त्तमान इतिहास देख पाते, तो इस देश-का नाम रस-समुद्र या रस-द्वीप रख देते, फिर तो पुराणोंके भूगोल शास्त्रमें सातकी जगह आठ समुद्र होते।

बाबा ज्ञानानन्दके शब्दकोशमें तो इस देशका एक नाम गुलामखाना और दूसरा रसका भाण्डार भी। इसका कारण यह है कि इस देशके क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित दोनों ही श्रेणियोंके अधिकांश लोग दूसरोंकी आखोंसे देखते, दूसरोंके कानोंसे सुनते तथा दूसरोंकी ही जिह्वाद्वारा सब नये पुराने तत्त्वोंकी चाशनी, चख कर अपनी तबियतदारीका इज़हार करते हैं। ऐसे पराये मुंह जोहने वालोंके ललाटपर दासत्वकी दूरसे दिखाई देनेवाली सामुद्रिक रेखा और होठों तथा आंखों-

की कोरमें रसिकताकी विचित्र रेखा सदा समान भावसे झलकती ही रहती है।

आजतक अपने बेटे—बेटियोंका नामकरण करनेमें यहां वाले अपनी रसिकता झलकानेसे बाज नहीं आते इसीसे बेटेका नाम रसराज या रसिकलाल, कन्याका छबीली, भाईका मनोहर या मदन मोहन, बहनका लीलावती, कलावती या कामिनी रख ही देते हैं। नाम रखनेमें ऐसी रसिकताका परिचय शायद दुनियांमें और कहीं नहीं मिल सकता।

भाई किसी देशके नामोंका पाठ करना एक प्रकारसे उस देशका प्रकृति-पाठ करना है। रूसवाले बड़े ही पितृभक्त होते हैं और उन्हें अपने बापदादोंके बड़प्पनका बड़ा ख्याल रहता है। इसलिये जैसे हमारे यहां दशरथके बेटेको दाशरथि, जनककी बेटीको जानकी कहनेकी चाल है, उसी प्रकार उनके नामोंमें पितृ-परिचय मौजूद रहता है। उदाहरणके लिये, निकोलोविच और पिटरोविच आदि नाम पेश किये जा सकते हैं। उनकी भाषामें युवराजका पर्यायवाची कोई शब्द ही नहीं। वहांके युवराज जारविच अर्थात् जारके पुत्र कहे जाते हैं।

अँगरेज़ लोग आज ज्ञानमें, गुणमें, वाणिज्यमें, व्यापारमें और राजनैतिक कौशलमें, समस्त सभ्य-संसारके सिरमौर हो रहे हैं और सब तरहकी सांसारिक उन्नतियोंके पथप्रदर्शक और अगुआ माने जाते हैं ; परन्तु यदि कोई इस क्षत्रिय और बनियेके गुणोंसे भरी हुई शक्तिशाली जातिका इतिहास विज्ञानका चश्मा आँखोंपर

बढ़ाकर पढ़ें, तो उसे मालूम हो जायेगा, कि विज्ञानकी शिक्षा, विज्ञानकी समालोचना और सब तरहसे विज्ञानका अनुशीलन करना ही इस जातिकी सब उन्नतियोंका आदि कारण है। ये लोग विज्ञानसे किस प्रकार नीचेसे ऊपरतक लदे हुए हैं अथवा किस तरह विज्ञानके समुद्रमें आकण्ठ मग्न हो रहे हैं, यह बात उनके नामोंको देखनेसेही साफ़ मालूम हो जाती है।

विज्ञानकी आराधनाकी चीज़ जड़-जगत् ही है ; इस जड़-जगत्का सबसे बड़ा तत्त्व जो इन्होंने ढूँढ़ निकाला है, वह विकासवाद (Evolution) है अँगरेज़ लोगोंका आराध्य देवता जड़-जगत् है और उनके नामोंका इतिहास एक तरहसे विकास-वादका संक्षिप्त इतिहास है। विकास-वादके भिन्न-भिन्न अध्यायोंमें यह जड़-जगत् प्रास्तरिक, धातव, भौमिक, औद्भिद और जान्तव आदि विकास-क्रमोंमें बँटा हुआ है। अँगरेज़ोंके नाम भी इसी प्रकार पत्थर, धातु, भूमि उद्भिद् और जन्तुओंके नामोंसे मिलते-जुलते हैं और इतनेही भागोंमें बँटे हुए हैं। इससे मालूम होता है, कि इस जातिके प्राण-देवताने बहुत ढूँढ़-खोज और समझ-बूझकर ये नाम चुने हैं। यदि पाठकोंको न विश्वास हो, तो नीचे दी हुई सूचीमें इस बातका नमूना देख लें। सूची ज़रा बड़ी है, पर पाठक ऐसा न समझें कि उसमें जगह-जगह रसिकताकी बौछार और ज्ञान-विज्ञानकी बातोंकी बघार नहीं है। अच्छा, सुनिये :—

पत्थर सम्बन्धी नाम—मिस्टर स्टोन (Mr. Stone) अर्थात्

श्रीमान् पत्थरजी महाशय। इसी सूचीमें मिस्टर ग्लेड स्टोन (Glad Stone) अर्थात् हंसते हुए पत्थर और लिविंग स्टोन (Living Stone) अर्थात् जीते जागते पत्थर। ये दो नाम सारे संसारमें प्रसिद्ध हैं। श्रीमान् पत्थरजी महाशय की बीबी साहबा कहीं हमारे देशकी स्त्रियोंकी तरह चुहलबाज़ होती, तो कभी कभी अदाके साथ मचलकर ज़रूर ही कह उठती " अजी जाओ, तुम तो पत्थर हो, पत्थर !"

२—धातु—सम्बन्धी नाम—मिस्टर गोल्ड (Mr. Gold) अर्थात् सोना साहब। गोल्ड नामके कई आदमी साहित्य और वाणिज्य दोनों दुनियांओंमें अच्छा नाम पा चुके हैं। इसी सूचीमें ब्रास (Brass), सिल्वर (Silver) आयरन्स (Irons) और स्टील (Steel) आदि नाम* भी आ जाते हैं। 'स्टील' अर्थात् इस्पातका बोध करानेवाला नाम तो ऐडिसन नामक प्रसिद्ध अंगरेज लेखकके साथ रहनेसे अंगरेजी साहित्यमें सुनहले अक्षरोंमें लिखा जा चुका है। हमलोगोंकी आंखोंमें और कोई धातु नहीं जंचती, पर हमारे नाटक उपन्यासोंमें स्वर्ण, सुवर्ण सोना और कञ्चनके साथ कोई और शब्द जोड़कर औरतोंके नाम बना लिये जाते हैं।

Brass (ब्रास) पीतल।

Silver (सिल्वर) चांदी।

Irons (आयरन्स) लोहा।

Steel (स्टील) इस्पात।

३—भौमिक या भूमि सम्बन्धी नाम मिस्टर लैण्ड (Land) अर्थात् भूमि महाशय। इस तालिकामें (Mr. Acre) मिस्टर एकर अर्थात् 'तीन बीघे जमीन' और मिस्टर फोर एकर (Four Acre) अर्थात् बारह बीघे जमीन भी स्थान पा सकते हैं। नदी, नाले, झील तालाब और रास्तोंका बोध करानेवाले नाम भी निश्चय ही इसी सूचीमें आ जाते हैं। इसीलिये मिस्टर रिवर्स (Mr. Rivers) मिस्टर ब्रूक (Mr Brook), मिस्टर लेक (Mr. Lake) मिस्टर पूल (Mr. Pool) और मिस्टर रोड आदि नाम भी हम इसी श्रेणीमें दर्ज कर देते हैं।* हमारे यहां जो गंगा, जमुना, नर्मदा, तरंगिणी और सरसी आदि नाम स्त्रियोंके पाये जाते हैं, उनसे कभी कभी इस तरहके अंगरेजी नामोंका खूब सुन्दर सादृश्य देखनेमें आता है।

४—औद्भिद नामोंकी सूचीमें सबसे पहले मिस्टर ट्री (Mr. Tree) अर्थात् वृक्ष महाशयका नाम लिखने योग्य है। वृक्षोंकी विशेष गणना करते समय मिस्टर मैंगोज (Mr. Mangoes) अर्थात् आम्र महाशय, मिस्टर हाथर्न (Mr Haratharn) अर्थात् सख्या नाशी, मिस्टर फ्लावर (Mr. Flower) अर्थात् कुसुम या फूल, मिस्टर रोज (Mr Rose) अर्थात् गुलाब, मिस्टर उड-हेड (Mr. Wood head) अर्थात् काष्ट मस्तक और मिस्टर उडवर्न अर्थात् काठ जलावन आदि नाम आजकल सब लोगोंको

* Rivers नदियां। Lake झील। Brook नाला। Pool ताल। Road सड़क।

परिचितसे हैं ! कुसुम और गुलाब इन दोनों नामोंको लेकर तो हमारे यहां स्त्रीपुरुषोंमें बड़ा प्रेम कलह हो जा सकता है, क्योंकि स्त्रियों और पुरुषोंमें ये दोनों नाम बहुतोंके पाये जाते हैं। राइस (Rice) अर्थात् 'चावल' काटन (Cotton) अर्थात् 'रूई' और गार्लिक (Garlic) अर्थात् 'लहसुन' आदि नाम भौमिक पर्यायमें आवेंगे या औद्भिद-पर्यायमें, इसका फैसला पाठकोंपर ही छोड़ दिया जाता है।

५—औद्भिदके बाद जन्तु-जगतका नम्बर आता है। जन्तु जगतके सामने अंगरेज जातिके कितने प्रसिद्ध पुरुष अपने अपने नामके लिये ऋणी हैं, यह गिनकर नहीं बतलाया जा सकता। नीचे हमने पक्षियों और जंगली जानवरोंके नामोंसे मिलते जुलते नाम चुनकर रख दिये हैं ? इन्हें ही देखनेसे पाठक हमारी मुख्य बातको सच समझ लेंगे।

पहली पक्षियोंके नामोंकी सूची—पक्षी जातिका बोध कराने वाला अंगरेजीका 'बर्ड' (Bird) शब्द ही है। मिस्टर बर्ड विलायतके एक बड़े नामी ग्रामी आदमी थे। पक्षियोंके बसेरे की जगह 'उड' (Wood) अर्थात् जंगल है ? बर्ड और उड इन दोनों शब्दोंको मिलाकर जो समास बना है, वह कैसा सुन्दर नाम हो गया है— (Bird Wood) (बर्डउड) पक्षियोंकी रूप रंगके अनुसार अनेक जातियां हैं—मोर, बुलबुल, कबूतर और कौआ आदि। इन सब नामोंके अनुसार अंगरेजोंके पीकौक (Pea-cock) नाइटिंगेल, डव् (Dove) और क्रो (Crow)आदि

नामोंमें पाये जाते हैं। मार्टिन (Martin), राबिन (Robin) और स्वालो (Swallow) आदि नाम भी इसी सूचीमें आ जाते हैं। बैडकौक (Badcock) (अर्थात् 'मन्दकुक्कुट') नाम भी इसी श्रेणीमें आ जाता है। शायद बहुतोंको यह नाम याद भी होगा क्योंकि इस नामको लेकर नवयुवकोंमें बड़ी दिल्लगियां हो चुकी हैं! पाठकोंको उन दिल्लगियोंकी याद करा देना हम इस समय अच्छा नहीं समझते। 'बुलबुल' का नाम उर्दू कवियोंकी बड़ी प्रिय वस्तु है।

दूसरी, जंगली जानवरोंकी सूची—जंगली जानवरोंके नाम लेते समय फाक्स, (Fox)* हाग (Hog) बुल (Bull) उल्फ (wolf) और स्टैग (stag) आदि नाम बहुत जल्द याद आ जाते हैं क्योंकि हर एक अंगरेजी पढ़नेवालोंके कानोंमें ये प्यारे प्यारे मनोहर नाम पड़ चुके हैं। आज भी हमलोग पार्लामेण्टके प्रातः स्मरणीय सभ्य स्वर्गीय मि० फौक्स (fox) का नाम याद-कर श्रद्धासे उनके आगे सिर झुका देते हैं और उनके पारमार्थिक ग्रन्थों और पत्रोंको पढ़कर आनन्दसे भर जाते हैं। हमारे देश-में इस तरहका नाम आजकल शायद एक भी न मिलेगा। पुराने जमानेके वृकोदर और अश्वत्थामा आदि नामोंमें जानवरोंकी बू है या नहीं, इसकी आलोचना करना साहित्यिकोंका काम है।

जङ्गली जानवरोंके बाद वनमानुषोंका नम्बर आता है।

---

* Fox (फाक्स) लोमड़ी। Hog (हाग) सुअर। Bull (बुल) सांड़। wolf (उल्फ) भेड़िया। Stag (स्टैग) हरिण।

मेम बनी हुई काली बीबियाँ काव्य-रसके फ़ौआरा हैं। उनके बालोंके शृंगारसे लेकर नाज़ुक पैरोंकी चालतक कविताईसे भरी हुई है। उनके लिये यह बात बड़े सौभाग्यकी है, कि उन्हें साँझको सुख-समागमके समय दिनभर काम करते-करते थके हुए स्वामीको "हे शृंगाल अथवा "हे वृक! (wolf)" आदि रस विरोधी और कानोंको दुःख देनेवाले नामोंसे नहीं पुकारना पड़ता। यदि ऐसा होता तो आज हमारे देशके घर-घरमें, नित्य साँझ-सवेरे और रातको ठहाका लगा करता और लोगोंके हँसते-हँसते पेटमें बल पड़ जाया करते—हँसीका वह फ़ौआरा जारी होता, हास-परिहासकी ऐसी ऊँची २ तरङ्गें उठतीं, जिनकी हमलोग कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन रसिकता या रस-प्रियताके लिहाज़से हमारे मधुर नामोंने जैसी मूर्त्ति धारण कर ली है, वह पुरुषोंको शोभा देती है या नहीं और अच्छे पुरुषोंको उससे सुख या प्रीति प्राप्त होती है या नहीं, इसमें बहुत सन्देह है। लेकिन इसमें सन्देहकी क्या बात है? जो लोग स्वजाति-जीवन-स्रोतमें शक्ति और सामर्थ्यका सञ्चालन करनेके लिये बेताल और बेसुरा राग अलापते फिरते हैं और नाचते-कूदते हुए आल्हा और बिरहा छन्दोंमें कविताएँ गा-गाकर जातीय हृदयकी आशा और आकांक्षा उगला करते हैं, ऐसे वीरेन्द्र-केसरी, सुर-सिक और धुरन्धर पुरुषोंके नाम यदि कामिनी-कान्त, यामिनी-भ्रान्त, कुमुदनी-दान्त, विरहिणी-श्रान्त, रमणीरञ्जन, सुन्दरी-गञ्जन और भामिनी भ्रम-भजन न रखे जायँ, तो और कौनसे नाम रखे

जायँ ? कवि समाजमें बड़ी कीर्ति पाये हुए महाकवि शेक्सपियर कह गये हैं,—"नामसे क्या काम ? गुणका मान है सब ठौर ही। देगा गुलाब सुगन्ध चाहे नाम रख लो और ही।"* हम कवि नहीं हैं, इसीलिये इस बातको माननेके लिये तैयार नहीं। हमारा यह ठीक विश्वास है, कि नामसे और कुछ हो चाहे नहीं, पर उससे देशकी रुचि और सामयिक प्रकृतिकी तहतकका पता चल जाता है। आजसे पचास वर्ष पहले इस देशके भले आदमी देवी देवताओंके नामके सिवा लड़के-लड़कियोंके और नाम नहीं रखते थे। इसीसे शिवनाथ, शम्भुनाथ, वैद्यनाथ, भोलानाथ, वासुदेव, कृष्णप्रसाद, गुरुप्रसाद और दुर्गाप्रसाद आदि नामही सब जगह सुन पड़ते थे। आज उस धर्म-भावका लोप हो गया है, इसीसे नाम रखनेमें भी फैशन घुस गया है।

प्राचीन आर्य-वीरोंके नाम भरत, शत्रुघ्न, भीष्म, अर्जुन, बलदेव, सात्यकि, दुर्योधन और भीम आदि होते थे; ऋषियोंके नाम वाल्मीकि, विश्वामित्र, वसिष्ठ और व्यास आदि होते थे, शास्त्रकारोंके नाम पाणिनि, पतंजलि, कात्यायन और कणादि आदि रखे जाते थे और देशके सर्वसाधारण भलेमानसोंके नाम शतानन्द, सुरजित्, पुण्डरीक और प्रह्लाद आदि हुआ करते थे। थोड़े दिन पहले ही इस देशमें शिवाजी, प्रतापसिंह, संग्राम-

"what is in a name ? that which we call a rose Shakespeare by any other name would smell as sweet"—

सिंह, पृथ्वीराज, शूरसेन, वीरसेन आदि नाम पाये जाते थे। इसके बाद जब यवनोंकी अत्याचारी लीला आरम्भ हुई और चारों ओर दुर्गतिके चिह्न दिखाई देने लगे ; शिक्षा और सभ्यताका स्रोत रुकसा गया ; विद्या-बुद्धि और महत्त्वका गौरव, परायी जूतियाँ जीभसे चाटनेके नवीन गौरवके सामने फीका पड़ गया ; तब अजीब अजीब नाम सुनाई पड़ने लगे, बड़े-बड़े ब्राह्मण भी खाँ साहब कहे जाने लगे। आज भी उस समयकी याद करानेके लिये बहुतसे बंगाली और कश्मीरी ब्राह्मण मुसल्मानी ज़मानेकी उपाधि अपने नामके साथ लगाये हुए हैं। आज बहुत दिनोंकी बड़ी-बड़ी तपस्याओंके बाद विलास-समुद्रमें डूबे हुए सुशिक्षित, सुसभ्य, सुरुचि-सम्पन्न बाबुओंके नाम रमणी, कामिनी, कुमुदिनी, विमला, कमला, देवती, मोहिनी आदि हो गये हैं*। हो सकता है, कि किसी दिन 'प्रेम-विलास' नाटकके अभिनयमें किसी नये रसका नया गीत सुनकर बाबू लोग अपने पुत्रोंके नाम "ललित, लवङ्ग, लता, लीला, वल्लभ, ध्वज" और छोटे भाइयोंके नाम 'प्रेममयी-पद-पङ्कज-रज' के ढंगके रखने लग जायँ। ज़माना बदलता रहता है और ज़मानेके

---

* पाठक आश्चर्य न करें। नामको छोटा करके पुकारनेकी चाल सबमें है। यदि किसीका नाम रमणीरञ्जन हुआ, तो उसके यार-दोस्त उसे पूरा नाम न लेकर 'रमणी' ही कहकर पुकारेंगे और विमलाप्रसादको केवल 'विमला' कहकर पुकारनेमें किसीको सङ्कोच नहीं होता। इसी तरह औरतोंमें भी व्रजसुन्दरीको केवल 'व्रज' और 'सिन्धु बाला' को केवल 'सिन्धु' कहकर पुकारा जाता है।

मुताबिक़ रुचि भी बदला करती है। इसलिये नये-नये ढंगके नाम भी होने ही चाहिये।

नामोंमें जैसी रसिकता घुस पड़ी है, वैसीही साहित्योंमें और सामाजिक रीति-नीतिमें भी उबल पड़ी है। गांववाले बड़े रसिक हो गये हैं। उनमें भी जो बूढ़े हैं, उनके लिये आल्हाही वेद है, गोपीचन्द-भरथरी पुराण है और नौटंकी चौबोला शास्त्र है। इनमें लिखी हुई दो-चार फुटकर कविताएँ किसी बैठक या मजलिसमें सुना देनेसे ही वे अपनेको मल्लिनाथ या मम्मट भट्ट-का परनाती समझने लगते हैं और अभिमानसे गरदन टेढ़ी कर लेते हैं। बात-चीतमें वे किसीकी माँ, सास, लड़की या बहनको इशारेसे कुल-कलङ्किनी या पापिनी बना देते हैं और इसीसे अपनेको बड़ा भारी रसिक समझकर मारे खुशीके अकड़ जाते हैं।

इनमें जो नये रसिया हैं और दस बारह दिन गाँवकी पाठ-शालामें जाकर दो-चार अक्षर हिन्दीके पढ़ आये हैं या किसी भले आदमीके मुँहसे 'बाइरन' नामके प्रसिद्ध वैज्ञानिक लेखकका* हाल सुन चुके हैं अथवा किसी गाँवके अन्धे, गाँठके पूरे, लक्ष्मीवाहन-का जी खुश करनेके लिये किसी दिन कठपुतलीकी तरह नाच चुके हैं, ऐसे रसिक लोग साधारणतः कुढ़बरके श्याम सुन्दर, नाटक-उपन्यास-रूपी कमल वनके रसिया भौंरे और प्रेम-सरो-वरके अमृतके प्यासे मेंढक हैं। दो-चार [illegible] याद हैं, बस

इसीसे वे अपनेको बड़ा भारी विद्वान् समझते हैं। समय समय-पर वे उन्हें ही दुहराया करते हैं और मौक़े-मौक़ेपर बाबू मैथिली-शरण गुप्त नामक एक नये ढंगके नाटककार, पं० बदरीनाथ भट्ट नामके एक बड़े भारी वैज्ञानिक और चन्द्रकान्ता नामके उदि-तत्वके रचयिता बाबू देवकीनन्दन खत्रीकी निन्दा या प्रशंसा करनेसे भी बाज़ नहीं आते। यदि वे ऐसा न करें तो लोग उन्हें रसिक कैसे समझें? यदि देशमें ऐसी रसिकता न फट पड़ी होती, तो कविके बैठकखानेमें एक ओर पिता और दूसरी ओर कन्या, दोनों एक ही संग बैठकर काव्य-रसकी प्यास कैसे बुझाते? रामलीलाओंमें रामके विरह-शोकसे दुःखिता कौशल्याके मुँहसे गाना कैसे गवाया जाता? अधपढ़ी कुल-कामिनियाँ, अधपढ़े नवीन रसिकोंकी तरह शिक्षा और सभ्यताके नामपर स्त्रियोंकी स्वाभाविक लज्जा और शालीनताको धो बहानेका उत्साह कहासे पातीं?

नगरवासी रसिकोंको प्राचीन कालमें 'नागर' कहा करते थे। अबतक वे नागर ही बने हुए हैं वेशमें नागर, भूषामें नागर एवं रसिकता और रसीली बातोंमें तो सोलहों कलाओंसे सुशो-भित अद्वितीय नागर हैं। उनके मुंहपर सदा बेमतलबकी हंसी मौजूद रहती है। मनुष्यके मर्मान्तक दुःख और शोकके अन्त र्भेदी आर्त्तनादपर भी वे मुस्कराना नहीं छोड़ते। उनकी हर बातमें मुस्कराहट है और वे हंसकर सारी दुनियांको जीत लेना चाहते हैं। अल्लाहमियाके चिड़ियाखानेके ये भी एक अद्भुत जीव

हैं। जैसे आगमवादी तान्त्रिकोंके विचारसे मदिरा गन्धसे शून्य सभी मनुष्य पशु हैं, वैसेही इन लोगोंके ख्यालसे धीर, गम्भीर और चिन्तापरायण व्यक्ति कोरे बगुला भगत और आलसी हैं। इनकी रसिकताकी सबसे बड़ी पहचान परायी निन्दा है। जो लोग खुले दिल और खुले मुंहसे जो भरकर परायी निन्दा नहीं करते; अच्छे अच्छे कामोंमें उत्साह दिखलानेवाले कृती पुरुषोंको पागल या पाखण्डी नहीं बनाते और देश या समाजकी भलाई करनेवाले कामोंको समयकी बरबादी और लड़कोंकासा खेल कह कर उस ओरसे आंख नहीं मोड़ लेते, उन लोगोंको ये लोग कुछ चोज ही नहीं समझते। इनकी रसिकताकी दूसरी पहचान स्वजाति द्रोह है। अपनो भाषा, अपना साहित्य, स्वदेशी आचार व्यवहार और स्वदेशी कपड़े पहनना तो इन्हें फूटी आंखों भी नहीं सुहाता। इसीलिये जो लोग हिन्दीकी चार सतरें लिखनेमें दो दर्जन ग़लतियां नहीं करते, एक बात कहने या लिखनेमें कमसे कम चार अंगरेजीके शब्द नहीं ठूंसते, अपनी मूर्खतापर आमोद या अभिमान करते हुए लज्जित होते हैं अथवा अपने देशमें पहले जो कुछ था, आज जो कुछ है और कल जो कुछ होगा, उस सबपर लानत और फटकार नहीं भेजते ऐसे लोगोंकी इनकी निगाहमें कुछ भी इज्जत नहीं है। इनकी रसिकताकी तीसरी पहचान, नटोंकी तरह अश्लील भाषण करना है। जिन शब्दोंको घृणाके मारे शब्द कोशसे निकाल बाहर कर दिया गया और जो भले आदमियोंके

इसीसे वे अपनेको बड़ा भारी विद्वान् समझते हैं। समय समय-पर वे उन्हें ही दुहराया करते हैं और मौक़े-मौक़ेपर बाबू मैथिली-शरण गुप्त नामक एक नये ढंगके नाटककार, पं० बदरीनाथ भट्ट नामके एक बड़े भारी वैज्ञानिक और चन्द्रकान्ता नामके उदि-तत्वके रचयिता बाबू देवकीनन्दन खत्रीकी निन्दा या प्रशंसा करनेसे भी बाज़ नहीं आते। यदि वे ऐसा न करें तो लोग उन्हें रसिक कैसे समझें? यदि देशमें ऐसी रसिकता न फट पड़ी होती, तो कविके बैठकखानेमें एक ओर पिता और दूसरी ओर कन्या, दोनों एक ही संग बैठकर काव्य-रसकी प्यास कैसे बुझाते? रामलीलाओंमें रामके विरह-शोकसे दुःखिता कौशल्याके मुंहसे गाना कैसे गवाया जाता? अधपढ़ी कुल-कामिनियाँ, अधपढ़े नवीन रसिकोंकी तरह शिक्षा और सभ्यताके नामपर स्त्रियोंकी स्वाभाविक लज्जा और शालीनताको धो बहानेका उत्साह कहासे पातीं?

नगरवासी रसिकोंको प्राचीन कालमें 'नागर' कहा करते थे। अबतक वे नागर ही बने हुए हैं देशमें नागर, भूषामें नागर एवं रसिकता और रसीली बातोंमें तो सोलहों कलाओंसे सुशो-भित अद्वितीय नागर हैं। उनके मुंहपर सदा बेमतलबकी हंसी मौजूद रहती है। मनुष्यके मर्मान्तक दुःख और शोकके अन्त भेदी आर्त्तनादपर भी वे मुस्कराना नहीं छोड़ते। उनकी हर बातमें मुस्कराहट है और वे हंसकर सारी दुनियांको जीत लेना चाहते हैं। अल्लाहमियांके चिड़ियाखानेके ये भी एक अद्भुत जीव

हैं। जैसे आगमवादी तान्त्रिकोंके विचारसे मदिरा गन्धसे शून्य सभी मनुष्य पशु हैं, वैसेही इन लोगोंके ख्यालसे धीर, गम्भीर और चिन्तापरायण व्यक्ति कोरे बगुला भगत और आलसी हैं। इनकी रसिकताकी सबसे बड़ी पहचान परायी निन्दा है। जो लोग खुले दिल और खुले मुंहसे जी भरकर परायी निन्दा नहीं करते; अच्छे अच्छे कामोंमें उत्साह दिखलानेवाले कृती पुरुषोंको पागल या पाखण्डी नहीं बनाते और देश या समाजकी भलाई करनेवाले कामोंको समयकी बरबादी और लड़कोंकासा खेल कह कर उस ओरसे आंख नहीं मोड़ लेते, उन लोगोंको ये लोग कुछ चीज ही नहीं समझते। इनकी रसिकताकी दूसरी पहचान स्वजाति द्रोह है। अपनी भाषा, अपना साहित्य, स्वदेशी आचार व्यवहार और स्वदेशी कपड़े पहनना तो इन्हें फूटी आंखों भी नहीं सुहाता। इसीलिये जो लोग हिन्दीकी चार सतरें लिखनेमें दो दर्जन गलतियां नहीं करते, एक बात कहने या लिखनेमें कमसे कम चार अंगरेजोके शब्द नहीं ठूंसते, अपनी मूर्खतापर आमोद या अभिमान करते हुए लज्जित होते हैं अथवा अपने देशमें पहले जो कुछ था, आज जो कुछ है और कल जो कुछ होगा, उस सबपर लानत और फटकार नहीं भेजते ऐसे लोगोंको इनकी निगाहमें कुछ भी इज्जत नहीं है। इनकी रसिकताकी तीसरी पहचान, मर्दोंकी तरह अश्लील भाषण करना है। जिन शब्दोंको घृणाके मारे शब्द कोशसे निकाल बाहर कर दिया गया और जो भले आदमियोंके

समाजमें अलग किये जाकर पाप निवासके कोठेमें गड़े हुए हैं, उन्हें ही ये लोग खूब चूमकर [illegible] करते हैं। जो लोग अपनी जिह्वासे ऐसी अशुद्ध भाषा बोलते हुए लिखते हैं, उनको ये लोग अच्छा आसन नहीं दे सकते। इनकी रसिकताकी सीधी पहचान, अपनी अपनी स्त्रियोंके सम्बन्धमें सब प्रकार ढंगोंसे प्रेम प्रलाप करना है। जो लोग सुनीति और सदाचारानुमोदित सुरुचिके सहारेसे अपनी सुख दुःखकी संगिनी, जीवनकी सहधर्मिणी और धर्म परिणीता भार्याको वेश्यासे भी बदतर बनाते हुए लज्जित और दुःखित होते हैं, उन्हें ये लोग कभी मान नहीं दे सकते। हाय ऐसेही रसिक शिरोमणियोंके हाथमें हमारे इस दुखिया देशके भविष्यत् कल्याणका फैसला है!

जब देशमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक नवीन जागरण फैल रहा है, देश अवनतिके गड्ढेसे सिर उठाकर उन्नतिके मैदानमें आनेके लिये तैयार हो रहा है, उस समय भी देशके कुछ लेखक और कवि पुराने ढंगकी कविताएँ और पुस्तकें लिखते जाते और गुलामीमें डूबे हुए लोगोंको शृंगारके लटके सुना रहे हैं, यह कितने दुःखकी बात है! ऐसे ही लेखक और कवि मान पाते हैं और उनकी रचनाओंके पाठक रसिक कहलाते हैं।

कहाँ तो लोगोंको गोस्वामी तुलसीदासकी रामायण पढ़नी चाहिये, केशवदासकी रामचन्द्रिकाका आनन्द लेना चाहिये और हाँ 'छबीलो भठियारिन' और 'सारंगा सदावृक्ष' का पाठ किया है। जहां 'भारत भारती' की वीणा गूँजनी चाहिये, वहाँ

आज भी मिर्ज़ापुरी कजलियाँ गाई जाती हैं! देशवासियोंकी यह हालत देख, सबको इस प्रकार रसके समुद्रमें बहे जाते देख, यह भारत भूमि त्राहि त्राहि पुकारने लगी है। हमने देखा है, कि जो पन्द्रह सोलह सालके छोकरे स्कूलसे गन्दे कह कर निकाले गये और लिखने पढ़नेमें कभी अव्वल नम्बर न ला सके, वेही आज कविता काननके श्रृगाल होकर बिचारे पढ़ने वालोंके कोमल मस्तिष्कोंको चबा रहे हैं! कोई कोई ससुरालसे निकाली हुई अधपढ़ी बालिका भी रसिकताके झोंकमें आकर कविताके कुएँमें कूद पड़ती दिखाई देती है! ऐसे बालकों और बालिकाओंकी कविताएँ देशकी क्या सेवा करेंगी यह अनुमानमें भी आना असम्भव है!

ऐसा न समझें, कि यह अपराध केवल छोकरे छोकरियोंसे ही हो रहा है, बल्कि बड़े बड़े ग्रेजुएट और अनुभवी युवक भी इस रसके विकारमें पड़कर खुद भी गोता खा रहे हैं और लोगोंको भी खिला रहे हैं। हिन्दीमें केशोदास, देव, बिहारी मतिराम, लछिराम, पद्माकर, बजनेस आदि सैकड़ों एकसे एक बढ़कर कवि हो गये हैं, जिन्होंने श्रृंगार रसकी यह अद्भुत सृष्टि कर डाली है, जो हिन्दी साहित्यके लिये गौरवकी सामग्री है। उनकी भाषामें जान थी, लेखनीमें शक्ति थी, भावोंके विश्लेषण करनेकी अद्भुत क्षमता थी; पर जिनके मस्तिष्कमें भावोंकी जगह कूड़ा कर्कट ही भरा है, वे भी उन कविवरोंका अनुकरण कर आज तक भाषा और भावकी हत्या करते चले आते हैं, यह देख कर

तो जी जलभुन जाता है। रसिकताहीके पीछे सब कुछ गवां बैठे, तोभी अभीतक उससे जोंककी तरह चिमटे हुए हैं। यह क्या ऐसी वैसी रसिकता है!

अभी उस साल दिल्लीमें दरवार हुआ था, जब सम्राट् पञ्चम जार्ज भारतके राजसिंहासनपर अभिषिक्त किये गये थे। उस समय कवियोंके हाथमें बेतरह खाज चलने लगी थी। कविताके सिर पैरसे भी अनजान युवकोंने टाँग अड़ा ही दी। किसीने उन्हें अपनी कवितामें अभागिनीका जीवन कहा, किसीने उसके अंचलेका धन बनाया, किसीने हृदयका रत्न बताया, किसीने कुछ और किसीने कुछ—इस तरह चारों ओरसे कविताओंके ढेर लग गये। लोग अचम्भेमें आकर एक दूसरेसे पूछने लगे कि भैया! यह मामला क्या है? भारत भूमिका वात्सल्य रस ऐसा उबल क्यों पड़ा है? पर लोग इतनेहीसे चुप न रहे। केवल वात्सल्य रसकी कवितासे ही काम न चला, तो एक पुराने घाघने 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचें कवि' की पुरानी कहावतके अनुसार भारत—भूमिके हृदयमें पैठकर वह बात लिख मारी, जिसे पढ़कर हमारे तो होश उड़ गये। आपने लिखा, कि आज भारतेश्वरके शुभागमनसे वृद्धा भारत-माता पुनः नवयुवती हो गयी हैं और सम्राटका सादर स्वागत करती है! बहुतोंने यह कविता पढ़ी होगी और कविजीकी तारीफ़ोंके पुल भी बंध गये होंगे। भला क्यों न हो? जिसे इकतीस करोड़ मनुष्य अपनी माता समझते हैं और भक्ति करते हैं, जिसे देश

विदेशोंके बड़े बड़े विद्वान् सभ्यता और सामाजिक नीतिकी आदि जननी मानते हैं, जो परमार्थ तत्त्वको धाम है, जहांसे सभी भाषाओंकी उत्पत्ति हुई है, उसी आर्योंकी पवित्र भूमि—गंगा, गोदावरी और नर्मदासे सींची जाने वाली भारत भूमिको चञ्चला नायिकाके वेशमें लाकर खड़ी करना कुछ कम कवित्वका काम नहीं था ! आखिर, रसिकोंकी तबियत ही तो है ! ऐसेही कवियोंको देखकर हमें कहना पड़ता है, कि "नाहक बिताई कविताईमें वयस क्यों ? "

और एक रसिया कविकी बात सुनिये, वे एक बाज़ारू रण्डी-के रूप, रस, गन्ध आदि छहों गुणोंका गूढ़ तत्त्व निकालनेमें ही मगन रहते हैं और ऐसी ही ऐसी कविताएं बनानेमें फ़ख़र समझते हैं। जो बातें एक मनुष्य दूसरे मनुष्यसे कहना नहीं चाहता, जो एक दूसरेसे सुनना नहीं चाहता और न सुन ही सकता है, वही सब बातें वे कवितामें लिखा करते हैं और ऐसी ही कविताओंका एक मनोहर संग्रह बना कर आपने अपनी स्त्रीको समर्पण किया है ! उस काव्यको पढ़कर ठीक यही मालूम होता है, कि वह उन्हींकी जीवनी है उन्हींके हृदयका उच्छ्वास है और उसके प्रत्येक अक्षरसे उन्हींकी आत्मकथा प्रगट होती है। उसके अन्दर मधुर छन्दोंमें यही कथा लिखी हुई है, कि वे एक कुलबालाको छल-बल-कौशलसे लम्बी चौड़ी बातें बना, सब्ज़ बाग़ दिखलाकर घरके पींजरेसे बाहर निकाल लाये हैं। इसके पहले वे एक और को भी लाये थे; पर उसे उन्होंने भौंकमें

तो जी जलभुन जाता है। रसिकताहीके पीछे सब कुछ गवां बैठे, तोभी अभीतक उससे जोंककी तरह चिमटे हुए हैं। यह क्या ऐसी वैसी रसिकता है!

अभी उस साल दिल्लीमें दरबार हुआ था, जब सम्राट् पञ्चम-जार्ज भारतके राजसिंहासनपर अभिषिक्त किये गये थे। उस समय कवियोंके हाथमें बेतरह खाज चलने लगी थी। कविताके सिर पैरसे भी अनजान युवकोंने टाँग अड़ा ही दी। किसीने उन्हें अपनी कवितामें अभागिनीका जीवन कहा, किसीने उसके अंचलेका धन बनाया, किसीने हृदयका रत्न बताया, किसीने कुछ और किसीने कुछ—इस तरह चारों ओरसे कविताओंके ढेर लग गये। लोग अचम्भेमें आकर एक दूसरेसे पूछने लगे कि भैया! यह मामला क्या है? भारत भूमिका वात्सल्य रस ऐसा उबल क्यों पड़ा है? पर लोग इतनेहीसे चुप न रहे। केवल वात्सल्य रसकी कवितासे ही काम न चला, तो एक पुराने घाघने 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' की कहावतके अनुसार भारत—भूमिके हृदयमें पैठकर वह मारी, जिसे पढ़कर हमारे तो होश उड
कि आज भारतेश्वरके
नवयुवती हो गयी है और
बहुतोंने यह कविता पढ़ी होगी
भी बंध गये होंगे। भला
मनुष्य अपनी माता

चना करते हैं, वे हमारी बात ज़रूर मान लेंगे और साथही यह बात भी स्वीकार करेंगे कि हमारा कविता-साहित्य मरता चला जा रहा है।

पर तोभी यह सवाल उठता है, कि क्या रसिकता या रसीली बातें करना कोई पाप है? मनुष्यके हृदयमें छिपी हुई पिपासा और हृदयका स्वाभाविक रसोच्छ्वास क्या त्याग देने योग्य पदार्थ है? प्रकृतिके इस रस भरे अमृतभवनमें बैठकर तो यह बात मुँहपर लानेका भी साहस नहीं होता। हम जब चाँदनी रात अचिन्तनीय, अनिर्वचनीय और उदासीनता भरी शोभा देखकर मुग्ध हो अपने आपको भूल जाते हैं, तब उस आत्म विस्मृतिके प्रथम स्फुरणमें ही हृदयके अन्तरतम प्रदेशसे यह बात निकल पड़ी है, कि यह शोभा देखकर भी जिनके हृदयोंमें रसका सञ्चार नहीं होता, वे आँखें रहते अंधे हैं, वे मनुष्य नहीं हैं मूर्ख हैं। जिस समय हम लोग एकाएक किसी जंगलमें पहुँच जाते हैं, और वनकी उस श्यामकान्ति पर पड़ने वाली सायं-कालके सूर्यकी अनुपम कान्तिको प्रतिबिम्बित होते देखते हैं अथवा सूर्यकी किरणें किस प्रकार पेड़ोंके पत्ते पत्तेपर पड़कर और पत्तोंके बीचमें छिपकर हँसती खेलती हैं, इसे अचम्भेके साथ देखते हैं, तब सबसे पहले यही बात जीमें उठती है, कि यह माधुरी, यह वृक्षोंकी श्रेणी यह लता वितान, यह निसर्ग सौन्दर्य-राशि देखकर भी जिसके मनमें रस सञ्चार नहीं होता, वह आँखें रहते भी अन्धा है, मनुष्य होकर भी महामूर्ख है। अब

आकर अन्तमें त्याग दिया। इसके पहले वे एकको और उड़ा लाये थे, कुछ दिन बाद उससे झगड़ा हो गया और कविजीने उसे दुर दुरा दिया; पीछे न जाने क्या ख्याल हुआ, उसे समझा बुझाकर ले आये और शहरके बाहर अपने बागीचेमें रखे हुए हैं। तीनही तक बात न रही; आपने एक चौथीको भी चौपट कर डाला और उसे नाचना गाना सिखला, शराब पिला एक दिन यारोंको मण्डलीमें ले आये थे। ऐसी ही बेहूदी बातोंसे सारी किताब भरी हुई है। अब उनका हृदय यही कह कह कर उन्हें ढाँढ़स दिया करता है, कि हे कविवर! हे हिन्दी साहित्यके काव्य कुसुमोद्यानके 'ललित मधुलोलुप' नूतन भ्रमर! व्यर्थ ही करुण स्वरसे रोदन मत करो। तुमने जिनके लिये बड़ी मिहनतके बाद यह काव्य रचकर तैयार किया है और इसे जिन्हें समर्पण कर अपने मनमें सुख माना है, वे आजसे तुम्हें निस्सन्देह बड़ा भारी रसिक समझेंगी और इस हिन्दुस्तानके क्या गाँववाले और क्या नगरवाले दोनों ही श्रेणीके रसिक पाठक इसका रसास्वादन कर तुम्हारी काव्य रचनाकी शक्ति, तुम्हारे गुणों, तुम्हारी भावुकता और रस शास्त्रकी प्रवीणताकी सर्वत्र प्रशंसा किया करेंगे।

यदि बहुतसे उदाहरण देनेकी आवश्यकता होती, तो हम कवियोंकी रसिकताके ऐसे अनगिनत उदाहरण पाठकोंके सामने पेश कर देते; पर शायद हमें उतनी मिहनत न करनी पड़ेगी। जो लोग आजकलकी कविताएँ पढ़ते रहते हैं या उनकी समालो-

रसोंका आनन्द लेते हुए कृतार्थ होते रहेंगे। विज्ञानकी गम्भीर मूर्त्ति, इन्हीं रसोंका स्पर्श होनेके कारण, साधकोंको सुधामयी मालूम पड़ती है और सच्ची कविता भी इन्हीं रसोंका थोड़ा सा हिस्सा पाकर कोयलकी मीठी कूककी तरह सर्वत्र सुधा बरसाया करती है।

पाठक! क्या आप प्रकृतिके इस रसोपहारकी उपेक्षा कर, विज्ञान और कविता, चिर प्रीतिके बन्धनमें बँधे हुए दम्पतिकी तरह, एक स्वरमें जो गंभीर भावपूर्ण गीत गा रहे हैं, उसे न सुनकर केवल इसकी तरल बातें ही सुनना पसन्द करते हैं? यदि इसीसे आपके हृदयकी तृष्णा और लालसा मिटती हों, तो आइये, हम वहाँ चलें, जहाँ कल्पनाके कुञ्जवनमें शकुन्तला, माधवी और सहकारका प्रेम विलास देख अपनी सखियोंके साथ सलज्ज मधुर और स्नेह रुद्ध कण्ठसे बातें कर रही है; अथवा जहाँ रामचन्द्र, रमणी कुलकी मुकुट मणि जनक नन्दिनीका जी बहलानेके लिये, उन्हें अपनी बाहुलताके सहारे बिठाये हुए हैं और दोनों दम्पतिकी चारों आँखें चित्र पर देख रही हैं— अथवा जहाँ रोमियो और जूलियट, खिड़की पर खड़े हो, अपूर्ण मानुषी भाषामें हृदयके आवेग पूर्ण प्रवाहको बेरोक बहा रहे हैं। अहा! कैसा गम्भीर, कैसा तरल रस है! पाठक! अगर रसकी बातें सुननी हों, तो कोयल और भौंरेसे सुन लीजिये। भला कौए और मेंढ़क रसकी बातें क्या जानें? इनसे रसकी बातें सुनकर कब कोई तृप्त हो सका है!

कभी हम किसी चौड़े पाट और सुन्दर स्वच्छ जलवाली नदीके किनारे बैठकर उसकी तरङ्गोंके साथ पूर्णिमाके चन्द्रमाकी निर्मल किरणोंको नाचते देखते हैं अथवा नदीको, चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे पागल हो, चन्द्रहार पहने, चन्द्रमाला हिलाते हुए, कल कल ध्वनि करते और न जाने क्या क्या कहते हुए सुनते हैं, तब मुँहसे कोई बात न निकलने पर भी, दिलसे यह बात निकल पड़ती है, कि प्रकृतिका यह चित्त प्रसन्न करनेवाला दृश्य देखने और उसका यह छिपे छिपे चुपचाप रसालाप करना सुननेपर भी जिनके हृदयोंमें इसका सञ्चार नहीं होता, वे आँखें रहते अन्धे और कान रहते बहरे हैं। वे कभी मनुष्य नहीं हैं बड़ेही मूर्ख हैं।

काव्यमें नव ही रस होते हैं, पर प्रकृतिके इस अनन्त विस्तृत माया काननमें अनन्त रस हैं। पालेसे ढके हुए पर्वतके रसकी बात कुछ और है और लोनी लोनी लताओंमें खिले हुए फूलोंके रसकी बात कुछ और ही है। समुद्रके फेनसे भरी हुई अनन्त जलराशिके रसकी बात एक तरहकी है तो सरोवरके स्वच्छ सलिलके रसकी बात दूसरी तरहकी है। मरुभूमिके मध्यस्थलमें विराजित, असंख्य शाखा प्रशाखाओं और हरे हरे पल्लवोंसे सुशोभित तथा पक्षियोंके चहचहानेसे गूँजते हुए विशाल वृक्षके रसका उछ्वास कुछ और ढंगका है और मनुष्यकी प्रमोद कुञ्जमें प्रिय सखाके समान तुरतके उगे हुए छोटे छोटे पौधोंकी तरुण शोभाका रस कुछ निराला ही है। जो लोग सच्चे रसिक हैं, यथार्थतः इसकी प्राप्तिके इच्छुक हैं, वे इन्हीं रसोंका पान करते हैं और सदा इन्हीं

रसोंका आनन्द लेते हुए कृतार्थ होते रहेंगे। विज्ञानकी गम्भीर मूर्ति, इन्हीं रसोंका स्पर्श होनेके कारण, साधकोंको सुधामयी मालूम पड़ती है और सच्ची कविता भी इन्हीं रसोंका थोड़ा सा हिस्सा पाकर कोयलकी मीठी कूककी तरह सर्वत्र सुधा बरसाया करती है।

पाठक! क्या आप प्रकृतिके इस रसोपहारकी उपेक्षा कर, विज्ञान और कविता, चिर प्रीतिके बन्धनमें बंधे हुए दम्पतिकी तरह, एक स्वरमें जो गंभीर भावपूर्ण गीत गा रहे हैं, उसे न सुनकर केवल इसकी तरल बातें ही सुनना पसन्द करते हैं! यदि इसीसे आपके हृदयकी तृष्णा और लालसा मिटती हो, तो आइये, हम वहां चलें, जहां कल्पनाके कुञ्जवनमें शकुन्तला, माधवी और सहकारका प्रेम विलास देख अपनी सखियोंके साथ सलज्ज मधुर और स्नेह रुद्ध कण्ठसे बातें कर रही है; अथवा जहां रामचन्द्र, रमणी कुलकी मुकुट मणि जनक नन्दिनी-का जी बहलानेके लिये, उन्हें अपनी बाहुलताके सहारे बिठाये हुए हैं और दोनों दम्पतिकी चारों आंखें चित्र पर देख रही हैं— अथवा जहां रोमियो और जूलियट, खिड़की पर खड़े हो, अपूर्ण मानुषी भाषामें हृदयके आवेग पूर्ण प्रवाहको बेरोक बहा रहे हैं। अहा! कैसा गम्भीर, कैसा तरल रस है! पाठक! अगर रसकी बातें सुननी हों, तो कोयल और भौंरेसे सुन लीजिये। भला कीए और मेंढक रसकी बातें क्या जानें? इनसे रसकी बातें सुनकर कब कोई तृप्त हो सका है!

स्वार्थीपनका भीतरी भेद

स्वार्थीपन मनुष्य-जातिके लिये कलङ्ककी बात है या उसका स्वाभाविक धर्म है, इस विषयका विचार करना हमारे इस लेखका काम नहीं है। बहुतसे लोग इसके विरुद्ध गला फाड़ फाड़कर चिल्लाया करते हैं और कहते हैं, कि स्वार्थीपन संसारमें बड़ी बुरी चीज़ है, यह सब उन्नतियोंकी राह रोक देता और मनुष्यका मनुष्यके साथ मेल नहीं होने देता। दूसरे लोग यह सिद्धान्त किये बैठे हैं, कि अगर स्वार्थीपन न होता, तो गाँव, नगर, प्रदेश, राज्य, स म्राज्य, जय और कीर्त्तिका दुनियामें कहीं पता न होता। इसीव ी बदौलत मनुष्योंकी उन्नति होती है, जितने बड़े बड़े काम होते हैं, सबमें स्वार्थीपनकी ही माया है। यही कह कहकर वे अपने विरोधियोंकी दिल्लगी उड़ाया करते हैं। इन दोनोंमें किस पक्षमें सत्यका अंश अधिक है, इसकी हम मीमांसा करने नहीं जाते। हम तो यहाँपर स्वार्थीपनके कुछ मार्जित और अमार्जित, पर साथही अत्यन्त सूक्ष्म, अवान्तर भेद दिखलाकर ही अपना वक्तव्य समाप्त कर देंगे।

मार्जित आदि शब्द यहाँ किस अर्थमें व्यवहार किये गये हैं, उसे हम दो एक उदाहरण देकर पाठकोंको समझाये देते हैं।

अक़्लके अन्धे और निरक्षर भट्टाचार्य परन्तु भाग्यके

बली आदमी यदि विधि-विडम्बनाके कारण नामके बड़ेही भूखे हों, तो किस तरह वे इस बातमें अपनी वह यशो-लिप्सा प्रगट किया करते हैं और उनके टुकड़ोंपर पलनेवाले खुशामदी मुसाहब लोग किस तरह थोथी खुशामदें कर करके उन्हें आसमानपर चढ़ा दिया करते हैं, यह सब लोग अच्छी तरह जानते हैं। हमलोग नामवरीकी इस भूखको अमार्जित कहते हैं और ऐसे ऐसे थोथे खुशामदियोंके द्वारा कही हुई ठकुर-सुहाती बातोंको भी हमलोग मूर्ख मनुष्योंकी अमार्जित और ग्रामीण मनुष्योंकीसी अमार्जित स्तावकता (खुशामद) कहते हैं।

लेकिन पढ़े लिखे बुद्धिमान् मनुष्योंकी रीति ही कुछ निराली हुआ करती है। उन्हें यदि अपनी प्रशंसा करानी होती है, तो वे इस चतुराईके साथ अपनी इच्छा प्रगट करते हैं, कि बड़े बड़े बुद्धिमान् भी उनके मनकी थाह नहीं पा सकते। इधर योग्य मनुष्य ऐसे विचित्र ढँगसे उनकी इस बढ़ी हुई तृष्णामें आहुति डालते हैं, कि वे स्वयं भी, सब समय, उस खुशामदका सन्धिभेद करना नहीं चाहते। चतुरोंकी चतुरके साथ ऐसी ही चोटें चला करती हैं। मूर्ख लोग तो हंसोंके बीचमें बगुलेकी तरह केवल मुंह बाये चुपचाप देखते रहते हैं। ऐसी प्रशंसाकी चाह भी अच्छी है और ऊपर लिखे हुए लोगोंकी की हुई प्रशंसा भी मार्जित है। मूर्खोंके अभिमानकी थाह तो दोही चार क़दम चलनेपर लग जाती है; लेकिन वही अभिमान जब सुतीक्ष्ण बुद्धिके साथ मिल जाता है, तब तो विनयके परदेमें ढका हुआ उनका गम्भीर गर्व सबकी

स्वार्थीपनका भीतरी भेद

स्वार्थीपन मनुष्य-जातिके लिये कलङ्ककी बात है या उसका स्वाभाविक धर्म है, इस विषयका विचार करना हमारे इस लेखका काम नहीं है। बहुतसे लोग इसके विरुद्ध गला फाड़ फाड़कर चिल्लाया करते हैं और कहते हैं, कि स्वार्थीपन संसारमें बड़ी बुरी चीज़ है, यह सब उन्नतियोंकी राह रोक देता और मनुष्यका मनुष्यके साथ मेल नहीं होने देता। दूसरे लोग यह सिद्धान्त किये बैठे हैं, कि अगर स्वार्थीपन न होता, तो गाँव, नगर, प्रदेश, राज्य, साम्राज्य, जय और कीर्त्तिका दुनियामें कहीं पता न होता। इसीकी बदौलत मनुष्योंकी उन्नति होती है, जितने बड़े बड़े काम होते हैं, सबमें स्वार्थीपनकी ही माया है। यही कह कहकर वे अपने विरोधियोंकी दिल्लगी उड़ाया करते हैं। इन दोनोंमें किस पक्षमें सत्यका अंश अधिक है, इसकी हम मीमांसा करने नहीं जाते। हम तो यहाँपर स्वार्थीपनके कुछ मार्जित और अमार्जित, पर साथही अत्यन्त सूक्ष्म, अवान्तर भेद दिखलाकर ही अपना वक्तव्य समाप्त कर देंगे।

मार्जित आदि शब्द यहाँ किस अर्थमें व्यवहार किये गये हैं, उसे हम दो एक उदाहरण देकर पाठकोंको समझाये देते हैं।

दम अक़लके अन्धे और निरक्षर भट्टाचार्य परन्तु भाग्यके

बली आदमी यदि विधि-विडम्बनाके कारण नामके बड़ेही भूखे हों, तो किस तरह वे हर बातमें अपनी यह यशो-लिप्सा प्रगट किया करते हैं और उनके टुकड़ोंपर पलनेवाले खुशामदी मुसाहब लोग किस तरह थोथी खुशामदें कर करके उन्हें आसमानपर चढ़ा दिया करते हैं, यह सब लोग अच्छी तरह जानते हैं। हमलोग नामवरोंकी इस भूखको अमार्जित कहते हैं और ऐसे ऐसे थोथे खुशामदियोंके द्वारा कही हुई ठकुर-सुहाती बातोंको भी हमलोग मूर्ख मनुष्योंकी अमार्जित और ग्रामीण मनुष्योंकीसी अमार्जित स्तावकता (खुशामद) कहते हैं।

लेकिन पढ़े लिखे बुद्धिमान् मनुष्योंकी रीति ही कुछ निराली हुआ करती है। उन्हें यदि अपनी प्रशंसा करानी होती है, तो वे इस चतुराईके साथ अपनी इच्छा प्रगट करते हैं, कि बड़े बड़े बुद्धिमान् भी उनके मनकी थाह नहीं पा सकते। इधर योग्य मनुष्य ऐसे विचित्र ढँगसे उनकी इस बढ़ी हुई तृष्णामें आहुति डालते हैं, कि वे स्वयं भी, सब समय, उस खुशामदका सन्धिभेद करना नहीं चाहते। चतुरोंकी चतुरके साथ ऐसी ही चोटें चला करती हैं। मूर्ख लोग तो हंसोंके बीचमें बगुलेकी तरह केवल मुँह बाये चुपचाप देखते रहते हैं। ऐसी प्रशंसाकी चाह भी अच्छी है और ऊपर लिखे हुए लोगोंकी की हुई प्रशंसा भी मार्जित है। मूर्खोंके अभिमानकी थाह तो दोही चार क़दम चलनेपर लग जाती है; लेकिन वही अभिमान जब सुतीक्ष्ण बुद्धिके साथ मिल जाता है, तब तो विनयके परदेमें ढका हुआ उनका गम्भीर गर्व सबकी

स्वार्थीपनका भीतरी भेद

स्वार्थीपन मनुष्य-जातिके लिये कलङ्ककी बात है या उसका स्वाभाविक धर्म है, इस विषयका विचार करना हमारे इस लेखका काम नहीं है। बहुतसे लोग इसके विरुद्ध गला फाड़ फाड़कर चिल्लाया करते हैं और कहते हैं, कि स्वार्थीपन संसारमें बड़ी बुरी चीज़ है, यह सब उन्नतियोंकी राह रोक देता और मनुष्यका मनुष्यके साथ मेल नहीं होने देता। दूसरे लोग यह सिद्धान्त किये बैठे हैं, कि अगर स्वार्थीपन न होता, तो गाँव, नगर, प्रदेश, राज्य, साम्राज्य, जय और कीर्त्तिका दुनियामें कहीं पता न होता। इसीकी बदौलत मनुष्योंकी उन्नति होती है, जितने बड़े बड़े काम होते हैं, सबमें स्वार्थीपनकी ही माया है। यही कह कहकर वे अपने विरोधियोंकी दिल्लगी उड़ाया करते हैं। इन दोनोंमें किस पक्षमें सत्यका अंश अधिक है, इसकी हम मीमांसा करने नहीं जाते। हम तो यहाँपर स्वार्थीपनके कुछ मार्जित और अमार्जित, पर साथही अत्यन्त सूक्ष्म, अवान्तर भेद दिखलाकर ही अपना वक्तव्य समाप्त कर देंगे।

मार्जित आदि शब्द यहाँ किस अर्थमें व्यवहार किये गये हैं, उसे हम दो एक उदाहरण देकर पाठकोंको समझाये देते हैं। एकदम अक़लके अन्धे और निरक्षर भट्टाचार्य परन्तु भाग्यके

बली आदमी यदि विधि-विडम्बनाके कारण नामके बड़ेही भूखे हों, तो किस तरह वे हर बातमें अपनी वह यशो-लिप्सा प्रगट किया करते हैं और उनके टुकड़ोंपर पलनेवाले खुशामदी मुसाहब लोग किस तरह थोथी खुशामदें कर करके उन्हें आसमानपर चढ़ा दिया करते हैं, यह सब लोग अच्छी तरह जानते हैं। हमलोग नामवरोंकी इस भूखको अमार्जित कहते हैं और ऐसे ऐसे थोथे खुशामदियोंके द्वारा कही हुई ठकुर-सुहाती बातोंको भी हमलोग मूर्ख मनुष्योंकी अमार्जित और ग्रामीण मनुष्योंकीसी अमार्जित स्तावकता (खुशामद) कहते हैं।

लेकिन पढ़े लिखे बुद्धिमान् मनुष्योंकी रीति ही कुछ निराली हुआ करती है। उन्हें यदि अपनी प्रशंसा करानी होती है, तो वे इस चतुराईके साथ अपनी इच्छा प्रगट करते हैं, कि बड़े बड़े बुद्धिमान् भी उनके मनकी थाह नहीं पा सकते। इधर योग्य मनुष्य ऐसे विचित्र ढँगसे उनकी इस बढ़ी हुई तृष्णामें आहुति डालते हैं, कि वे स्वयं भी, सब समय, उस खुशामदका सन्धिभेद करना नहीं चाहते। चतुरोंकी चतुरके साथ ऐसी ही चोटें चला करती है। मूर्ख लोग तो हंसोंके बीचमें बगुलेकी तरह केवल मुँह बाये चुपचाप देखते रहते हैं। ऐसी प्रशंसाकी चाह भी अच्छी है और ऊपर लिखे हुए लोगोंकी की हुई प्रशंसा भी मार्जित है; मूर्खोंके अभिमानकी थाह तो दोही चार क़दम चलनेपर लग जाती है; लेकिन वही अभिमान जब सुतीक्ष्ण बुद्धिके ... है, तब तो विनयके परदेमें ढका हुआ

आँखोंमें धूल झोंक देता है। वह सुमार्जित सुसज्जित और सस्मित अभिमान, मीठी मीठी बातोंके मनोहर परदेके भीतरसे किस प्रकार झाँका करता है, उसकी ओर कौन देखता है, और देखनेपर भी कितने आदमी उसका सच्चा परिचय पानेको समर्थ होंगे!

स्वार्थीपनके भी इसी तरह दो अलग अलग भेद हैं; पर दोनोंहीका नाम स्वार्थीपनही है। भेद इतनाही है, कि एक पदार्थ है, दूसरा प्रकृति है। और भी फ़र्क यह है कि, एक तो झट पहचानमें आ जाता है और दूसरा बड़े बड़े बुद्धिमानोंकी समझमें भी मुश्किलसे ही आता है। मूर्ख लोग जब स्वार्थीपनसे अन्धे होकर दूसरोंके स्वार्थमें बाधा देने लगते हैं अथवा दूसरोंपर हद दर्जेकी निष्ठुरता करने लग जाते हैं, तब सब लोग उन मूर्खोंको खुले मुँह फटकारने और अपनी अपनी निःस्वार्थ प्रकृतिका परिचय देने लगते हैं। लेकिन वही स्वार्थीपन जब सुशिक्षाकी मायाके स्पर्शसे कुछ और ही मूर्त्ति धारण कर लेता है, तब उसे देखकर निन्दा करनी तो दूर रहे, सच्चे दिलसे उसकी प्रशंसा करनेको ही जी चाहता है।

आजकलकी सभ्य भाषामें परिमार्जित स्वार्थीपनका पहला नाम "अपने प्रति कर्त्तव्य" है। पहलेके पण्डित दूसरोंके प्रति अपना कर्त्तव्य क्या है, इसे कुछ कुछ समझते थे। आज उसके साथ 'अपने प्रति कर्त्तव्य' भी मिल गया है और इसने नीति शास्त्रमें एक बड़ा भारी अध्याय चढ़ा दिया है।* आजकल दूसरों

* Egoism versus Altruism स्वार्थीपन बनाम उदारता।

का काम बिगाड़कर अपना मतलब साधनेसे लोगोंकी नि दा का पात्र होनेका डर नहीं है; क्योंकि "अपने आपके प्रति मे कर्त्तव्य है, वही मैंने किया है" इतना ही कह देनेसे सब दोषमुक्त हो जाते हैं। दूसरा जिस चीज़को बहुत चाहता है, जिसे उसने बड़ी मिहनतसे पैदा किया है और बहुत दिनोंसे उसे अपने अधिकारमें रखे हुए है, उसकी यदि तुम्हें अत्यन्त साधारणसी भी अवश्यकता आ पड़े, तो अपने प्रति तुम्हारा जो कर्त्तव्य है, उसका पालन करनेके लिये तुम उस चीज़को उसके हाथसे छीन ले सकते हो। इसमें कुछ स्वार्थीपन थोड़े है! यदि तुम परायी उन्नति देख दिल ही दिलमें जल भुनकर राख होते हो और तुम्हारे इस गुणके कारण कोई आदमी अकारण ही तुम्हारी आँखोंका कांटा बन रहा हो, तो उसकी बुराई करनेका तुम्हें सोलह आने अधिकार है। तुम अपने आप या दूसरों द्वारा उसे तरह तरहके फन्देमें डाल और उसपर नाना प्रकारके अत्याचार कर उसकी नींद भूख भलेही हराम कर दो, इसमें कुछ अपराध नहीं है। कारण—यह तो तुम्हारा 'अपने प्रति कर्त्तव्य' है!

'अपने मुंह मियाँ मिट्ठू' बनना पहले बड़ा बुरा माना जाता था। इसकी गिनती आठ महापापोंमें थी। कोई कोई तो आत्म-प्रशंसाको मृत्युकी सगी बहनही समझते थे। पाण्डवोंमें श्रेष्ठ धनञ्जयने एक बार अपने बड़े भाई युधिष्ठिरसे लड़ाई कर ली। इसका उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे अपनी मौत मनाने लगे। यदु कुलपति, जगद्गुरु कृष्णने इस झगड़ेका मध्यस्थ

परिवार * समझते हैं। सच पूछो, तो इस युगका नाम ही स्त्री युग है।

मनुष्य-कुलमें जन्मग्रहण करनेके कारण, रक्तमांसके आकर्षणसे समय-समयपर पराजित होनाही पड़ता है। अवश्य ही मनमें कभी न कभी स्नेह, ममता, दया और दाक्षिण्य आदि न रुकनेवाली वृत्तियां प्रबल हो जाती हैं। बड़े बड़े शक्तिशाली भी चेष्टा करके देख चुके हैं, कि ये सब बन्धन सहजही ढीले होने वाले नहीं हैं। चाहे हृदयको लाख दबाओ, पर वह अपने पराक्रमसे आपही प्रबल हो उठता है। पर हृदयका आधिपत्य स्वीकार करनेपर कौन इस पृथ्वीमें अभीष्ट फल भोग करता हुआ सुखसे रह सका है? हृदय अन्धा होता है। वह न तो गणित जानता है, न अपनी भलाई बुराई समझता है और न अपना पराया देखता है। किसीको भूखसे तड़पते देख, वह (हृदय) कहता है, कि अपने मुँहका कौर उसे दे दो। किसीकी ग़रीबी देख, वह उसकी ग़रीबी दूर करनेके लिये तङ्ग करने लगता है। सबसे बड़ी आफ़त तो यह है, कि अगर उसके कोमल औरमीठे शब्दोंको सुनकर एक भी अच्छा काम कर दो, तो उसकी हिम्मत इतनी बढ़ जाती है, कि उसे पास रखना मुश्किल हो जाता है; क्योंकि फिर तो वह बार बार भले काम करनेके लिये उकसाया करता है। इन्हीं सब आफ़तोंको टालनेके लिये 'परिवारके प्रति कर्त्तव्य' नामकी दवा ईजाद की गयी है, जो अँधेरे घरमें चिराग़-

* बँगलामें तो सचमुच 'परिवार' शब्दके मानो 'स्त्री' है।

परिवार * समझते हैं। सच पूछो, तो इस युगका नाम ही स्त्री युग है।

मनुष्य-कुलमें जन्मग्रहण करनेके कारण, रक्तमांसके आकर्षणसे समय-समयपर पराजित होनाही पड़ता है। अवश्य ही मनमें कभी न कभी स्नेह, ममता, दया और दाक्षिण्य आदि न रुकनेवाली वृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं। बड़े बड़े शक्तिशाली भी चेष्टा करके देख चुके हैं, कि ये सब बन्धन सहजही ढीले होने वाले नहीं हैं। चाहे हृदयको लाख दबाओ, पर वह अपने पराक्रमसे आपही प्रबलहो उठता है। पर हृदयका आधिपत्य स्वीकार करनेपर कौन इस पृथ्वीमें अभीष्ट फल भोग करता हुआ सुखसे रह सका है? हृदय अन्धा होता है। वह न तो गणित जानता है, न अपनी भलाई बुराई समझता है और न अपना पराया देखता है। किसीको भूखसे तड़पते देख, वह (हृदय) कहता है, कि अपने मुँहका कौर उसे दे दो। किसीकी ग़रीबी देख, वह उसकी ग़रीबी दूर करनेके लिये तङ्ग करने लगता है। सबसे बड़ी आफ़त तो यह है, कि अगर उसके कोमल औरमीठे शब्दोंको सुनकर एक भी अच्छा काम कर दो, तो उसकी हिम्मत इतनी बढ़ जाती है, कि उसे पास रखना मुश्किल हो जाता है; क्योंकि फिर तो वह बार बार भले काम करनेके लिये उकसाया करता है। इन्हीं सब आफ़तोंको टालनेके लिये 'परिवारके प्रति कर्त्तव्य' नामकी दवा ईजाद की गयी है, जो अँधेरे घरमें चिराग़-

* बँगलामें तो सचमुच 'परिवार' शब्दके मानी 'स्त्री' है।

मुँहसे आज तुम उसे टरकाओगे ? यदि स्नेह और कृतज्ञताका ऋण चुकानेकी थोड़ीसी भी इच्छा हुई, तो यह अपरिणामदर्शी हृदय ज़रा सोच समझकर अर्थशून्य और अकर्मण्य आश्वासन देकर अर्थात् ज़बानी जमा खर्च करके उसके मनमें थोड़ी देरके लिये ज़रा ढाढ़स पैदा कर दे सकता है ; पर लोग जिसे 'बुद्धिमानीका काम' कहते हैं, उसे कभी न करना। एकदम उसे टरका देना भी कठिन है ; क्योंकि उसके लिये ज़बरदस्त दलील चाहिये। ऐसे ही परस्पर विरोधी सोच विचारोंमें जब मन डावाँडोल हो रहा हो, तब तुम्हें एक बार अपने 'परिवारके प्रति कर्त्तव्यको' याद कर लेना चाहिये ; फिर तो सारी चिन्ता एक बारही काफूर हो जायगी। परिवारके प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है, उसके आगे मित्रता, प्रतिज्ञा, प्रीति और कृतज्ञता भला क्या चीज़ है ?

सच पूछो, तो परिवारके प्रति कर्त्तव्य पालन करनेसे दुनियाके सारे मतलब पूरे हो जाते हैं। 'अपने प्रति कर्त्तव्यमें' स्वार्थीपनकी बू भले ही हो, लेकिन 'परिवारके प्रति कर्त्तव्यमें' तो स्वार्थीपन छू तक नहीं गया है। इसका नाम लेकर भाई अनायास हो जीते या मरे हुए भाईका सर्वस्व हड़प कर जा सकता है, अपना आदमी पराया होकर सारी ममताको धो बहा दे सकता है और कुल-पावन, यशस्वी पुत्र साक्षात् स्नेहकी मूर्त्ति स्वरूपिणी माताको भी पिताका परिवार * कहकर पैरोंसे

* पहले ही कह चुके हैं कि आजकल परिवारका अर्थ जोरू ही रह गया है और बिना जोरूके परिवारके सब व्यक्ति जीते हुए भी मरे माने जाते हैं।

दुर्दशा थी, उसे काव्योंमें पढ़ पढ़कर उनके हाथ पैर कांपने लगते हैं। उनके हृदयकी कोमलताका तो यह हाल है, पर इधर घरके पासही किसी पड़ोसीका सत्यानाश होनको आ गया है अथवा अपने किसी नेही नातेदार पर ही कोई मुसीबत आ पड़ी है, लेकिन उनसे—इन लोगोंकी भलाई करनी तो दूर रही—इनके पास तक नहीं जाया जाता, क्योंकि भला ऐसे कोमल हृदयवाले व्यक्तिसे किसीका दुःख कैसे देखा जा सकता है! जो लोग पराये दुःख दर्दसे दुःखी हो, दुःख विपदके समय, एकदम पत्थर सा कड़ा दिल करके, उनके पास जा पहुंचते और अपनी शक्ति भर उनकी भलाई करते या उन्हें धीरज बंधाते हैं वे लोग इन कोमल प्राण मनुष्योंके विचारसे बड़े ही सङ्ग दिल हैं, क्योंकि यदि वे ऐसे न होते, तो जिन सब अवस्थाओंकी बात सोचते हुए भी कलेजा मुंहको आने लगता है, इन्हें वे आंखों देखने कैसे जाते हैं और उन अवस्थाओंमें स्थिर चित्त होकर आप भी क्योंकर हिस्सा बंटाते हैं!

किसी किसीका स्वभाव ऐसा होता है, कि वे अधम श्रेणी के मनुष्योंकी तरह किसी तरहकी मिहनत किये बिनाही औरों-की मिहनतसे पैदा की हुई वस्तुका अग्र भाग आप ही ले लेनेमें बड़ा मजा मालूम करते हैं। वे आप तो दुनियाका कोई काम नहीं करते, बल्कि दूसरोंका काम बिगाड़नेमें बड़ी मुस्तैदी दिख-लाते हैं। दूसरोंका काम बिगड़े, समय बरबाद हो या और ही किसी तरहका नुकसान हो, वे तो सदा सर्वदा कर्म करनेवाले

लिये, तुम समाजके सैकड़ों भले आदमियोंके काम क्यों बिगाड़ने जाते हो ? उनके जीवन मतमें कांटा क्यों बोते हो ? स्वार्थीपनके ऐसे ऐसे बारीक और ऊपरसे मुलम्मा किये हुए और भी अनेक भेद हैं, पर सबके नाम गिनाना व्यर्थ है।

राजनीति शास्त्रमें तो स्वार्थीपनको और भी अच्छे अच्छे नाम दिये गये हैं। हमारे खयालसे उन नामोंमें 'सभ्यताका विस्तार' सबसे बढ़कर है। इससे बढ़कर भला और कौनसी बात हो सकती है ? सभ्यताका विस्तार करना किसे कहते हैं, यह अति संक्षेपमें समझा दिया जा सकता है। मान लो कि तुम किसी देशके बड़े प्रतापी राजा हो। तुम्हारा भण्डार धन धान्यसे भरा पूरा है, रणमें बार बार विजय पाकर तुम चारों ओर अपना यश फैला चुके हो, तुम्हारी राजशक्तिकी अपूर्व कीर्त्ति अकबर, प्रताप और शिवाजीकी अनन्य साधारण कीर्त्तिकी तरह दसों दिशाओंमें फैली हुई है। कहनेका तात्पर्य यह कि जो कुछ है, सब शोभामय है। लेकिन दुनिया भी कैसी जगह है ! इतना पानेपर भी तुम्हारे जी को शान्ति नहीं है। अपार समुद्रके उस पार, बड़ी दूरपर, तुम्हारे एक कमजोर पड़ोसीका एक दुर्बल राज्य है। उसकी असभ्यता तुम्हें फूटी आंखो भी नहीं सुहाती, तुम ठहरे उदार प्रकृति, उन्नत और उच्च लालसासे परिपूर्ण तुम्हें उस राज्यमें रहनेवालोंकी असभ्यता न खटकेगी, तो और किसे खटकेगी ? लाख आंखें फेरनेपर भी तुम्हारी आंखें बरबस उस ओर चली ही जाती हैं। न मालूम

लिये, तुम समाजके सैकड़ों भले आदमियोंके काम क्यों बिगाड़ने जाते हो ? उनके कोमल मनमें कांटा क्यों बोते हो ? स्वाधीनताके ऐसे ऐसे बारीक और ऊपरसे सुलझा किये हुए और भी अनेक भेद हैं, पर सबके नाम गिनाना व्यर्थ है।

राजनीति शास्त्रमें तो स्वाधीनताको और भी अच्छे अच्छे नाम दिये गये हैं। हमारे खयालसे उन नामोंमें 'सभ्यताका विस्तार' सबसे बढ़कर है। इससे बढ़कर भला और कौनसी बात हो सकती है ? सभ्यताका विस्तार करना किसे कहते हैं, यह अति संक्षेपमें समझा दिया जा सकता है। मान लो कि तुम किसी देशके बड़े प्रतापी राजा हो। तुम्हारा भण्डार धन धान्यसे भरा पूरा है, रणमें बार बार विजय पाकर तुम चारों ओर अपना यश फैला चुके हो, तुम्हारी राजशक्तिकी अपूर्व कीर्ति अकबर, प्रताप और शिवाजीकी अनन्य साधारण कीर्तिकी तरह चारों दिशाओंमें फैली हुई है। कहनेका तात्पर्य यह कि जो कुछ है, सब शानदार है। लेकिन दुनिया भी कैसी अजब है ! इतना पानेपर भी तुम्हारे जी को शान्ति नहीं है। अपार समुद्रके उस पार, बड़ी दूरपर, तुम्हारे एक कमजोर पड़ोसीका एक दुर्बल राज्य है। उसकी असभ्यता तुम्हें फूटी आंखों भी नहीं सुहाती, तुम ठहरे उदार प्रकृति, उन्नत और उच्च लालसासे परिपूर्ण तुम्हें उस राज्यमें रहनेवालोंकी असभ्यता न खटकेगी, तो और किसे खटकेगी ? लाख आंखें फेरनेपर भी तुम्हारी आंखें बरबस उस ओर चली ही जाती हैं। न मालूम

अवसर आ पड़नेवाले दुःखोंको उठाते हुए किसी किसी तरह बुरे दिन बिता रहे हैं। भला उनको यह दुःखदुर्गति सुनकर भी तुम कैसे चुपचाप बैठे रह जा सकते हो? इसी लिये तुम सभ्यता विस्तार करनेके लिये उनके घरमें घुसकर उनको वंश समेत मिटानेकी चेष्टा कर रहे हो, जिसमें एकदमसे असभ्यता इस संसारसे दूर हो जाय। इसीलिये तुम उनकी प्राचीन कारीगरोंके नमूनोंके ऊपर अपने महल मकान बनवा रहे हो। सभ्यताके भीतर ज्ञान, धर्म और पातिव्रत आदि सभी बातें आजाती हैं। इसलिये सभ्यताका नाम लेकर तुम इनमेंसे चाहे जिस चीजका प्रचार करो, वह न्याय छोड़कर अन्याय नहीं कहा जा सकता। हे मनुष्य! यदि यह सब देख सुनकर भी कोई तुम्हें स्वार्थी बतलाये *तो समझ लो कि वह दीन दुनियां, दोनोंसे गया!* उसका न तो यही लोक बनेगा और न परलोक वह किसी जगह चैन नहीं पा सकता। जो अज्ञानताके कारण अथवा संसारके मायामोहमें पड़ा होनेके कारण तुम्हारे इन सब परोपकारके कामोंमें भी स्वार्थीपनकी गन्ध पाये, ठीक समझ लो, कि उसे अवश्य ही कुम्भीपाकसे गहरे नरकमें भी जगह नहीं मिलनेकी, यह बात हम बड़ी दृढ़ताके साथ कह सकते हैं।

ख़ुशामदी ।

यदि मधुरभाषी होनेके कारण भौंरेकी संसारमें प्रतिष्ठा हो सकती है और मीठी बोली बोलनेके ही कारण कोयल, मैना, तोता, श्यामा और बुलबुल आदि पक्षी रसिकों, प्रेमियों, भावुकों और विलासियोंकी विलास कुंजों अथवा प्यारके पींजरोंमें जगह पा सकते हैं, तो फिर मधुर भाषियोंमें अग्रगण्य और धीरे धीरे चलने वाले ख़ुशामदियोंपर ही दुनियाकी ऐसी टेढ़ी निगाह और नफ़रत क्यों है ?

ख़ुशामदी लोग नीतिकारोंसे दलील करते हुए कह सकते हैं,—" देखो, हम अपराधी किस बातके हैं ? तुम्हारे प्यारे भौंरे जिस तरह सदा शहदसे भरे हुए फूलोंके आसपास गुन गुनाते हुए मँड़राया करते हैं, हम भी तो उसी तरह जहाँ कोई लम्बी चौड़ी आशा देखते हैं, वहां, मस्त होकर गुन गुनाया करते और गुण गा गाकर भौंरेकी तरह मँड़राते फिरते हैं ? भौंरेको लाख हटाओ, पर वह फूलमें मधु रहते वहाँसे नहीं हटता, बार बार वहीं आ पहुंचता है । इसी तरह तुम चाहे हमें लाख बार फटकार बताओ या लात मारकर खदेड़ो, पर हम जिस शहदके भूखे हैं, वह जबतक तुममें रहेगा, तबतक मार गाली, लात जूते सब कुछ खाते हुए भी हम तुम्हारे पास आना न छोड़ेंगे । भ्रमर जैसे सिवा

मधुके फूलके और किसी गुणकी ओर ध्यान नहीं देता, न देना चाहता, उसी प्रकार हम भी जिस शहदके भूखे हैं, उसके सिवा और कुछ नहीं देखते, हम तो केवल उसीपर रीझते हैं। शहद निकल जाने पर जैसे भौंरा उस फूलको छोड़ जाता है, वैसे ही हम भी शहद निकाल कर नौ दो ग्यारह हो जाते हैं—फिर हमारा कहाँ पता लगता है? उस समय जिस तरह भौंरा नया फूल खोजने लगता है, उसी तरह हम भी नयी जगह तलाश करते फिरते हैं। इसमें भला कौनसी बुराई है?

"देखो, वसन्तमें कोयल फूलोंसे भरे बगीचेमें बैठी अपनी मीठी तानोंसे जवानोंको मस्त और पागल बना देती है। इसके लिये कौन उसकी निन्दा करता है? जिसका हृदय पहले पत्थरकी तरह धीर और अचल था, उसे ही इस पागल बना देनेवाली अमृतभरी तानने पतङ्गकी तरह अधीर बना दिया, जो छल कपटका नाम भी न जानता था, उसे छल करना सिखला दिया; लज्जावानोंकी लज्जा छुड़ा दी, मनमें जो भाव कभी नहीं आ सकते थे, उन्हें ही भर दिया; जहां शान्तिमयी सुख निद्रा थी, वहाँ अशान्तिकी छटपट लाकर फूलोंकी सेजपर काँटे बखेर दिये; जहाँ तृप्ति थी, वहाँ अतृप्ति पैदा कर मनुष्यको व्याकुल कर दिया। लेकिन इतने अपराध करने वाली कोयलको कोई बुरा भला कहने नहीं जाता। तुमने अपने मनमें बड़ी अटल प्रतिज्ञा कर रखी, कि प्राण भले ही चले जायँ, पर मैं प्रवृत्तिके कीचड़में अपने मनको न फँसने दूँगा; इतनेमें कहींसे कोयल

खुशामदी ।

यदि मधुरभापी होनेके कारण भौंरेकी संसारमें प्रतिष्ठा हो सकती है और मीठी बोली बोलनेके ही कारण कोयल, मैना, तोता, श्यामा और बुलबुल आदि पक्षी रसिकों, प्रेमियों, भावुकों और विलासियोंकी विलास कुञ्जों अथवा प्यारके पींजरोंमें जगह पा सकते हैं, तो फिर मधुर भाषियोंमें अग्रगण्य और धीरे धीरे चलने वाले खुशामदियोंपर ही दुनियाकी ऐसी टेढ़ी निगाह और नफ़रत क्यों है ?

खुशामदी लोग नीतिकारोंसे दलील करते हुए कह सकते हैं,—"देखो, हम अपराधी किस बातके हैं ? तुम्हारे प्यारे भौंरे जिस तरह सदा शहदसे भरे हुए फूलोंके आसपास गुन गुनाते हुए मँड़राया करते हैं, हम भी तो उसी तरह जहाँ कोई लम्बी चौड़ी आशा देखते हैं, वहां, मस्त होकर गुन गुनाया करते और गुण गा गाकर भौंरेकी तरह मँड़राते फिरते हैं ? भौंरेको लाख हटाओ, पर वह फूलमें मधु रहते वहाँसे नहीं हटता, बार बार वहीं आ पहुंचता है । इसी तरह तुम चाहे हमें लाख बार फटकार बताओ या लात मारकर खदेड़ो, पर हम जिस शहदके भूखे हैं, वह जबतक तुममें रहेगा, तबतक मार गाली, लात जूते सब कुछ खाते हुए भी हम तुम्हारे पास आना न छोड़ेंगे । भ्रमर जैसे सिवा

मधुके फूलके और किसी गुणकी ओर ध्यान नहीं देता, न देना चाहता, उसी प्रकार हम भी जिस शहदके भूखे हैं, उसके सिवा और कुछ नहीं देखते, हम तो केवल उसीपर रीझते हैं। शहद निकल जाने पर जैसे भौंरा उस फूलको छोड़ जाता है, वैसे ही हम भी शहद निकाल कर नौ दो ग्यारह हो जाते हैं—फिर हमारा कहाँ वना लगता है? उस समय जिस तरह भौंरा नया फूल खोजने लगता है, उसी तरह हम भी नयी जगह तलाश करते फिरते हैं। इसमें भला कौनसी बुराई है?

"देखो, वसन्तमें कोयल फूलोंसे भरे बगीचेमें बैठी अपनी मीठी तानोंसे जवानोंको मस्त और पागल बना देती है। इसके लिये कौन उसकी निन्दा करता है? जिसका हृदय पहले पत्थरकी तरह धीर और अचल था, उसे ही इस पागल बना देनेवाली अमृतभरी तानने पतङ्गकी तरह अधीर बना दिया, जो छल कपटका नाम भी न जानता था, उसे छल करना सिखला दिया; लज्जावानोंकी लज्जा छुड़ा दी, मनमें जो भाव कभी नहीं आ सकते थे, उन्हें ही भर दिया; जहां शान्तिमयी सुख निद्रा थी, वहाँ अशान्तिकी छटपट लाकर फूलोंकी सेजपर काँटे बखेर दिये; जहाँ तृप्ति थी, वहाँ अतृप्ति पैदा कर मनुष्यको व्याकुल कर दिया। लेकिन इतने अपराध करने वाली कोयलको कोई बुरा भला कहने नहीं जाता।

प्रतिभा कर

पंचम सुरमें कुहुक उठी और तुम्हें रह रहकर उपदेश देने लगी कि देखो, ऐसी बुरी बातको कभी मनमें स्थान न देना। तुमसे जब अपने हृदयकी ज्वाला न सही गयी और उसी जलनके मारे तुम्हारी आत्मा तड़पने लगी, तब तुमने प्रतिज्ञा कर डाली, कि इस जीवनमें अब किसी कारणसे मैं कामनाओं कँकरीली राहमें पैर न दूँगा ; पर इसी समय कोयल फिर पुकार उठी और अपने चिरपरिचित मोहन कण्ठसे 'कुहू कुहू' करके तुम्हें उपदेश देने लगी, कि ऐसी कुबुद्धिको मनमें उपजने देकर सब सुखोंसे हाथ क्यों धोते हो ? देखो, कदापि इस विवेककी रूखी सूखी और कठोर नीतिको मनमें जड़ न पकड़ने देना। जो तुम्हें लालसाकी मधुर मदिरा पिला तुम्हें पागल बनाती है, उसे तो तुम प्यार करते हो और हमलोगोंसे नफ़रत, यह कहाँका न्याय है ? भला यह तो बताओ, कि तुम्हारी प्रशंसाके पात्र कोयल और निन्दाके पात्र हम खुशामदियोंमें फ़र्क़ ही कौनसा है ? कोयल जिस तरह औरोंसे पाली जाती है, हम भी वैसे ही पराये अन्नसे पलते हैं। हम दोनों ही परायी जूठन खानेवाले, खा पीकर चल देने वाले मीठी बातोंकी रोटी खानेवाले, खुशामदके टट्टू और मीठी मीठी बातें सुनाकर श्रोताओंके होश हवास गुम कर देने वाले हैं। इस कामके हम लोग अगुए हैं। फिर हम खुशामदियोंमें कोयलकी अपेक्षा कौनसा दोष अधिक है ! कोयल अगर वसन्तकी सहचरी है, तो हम भी ऐश आरामके साथी हैं ? जब वसन्तके

 अन्धड़ तूफानके दिन आते हैं, तब कोयल उड़ जाती है।

उसी तरह जब ऐशो आरामकी घड़ियां बीत जातीं और विपत्तिकी आंधी चलने लगती है, तब हम भी नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। फिर इस प्रकार अन्याय रूपसे हम दोनोंमें इतना फ़र्क़ क्यों समझा जाता है ?

और भी देखो, इस संसारकी हाटमें करोड़ों आदमी कांचके मोल काञ्चन बेंच कर अपनेको कृतार्थ मान रहे हैं। उनसे कौन झगड़ा करने जाता है ? कहीं प्रेमके बदले बाज़ारू सुख, कहीं मित्रताके बदले कोरी शौक़ीनी, कहीं ज्ञानके बदले गर्व और कहीं मानके बदले केवल बन्दर नाच मिलता है। इस प्रकार जब हम साफ़ देख रहे हैं, कि बेईमानी ही तिजारतका मूलमन्त्र है, तब फिर हमीं क्यों नहीं इसका अवलम्बन कर अपना सौभाग्य सञ्चय करें। बनज ब्योपार करनेवाले बाजारका रुख देखनेमें ही लगे रहते हैं—यही उनकी धर्म नीति है। वे लोग लोगोंकी रुचि देख कर उनकी पसन्दकी चीज़ें जुटाया करते हैं और उनकी प्रवृत्तिका रुख देख कर प्रलोभनकी सामग्रियाँ इकट्ठी करनेमें ही मग़ज़ लड़ाया करते हैं। जब हमने भी खुशामदका बाज़ार खोल रखा है और इसी नीतिका अवलम्बन कर चल रहे हैं तब नीतिकार लोग हमारी इतनी निन्दा क्यों करते हैं ?"

खुशामदी बिचारे सबसे इसी तरहकी बातें भले ही न कहें, पर अपने दिलमें तो वे ठीक यही सब बातें सोचा करते हैं। वे अपने मनमें सोचते हैं कि जो स्वभावतः ही चंचल चित्त है, उसे बंशीकी टेर सुनाकर अथवा खेल तमाशा दिखाकर वशीभूत

पंचम सुरमें कुहुक उठी और तुम्हें रह रहकर उपदेश देने लगी कि देखो, ऐसी बुरी बातको कभी मनमें स्थान न देना। तुमसे जब अपने हृदयकी ज्वाला न सही गयी और उसी जलनके मारे तुम्हारी आत्मा तड़पने लगी, तब तुमने प्रतिज्ञा कर डाली, कि इस जीवनमें अब किसी कारणसे मैं कामनाओ कँकरीली राहमें पैर न दूँगा ; पर इसी समय कोयल फिर पुकार उठी और अपने चिरपरिचित मोहन कण्ठसे 'कुहू कुहू' करके तुम्हें उपदेश देने लगी, कि ऐसी कुबुद्धिको मनमें उपजने देकर सब सुखोंसे हाथ क्यों धोते हो? देखो, कदापि इस विवेककी रूखी सूखी और कठोर नीतिको मनमें जड़ न पकड़ने देना। जो तुम्हें लालसाकी मधुर मदिरा पिला तुम्हें पागल बनाती है, उसे तो तुम प्यार करते हो और हमलोगोंसे नफ़रत, यह कहाँका न्याय है? भला यह तो बताओ, कि तुम्हारी प्रशंसाके पात्र कोयल और निन्दाके पात्र हम खुशामदियोंमें फ़र्क़ ही कौनसा है? कोयल जिस तरह औरोंसे पाली जाती है, हम भी वैसे ही पराये अन्नसे पलते हैं। हम दोनों ही परायी जूठन खानेवाले, खा पीकर चल देने वाले मीठी बातोंकी रोटी खानेवाले, खुशामदके टट्टू और मीठी मीठी बातें सुनाकर श्रोताओंके होश हवास गुम कर देने वाले हैं। इस कामके हम लोग अगुए हैं। फिर हम खुशामदियोंमें कोयलकी अपेक्षा कौनसा दोष अधिक है! कोयल अगर वसन्तकी सहचरी है, तो हम भी ऐश आरामके साथी हैं? जब वसन्तके बाद अन्धड़ तूफानके दिन आते हैं, तब कोयल उड़ जाती है।

प्राणप्रद ही प्रमाणित होती है, अतएव उनकी प्राप्तिकी सदा इच्छा करनी चाहिये। जो लोग खुशामदका नीच पेशा अख्तियार कर उस सत्यको ढक रखना या मनुष्यको आत्मज्ञानके सम्पर्क या उस सत्यसे वञ्चित कर रखना चाहते हैं वे पहले लाख भले मालूम पड़ें, पर यथार्थमें विषके घड़ेकी तरह सब प्रकारसे त्याग देने योग्य ही हैं।

"त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासी दङ्गुलीवोरगक्षता।" अर्थात् यदि प्यारेसे भी प्यारा मनुष्य दुष्ट हो जाये, तो उसे उसी तरह त्याग देना चाहिये; जिस तरह साँपकी काटी हुई उँगली काटकर फेंक दी जाती है।* नहीं तो कहीं सारे शरीरमें विष फैल गया, तो फिर लाख दवाएँ भी जान न बचा सकेंगी।

खुशामदीका एक और बड़ा भारी अपराध यह है, कि वह मनुष्यको बड़ोंका मान सम्मान करनेसे हटाकर अपनी ही उपासना करनेमें प्रवृत करता है और इस प्रकार जो कोई उसके फन्देमें पड़ जाता है, उसे वह कृत्रिम उपासनाके कृत्रिम धूपकी गन्ध सुँघाकर पागल कर देता है और उसे कठपुतलीकी तरह नचाया करता है। यह कोई मामूली बात नहीं है। मनुष्य यदि

* And if thy right hand offend thee, cut it off, and cast it from thee, for it is profitable for thee that one of thy members should perish, and not thy whole body should be cast into hell"

Sermon on the Mount.

मोहके अन्धकारसे ढका रहे, यही उसकी इच्छा रहती है। जो एकदम निरक्षर मूर्ख है, उसे वह महिमान्वित महामहोपाध्याय मानकर पूजता है; जो एकदम बदसूरतोंका सरदार है, उसे वह कामदेवकी जीती जागती मूर्त्ति बतलाता है और जिसकी बुद्धि पापकी गन्दगीसे निकल कर और कहीं जाना नहीं चाहती, उसे ही वह विलास रसिक और तबियतदार कहा करता है। उसका शब्दकोष दुनियाभरके शब्दकोषोंसे निराला है। उसमें आलोकका भावी अन्धकार और अन्धकारका भावी आलोक है। उस शब्दकोशमें धर्मका नाम अधर्म और अधर्मका धर्म है; विषका नाम अमृत और अमृतका विष है, सत्यका इस तरह गला घोंटना मनुष्यको कभी सहन नहीं हो सकता, क्योंकि यह उसके लिये बड़ी भारी अनिष्टकर बात है।

जैसे पेड़ पौधोंकी बाढ़के लिये सूर्यकी रोशनी दरकार होती है वैसे ही मनुष्य हृदयकी परिस्फूर्त्ति और मनुष्य शक्तिकी बाढ़के लिये सत्यकी उज्ज्वल किरणोंकी आवश्यकता पड़ती है। जैसे सूर्यकी गरमी और रोशनी न पानेसे पेड़ पौधे सूख साख कर मर जाते हैं, वैसेही मनुष्यका हृदय और शक्ति भी सत्यकी समुज्ज्वाल ज्योतिसे वञ्चित होने पर रुग्ण, जीर्ण और विकृत भावापन्न होकर धीरे धीरे नष्ट हो जाती है। यह प्रकृतिका अटल नियम है, इसमें कभी हेर फेर नहीं हो सकता। इससे यही सिद्धान्त निकलता है, कि सत्यकी ज्योति चाहे वह पहले कितनी ही कड़ी क्यों न मालूम पड़े, परिणाममें मनुष्यके लिये

ाणप्रद ही प्रमाणित होती है, अतएव उनकी प्राप्तिकी सदा
च्छा करनी चाहिये। जो लोग खुशामदका नीच पेशा अख्ति-
ार कर उस सत्यको ढक रखना या मनुष्यको आत्मज्ञानके
सम्पर्क या उस सत्यसे वञ्चित कर रखना चाहते हैं वे पहले
ाप भले मालूम पड़ें, पर यथार्थमें विषके घड़ेकी तरह सब
प्रकारसे त्याग देने योग्य ही हैं।

"त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासी दङ्गुलीवोरगक्षता।" अर्थात् यदि
प्यारेसे भी प्यारा मनुष्य दुष्ट हो जाये, तो उसे उसी तरह त्याग
देना चाहिये; जिस तरह साँपकी काटी हुई उँगली काटकर
फेंक दी जाती है।* नहीं तो कहीं सारे शरीरमें विष फैल गया,
तो फिर लाख दवाएँ भी जान न बचा सकेंगी।

खुशामदीका एक और बड़ा भारी अपराध यह है, कि वह
मनुष्यको बड़ोंका मान सम्मान करनेसे हटाकर अपनी ही
उपासना करनेमें प्रवृत करता है और इस प्रकार जो कोई उसके
फन्देमें पड़ जाता है, उसे वह कृत्रिम उपासनाके कृत्रिम धूपकी
गन्ध सुँघाकर पागल कर देता है और उसे कठपुतलीकी तरह
नचाया करता है। यह कोई मामूली बात नहीं है। मनुष्य यदि

* And if thy right hand offend thee, cut it—off, and
cast it from thee, for it is profitable for thee th[illegible] y
members should perish,
cast into hell "

बड़ा होना चाहे, तो उसे अपनेसे ऊँचे आदर्शकी उपासना करनी चाहिये। यही उन्नति करने या बड़े बननेका एक मात्र उपाय है। पृथ्वीमें जितनी तरहकी धर्म साधनाएँ हैं, उन सबका गूढ़ तत्त्व भी यही है; क्योंकि उत्कृष्टकी उपासना किये विना मनुष्यत्वका सब प्रकारसे विकास नहीं हो सकता। जो लोग खुशामदियोंसे घिरे रहते हैं, वे उपासनाकी इस देवदुर्लभ सम्पत्तिसे वञ्चित रहते हैं, क्योंकि वे ओछे लोगोंकी ओछी उपासनासे अन्धे बनकर अपनी हद दर्जेकी नीचताको ही महत्वका आदर्श समझने लगते हैं और वे इतने संकीर्ण और संकुचित हृदय हो जाते हैं कि इस धारणाको ही दिलसे दूर कर देते हैं, कि इस संसारमें और भी कुछ उपासना करनेके योग्य है। रोमके कोई कोई राजा और फ्रान्सके कोई कोई बादशाह इसी तरहके मोहमें पड़कर संसारमें उपहास प्राप्त कर चुके हैं और जो लोग न तो राजा हैं, न बादशाह अथवा राजकीय जगत्के छोटेसे छोटे पतङ्ग या क्षुद्रातिक्षुद्र कीटानुकीट कहलानेके लायक़ भी नहीं हैं, उनमें भी बहुतेरे इस मोह और विकारमें पड़कर तरह तरहके लोक हँसाई करानेवाले काम किया करते हैं और सबसे खरी खोटी सुनते हैं। जो नीच आत्मोपासना मनुष्यको ऊपर उठानेका तमाशा दिखलाकर दुर्गति और अवनतिके गहरे गड्ढेमें गिरा देती है, जो स्वर्गकी अपूर्व शोभा दिखानेका वहाना कर अन्तमें चन्द्रकी पूँछपर बैठा देती है, जो पुष्प चन्दनकी निर्मल सुगन्धसे मन फिराकर पिशाचोंके पसन्द आने लायक़ सड़ी हुई बदबू निकलनेवाली

मोरीमें पटक देती है, जो स्रोतस्विनीके सजीव प्रवाहमें अथवा सराधरके स्वच्छ सलिलमें न तैरने देकर, अँधेरे कुएँके पङ्क भरे जलमें सदाके लिये डुबो देती है, टकुर सुहाती बातें करनेवाले खुशामदी टट्टुओंके दिल लुभानेवाले चोंचलोंमें आकर उसी हीन आत्मोपासनामें लीन होकर अपने आपको भूल जाना, कुछ कम दुःख, दुर्भाग्य, हानि और विपत्तिकी बात नहीं है।

खुशामदियोंका तीसरा अपराध उतना बड़ा नहीं है; पर एक तरहसे बड़ा नुक़सान करनेवाला है। प्रियजनोंका प्रिय सम्भाषण अथवा प्रीति मुग्ध सुहृज्जनोंका प्रणयपूर्ण कथोपकथन भला किसे नहीं अच्छा लगता? प्रशंसाका पार्थिव सुख, विवेक-लभ्य चित्त-प्रसाद रूपी दुर्लभ सुखसे चाहे कैसाही नीचा क्यों न हो, परन्तु जिस प्रशंसामें कपटकी क़लई नहीं होती, वह भला किसे नहीं भाती? लोगोंके मुँहसे प्रेमकी प्यारी प्यारी बातें सुनकर भला किसकी आत्मा नहीं निहाल हो जाती? अच्छे कामके लिये किये हुए परिश्रमके बदले भले लोगोंसे वाह वाही या शाबाशी पानेकी कौन इच्छा नहीं करता? परन्तु जो लोग खुशामदियोंके हाथके खिलौने हैं, वे मनुष्योंके सेवन करने योग्य इन सब सुखोंसे वञ्चितही रहते हैं। ये उनके लिये गूलरके फूल हैं। जहाँ बनावटी प्रेम हज़ारों बातें बना बनाकर कानोंमें मीठा मीठा शब्द ढाला करता है, वहाँ तो सच्चा प्रेम लज्जाके मारे मुँह भी नहीं दिखाना चाहता और विपद्कालमें साथ देनेवाली छायाकी तरह सदा पास ही पास रहकर भी शर्मके मारे

मुँह खोलकर बात नहीं करता। और जहाँ बुरे कामोंकी प्रशंसा होती है, कुकर्मके लिये धन्यवाद दिया जाता है और बिना प्रयोजन भी तारीफ़ोंके पुल बाँधे जाते हैं, वहाँ तो पुरुषार्थी महानुभावगण घृणाके मारे पैर भी रखना नहीं चाहते और कभी कोई अच्छा काम होते देखकर भी प्रशंसा करनेका साहस नहीं कर सकते।

मानव प्रकृतिके मर्म जाननेवाले मनस्वियोंने इन्हीं सब बातोंको सोच विचारकर खुशामदियोंकी निन्दा की है* और सभी देशों तथा सब समयके लोग, इन्हीं सब कारणोंसे, खुशामदियोंको अत्यन्त क्षुद्र जीव समझकर उन्हें बड़ी घृणाके साथ याद करते आये हैं। खुशामदी कुछ चोर डाकू नहीं होते; परन्तु इनका नाम लेते ही ऐसी घृणा उपजती है, जैसी शायद चोर डाकूपर भी नहीं होती। कलाल भी दुनियाकी उतनी

---

*दक्षने कहा है:—"धूर्त्ते वन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे। चाटुचारण चौरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥"

अर्थात् धूर्त्त, स्तुति पाठक, पहलवान, नीम हकीम, जुआरी शठ, खुशामदी, नट और चोरको दिया हुआ दान एकदम बेकार जाता है, इसलिये इन्हें कभी धेला भी न दे। (दक्षस्मृति तृतीय अध्याय)

इस श्लोकमें दो तरहके खुशामदियोंका जिक्र है। पहले भाट और दूसरे "शुद्ध" खुशामदी। इससे मालूम होता है, कि खुशामदी और खुशामदके पेशेपर दक्षको बड़ी भारी घृणा । धूर्त्त, चोर, जुआर और शठ आदिके साथ ही खुशामदी

[ब]राई नहीं करता, जितनी ये ख़ुशामदी ख़ुशामद और ठकुरसुहाती [ब]ातोंकी शराब पिलाकर करते हैं। पेट चाटनेवाले कुत्ते जैसी [न]ीचताकी मूर्त्ति नहीं दिखलाते, ये लोग उससे भी बढ़कर [न]ीचता खुले दिलसे, बिना किसी तरहकी हिचकिचाहटके, दिखलाते हैं और सबके मनमें घृणा उपजाते हैं। ये लोग

भी गिनाया गया है, यह कोई अनुचित या विचित्र बात नहीं है। हाँ, पहलवान, कुबेड़ा और नट आदि भी इसी सिलसिलेमें आ गये—यह बात कुछ विचित्र मालूम पड़ती है।

ख़ुशामदीके बारेमें शेक्सपियरने लिखा है:—

"No vizor does become black villainy
So well as soft and tender flattery"

अर्थात् कोमल और मधुर चाटुकारिताके समान जघन्य पापको ढकनेके लिये कोई परदा उपयुक्त नहीं है।

महर्षि ईसा यों कह गये हैं:—

"*My pupil, they that praise thee, seduce thee, and disorder the paths of thy feet*"

शिष्यगण! जो लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं सच जानो कि, वे तुम्हें बहकाते हैं और तुम्हें अपने रास्तेसे विचलित करना चाहते हैं।

दाऊदने यही दुआ ख़ुदासे मांगी थी, कि "पाक परवर दिगार! तू इन झूठे और मक्कार ख़ुशामदियोंकी ज़बान काट ले।"

औटवेने लिखा है:—

"No flattery, boy, an honest man can't live by it. It is a little sneaking art, which knaves use to cajole, and soften fools withal. If thou

मुँह खोलकर बात नहीं करता। और जहाँ बुरे कामोंकी प्रशंसा होती है, कुकर्मके लिये धन्यवाद दिया जाता है और बिना प्रयोजन भी तारीफ़ोंके पुल बाँधे जाते हैं, वहाँ तो पुरुषार्थी महानुभावगण घृणाके मारे पैर भी रखना नहीं चाहते और कभी कोई अच्छा काम होते देखकर भी प्रशंसा करनेका साहस नहीं कर सकते।

मानव प्रकृतिके मर्म जाननेवाले मनस्वियोंने इन्हीं सब बातोंको सोच विचारकर खुशामदियोंकी निन्दा की है* और सभी देशों तथा सब समयके लोग, इन्हीं सब कारणोंसे, खुशामदियोंको अत्यन्त क्षुद्र जीव समझकर उन्हें बड़ी घृणाके साथ याद करते आये हैं। खुशामदी कुछ चोर डाकू नहीं होते; परन्तु इनका नाम लेते ही ऐसी घृणा उपजती है, जैसी शायद चोर डाकूपर भी नहीं होती। कलाल भी दुनियाकी उतनी

---

*दक्षने कहा है:—" धूर्त्ते वन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे। चाटुचारण चौरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥"

अर्थात् धूर्त्त, स्तुति पाठक, पहलवान, नीम हकीम, जुआरी शठ, खुशामदी, नट और चोरको दिया हुआ दान एकदम बेकार जाता है, इसलिये इन्हें कभी धेला भी न दे। (दक्षस्मृति तृतीय अध्याय)

इस श्लोकमें दो तरहके खुशामदियोंका जिक्र है। पहले भाट और दूसरे "शुद्ध" खुशामदी। इससे मालूम होता है, कि खुशामदी और खुशामदके पेशेपर दक्षको बड़ी भारी घृणा थी। धूर्त्त, चोर, जुआर और शठ आदिके साथ ही खुशामदी

बुराई नहीं करता, जितनी ये खुशामदी खुशामद और ठकुरसुहाती बातोंकी शराब पिलाकर करते हैं। पैर चाटनेवाले कुत्ते जैसी नीचताकी मूर्त्ति नहीं दिखलाते, ये लोग उससे भी बढ़कर नीचता खुले दिलसे, बिना किसी तरहकी हिचकिचाहटके, दिखलाते हैं और सबके मनमें घृणा उपजाते हैं। ये लोग

भी गिनाया गया है, यह कोई अनुचित या विचित्र बात नहीं है। हाँ, पहलवान, कुवैद्य और नट आदि भी इसी सिलसिलेमें आ गये—यह बात कुछ विचित्र मालूम पड़ती है।

खुशामदीके बारेमें शेक्सपियरने लिखा है:—

"No vizor does become black villainy
So well as soft and tender flattery"

अर्थात् कोमल और मधुर चाटुकारिताके समान जघन्य पापको ढकनेके लिये कोई परदा उपयुक्त नहीं है।

महर्षि ईसा यों कह गये हैं:—

"My pupil, they that praise thee, seduce thee, and disorder the paths of thy feet"

शिष्यगण! जो लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं सच जानो कि, वे तुम्हें बहकाते हैं और तुम्हें अपने रास्तेसे विचलित करना चाहते हैं।

दाऊदने यही दुआ खुदासे मांगी थी, [illegible] दिगार! तू इन झूठे और [illegible]

औटवेने लिखा है:—

"No flattery, [illegible]
by it. It is [illegible]
use to [illegible]

Weather cock अर्थात् वात कुक्कट हैं जिधरकी हवा होती है, ये उधर ही अपनी पूंछ डुलाने लगते हैं। धनियोंकी ऊंची अटारियोंपर नजर डालनेसे जिस तरहके वात कुक्कट दिखाई देते हैं उनके अन्दर दूसरी ही तरहके वात कुक्कुट जमे रहते हैं। इन दोनोंमें कौन कौनसी बातें एक दूसरेसे मिल जाती हैं, वह एक वार परीक्षा करके देखना चाहिये। वे लोग दृष्टिदास हैं, इसी लिये जिधर उनके उपास्य देवता होते हैं उधर ही

---

hast flattery in thy nature, out with it or send it to a Court, for there it will thrive."

अर्थात् मेरे बच्चो! खुशामदके बलपर कोई भला आदमी पेट पालना नहीं चाहता। यह एक नीच उपाय है, जिसका अवलम्बन ओछे मनुष्य ही बेवकूफोंको फंसानेके लिये करते हैं। यदि तुममें यह बुरी आदत हो तो इसे जल्द छोड़ दो अथवा किसी राज दरबारमें जाकर इसका उपयोग करो, क्योंकि वहीं इसकी खूब कदर होती है। डिफ़ोने लिखा है,—"when flatterers meet, the devil goes to dinner" अर्थात् जब खुशामदी आ इकट्ठे होते हैं, तब शैतान खाने चला जाता है:—

फेन्टनका कहना है :—

"Beware of flattery, it is a flowery weed which oft offends the very idol vice whose shrine it would perfume"

अर्थात् खुशामदसे दूर भागो, क्योंकि यह अक्सर उस की मूर्त्तिको हानि पहुंचाती है, जिसकी वेदीको यह सुगन्धित कर सकती है।

अपनी खुशामदकी वाग ढीली कर देते हैं। इनकी देह, प्राण, मन सब कुछ बड़े और धनी लोगोंके इशारेपर चलते हैं—चलते हैं क्या नाचते हैं। ये लोग धोखेके बने हुए पुतले हैं, मायाके सूक्ष्म तन्तुओंसे रचे हुए छाया पुरुष हैं। छायाकी तरह इनका उठना बैठना, हाथ पैर चलाना और सिर हिलाना सब कुछ दूसरोंके इशारेपर होता है। सच पूछो तो ये अपनी उपमा आपही हैं। भगवान् करे, इनकी सर्वत्र प्रशंसित होनेवाली करतीपर लोग फूल बरसायें!

अथला कुलरत्न हन्नामूरने लिखा है :—

Hold! No adulation! tis the death of virtue! Who flatters, is of all mankind the lowest, save him who courts the flattery"

अर्थात् चुप रहो, ठकुरसुहाती बातें न करो यह धर्मकी मृत्युके तुल्य है! खुशामदी सबसे निकृष्ट जीव है। ईश्वर उसे बचाये, जिसकी लोग खुशामद करते हैं।

इन सब बातोंको देखनेसे मालूम होता है कि जिन लोगोंने इस संसारको अच्छी तरह देखाभाला है, उन सभोंने खुशामदियोंकी जो खोलकर निन्दा की है। इसलिये अब ज़ियादा नज़ीरें पेश करनेकी कोई ज़रूरत नहीं मालूम होती। क्योंकि जब कवि, दार्शनिक, ऋषि, मुनि और नीतिकार सभी खुशामदियोंसे जलते हैं, तब यह मानही लेना पड़ेगा, कि ये लोग बड़े ही घृणित जीव हैं।

अपनी खुशामदकी बाग ढीली कर देते हैं। इनकी देह, प्राण, मन सब कुछ बड़े और धनी लोगोंके इशारेपर चलते हैं—चलते हैं क्या नाचते हैं। ये लोग धोखेके बने हुए पुतले हैं, मायाके सूक्ष्म तन्तुओंसे रचे हुए छाया पुरुष हैं। छायाकी तरह इनका उठना बैठना, हाथ पैर चलाना और सिर हिलाना सब कुछ दूसरोंके इशारेपर होता है। सच पूछो तो ये अपनी उपमा आपही हैं। भगवान् करे, इनकी सर्वत्र प्रशंसित होनेवाली करनीपर लोग फूल बरसायें!

अथवा कुलरत्न इम्नामूरने लिखा है :—

Hold! No adulation! tis the death of virtue! Who flatters, is of all mankind the lowest, save him who courts the flattery"

अर्थात् चुप रहो, ठकुरसुहाती बातें न करो यह धर्मकी मृत्युके तुल्य है! खुशामदी सबसे निकृष्ट जीव है। ईश्वर उसे बचाये, जिसकी लोग खुशामद करते हैं।

इन सब बातोंको देखनेसे मालूम होता है कि जिन लोगोंने इस संसारको अच्छी तरह देखाभाला है, उन सभोंने खुशामदियोंकी जी खोलकर निन्दा की है। इसलिये अब ज़ियादा नज़ोरें पेश करनेको कोई ज़रूरत नहीं मालूम होती। क्योंकि जब कवि, दार्शनिक, ऋषि, मुनि और नीतिकार सभी खुशामदियोंसे जलते हैं, तब यह मानही लेना पड़ेगा, कि ये लोग बड़े ही घृणित जीव हैं।

इस सूत्रके अनुसार सम्प्रदत्ता (ब्याही हुई) कन्या और दत्तक पुत्र, इन दोनोंके लिये माँ बाप और 'देशी मुर्गी विलायती बोली' के नमूने नये सभ्यों और विलायतसे लौटे हुए आत्मद्रोही बाबुओंके लिये पितृ-कुल, पैतृक आचार, व्यवहार और बाप दादोंका समाज अपादान संज्ञाको प्राप्त होता है। क्योंकि इन स्थलोंमें विश्लेष अर्थात् नाता तोड़में कोई कसर नहीं रह जाती और जिससे विश्लेष या नाता तोड़ होता है, वह भी थोड़े ही दिनोंमें सम्पूर्ण रूपसे उदासीन हो जाता है, विश्लिष्ट अर्थात् नाता तोड़कर अलग हो गया हुआ पदार्थ है या नष्ट हो गया, इसकी भी परवा नहीं करता।*

२—भय हेतुः—जिससे भय उत्पन्न हो, वह अपादान होता है।

---

* जिसे 'डाइवोर्स' (Divorce) अर्थात् 'तलाक़ देना' कहते हैं, वह काम हो जानेपर पति पत्नीमें भी कोई सम्पर्क नहीं रह जाता और वे एक दूसरेके लिये अपादान हो जाते हैं। कारण; 'अपसरतो मेपादपसरति मेषः' ऐसे स्थलोंमें भाष्यप्रदीपकार भर्तृहरिने लिखा है, कि—

> 'मेषान्तरक्रियापेक्षमवधित्वं पृथक् पृथक्।
> मेषयोः स्वक्रियापेक्षं कर्तृत्व च पृथक् पृथक्॥

जहां विवाहका सम्बन्ध नहीं टूटता, केवल प्रेम नहीं रहता, वहां भी उक्त सूत्रके अनुसार स्त्री पुरुषका सम्बन्ध एक दूसरेके साथ अपादानकी तरह होगा या नहीं, इस विषयमें भाष्यमें अथवा भाष्य-प्रदीपमें कुछ भी नहीं लिखा है।

इस सूत्रके अनुसार सम्प्रदत्ता (ब्याही हुई) कन्या और दत्तक [पु]त्र, इन दोनोंके लिये माँ बाप और 'देशी मुर्गी विलायती बोली' [के] नमूने नये सभ्यों और विलायतसे लौटे हुए आत्मद्रोही बाबु-[ओं]के लिये पितृ-कुल, पैतृक आचार, व्यवहार और बाप दादोंका समाज अपादान संज्ञाको प्राप्त होता है। क्योंकि इन स्थलोंमें विश्लेष अर्थात् नाता तोड़में कोई कसर नहीं रह जाती और जिससे विश्लेष या नाता तोड़ होता है, वह भी थोड़े ही दिनोंमें सम्पूर्ण रूपसे उदासीन हो जाता है, विश्लिष्ट अर्थात् नाता तोड़कर अलग हो गया हुआ पदार्थ है या नष्ट हो गया, इसकी भी परवा नहीं करता।*

२—भय हेतुः—जिससे भय उत्पन्न हो, वह अपादान होता है।

* जिसे 'डाइवोर्स' (Divorce) अर्थात् 'तलाक़ देना' कहते हैं, वह काम हो जानेपर पति पत्नीमें भी कोई सम्पर्क नहीं रह जाता और वे एक दूसरेके लिये अपादान हो जाते हैं। कारण, 'अपसरतो मेषादपसरति मेषः' ऐसे स्थलोंमें भाष्यप्रदीपकार भर्त्तृहरिने लिखा है, कि—

'मेषान्तरक्रियापेक्षमवधित्वं पृथक् पृथक्।
मेषयोः स्वक्रियापेक्षं कर्त्तृत्वं च पृथक् पृथक्॥

जहां विवाहका सम्बन्ध नहीं
वहां भी उक्त
साथ

बिचारे अमलोंके लिये मामलेबाज़, वकील मुख़्तारोंके लिये मुवक्किल सभा-सोसाइटियोंके नामसे चन्दा इकट्ठा कर खा जाने वालोंके लिये पबलिक, वोटरोंके लिये कौंसिलों या चुंगीके उम्मीदवार। इसी तरह दामादके लिये सास, गुरुके लिये शिष्य भी अपादानका काम देते हैं, क्योंकि इनसे वे चाहें जितना वसूल करें, ये कुछ बोल नहीं सकते। कोई नया टैक्स वसूल करते समय, बड़े कर्मशील अफ़सरोंके अपादान ज़मीन्दार लोग होते हैं। ज़मीन्दारोंके अपादान ग़रीब प्रजा हैं। नये नये गहने गढ़ानेकी तरकीब सोचनेवाली मृदुमन्द मुस्कराती, इठलाती, इतराती और मदमाती घरनीके लिये 'जोरूका टट्टू' स्वामी भी अपादान बन जाता है।

४—भुवः प्रभावः—आविर्भाव—भूमि अर्थात् प्रथमप्रकाश-स्थान भी अपादान कहा जाता है।

तरङ्ग-मालिनी भागीरथीने पहले पहल हिमालयमें प्रकाश पाया है, अतएव गङ्गाके लिये हिमालय अपादान हुआ और आज-कलके जिन आधे जङ्गली गुणवानोंके सब गुण पहले पहल घरमें ही प्रकाश पाते हैं, उनका अपादान घर ही है। जहां कितने ही आदमी एक साथ बैठे होते हैं और एकके कुछ कहते ही सबके सब ताली पीटते हुए आसमान गुंजा देते हैं, उस स्थानको भी अपादान कहना चाहिये; क्योंकि वहाँ बहुतोंके बहुतसे गुण, जो पहले छिपे हुए रहते हैं, प्रकाशित हो जाते हैं। इसी अर्थमें और भी बहुतसे स्थानोंको अपादान कहा जा सकता है। हमने केवल व्याकरणके लिहाज़से ये दो तीन उदाहरण दे दिये हैं।

५—पराजरसोढः—यदि कोई किसीसे किसी विषयमें हार मान जाय, तो वह हारनेवालेके लिये अपादान हो जाता है। जैसे ताश, चौपड़ या शतरंजके खेल घरघूमनजीसे हार गये हैं, अतएव घरघूमनजी इन खेलोंके अपादान कहलायेंगे। अथवा यदि घरघूमनजी इन खेलोंसे ऊबकर अर्थात् हार मानकर तबला बजाने चले जायँ, तो उनके लिये ये खेल ही अपादान हो जायँगे। देशी विलायती सब तरहकी शराबें प्यारेलालसे हार मान गयी हैं, अतएव प्यारेलाल इन सबके अपादान माने जायँगे अथवा प्यारेलाल इन सबसे हारकर अब गाँजा पीने लगे हैं, इसलिये प्यारेलाल इन शराबोंके अपादान हो जायँगे। कठिन भाषावाले हिन्दीके ग्रन्थ अथवा पढ़ी-लिखी चतुरा नारियाँ आजकलके बाबुओंके लिये अपादान बन रही हैं; क्योंकि हिन्दीके ग्रन्थ तो उन्हें अच्छे ही नहीं लगते और सुयोग्य स्त्रियोंकी सङ्कुचित भौंहोंके सामने भी वे दिल कड़ा करके खड़े नहीं रह सकते। बहुतोंके लिये सब तरहके ग्रन्थ अपादान ही हैं; क्योंकि उनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर होता है। क्या हिन्दी, क्या उर्दू, क्या फारसी क्या संस्कृत; सभी भाषाएं उनके लिये पर्वतकी तरह अगम हैं। पण्डित सर्वज्ञानन्द अपनी पाठशालाके चौपटचन्द पाँड़ेको 'अपादान' ही कहा करते थे; क्योंकि वह रात दिन हड्डी तोड़ मिहनत करके भी अन्तमें चौपटचन्दसे हार मान गये, पर कुछ भी लिख पढ़ न ... । आजकलके मास्टर भी इसी अर्थमें किसी किसी छात्रको

अपादान कहा करते हैं। इसका कारण यह है, कि आदेश, उप-देश, थप्पड़ घूंसा, छड़ी, बेंत आदि सब प्रकारकी प्रक्रियाएं ऐसे छात्रोंसे हार मान जाती हैं।

६—यतः प्रमादः*—जिससे प्रमाद उत्पन्न हो उसे भी अपादान कहते हैं। मूर्ख पुत्र, मूर्ख मित्र, मूर्ख मन्त्री और मूर्ख वैद्य, इन चारोंको सबसे पहले इस सूत्रके उदाहरण समझने चाहिये। कंजूस बाप जीवन भर दुःख उठाकर रुपया जमा कर जाता है और मूर्ख पुत्र होश सम्हालते ही सारा धन फूंक देता है, जिससे बड़ा भारी प्रमाद उत्पन्न होता है। शत्रु जितनी बुराई नहीं करता, उससे कहीं अधिक मूर्ख मित्र कर बैठते हैं। मूर्ख मन्त्री दिलका साफ़ होने पर भी अपनी बेवकूफ़ीके मारे विपद्‌को न्यौता देकर बुला लाता है। रहे मूर्ख वैद्य, सो इनके बारेमें तो सब देशोंके सब शास्त्रोंकी एक राय है और वह यह है, कि ये यमराजके बड़े भैया हैं। 'नीम हकीम खतरे जान' की कहावत हर जगह मशहूर है। मनुष्यगणना करते समय मूर्ख स्वामी और रूपाभि-मानिनी कुलकामिनी भी प्रमाद पैदा करनेवाली होनेके कारण अपादान संज्ञा पाने योग्य है। वस्तु-गणनाके अनुसार इस सूत्रके प्रधान उदाहरण शराब और सूदखोरी है; क्योंकि लोग नित्य देखते हैं, कि इनके कारण कितना प्रमाद उत्पन्न होता है। कोई-कोई वैयाकरणी मुद्रा और कङ्कणके झणत्कारको भी प्रमादका

* भी शब्दकी तरह 'प्रमाद' के भी कितने ही अर्थ होते हैं।

चीज मानते और उन्हें अपादानकी संज्ञा प्रदान करते हैं। उनके इस सिद्धान्तमें अतिव्याप्ति-दोष है, कि नहीं, यह एक विचारने की बात है।

सम्प्रदान।

१—यस्मै दानम्—जिसको दिया जाये अर्थात् जिसके निमित्त कुछ ख़र्च करनेको लाचार होना पड़े, वह सम्प्रदान कारक कहा जाता है।

संसारमें सम्प्रदान कारककी कोई कमी नहीं है। सब लोग, किसी न किसीके आगे, एक दिन सम्प्रदानकी मूर्त्ति धारणकर हाथ फैलाने जाते ही हैं। पूजा पाठ, तीज त्यौहार, श्राद्ध या विवाहके दिनोंमें तो सम्प्रदान कारकोंसे तङ्ग आकर घरके किवाड़ बन्द करने पड़ते हैं। सम्प्रदान कारकोंमें इस देशके धर्मनाशक और शिष्य-शोषक 'गुरु गुसैयाँ', कर्मनाशक पुरोहित, भृकुटि-भयङ्कर भाट और निष्काम, निस्पृह तथा निर्लिप्त संन्यासी प्रधान हैं। इसी श्रेणीमें वे स्वार्थत्यागी, हिन्दी-प्रेमी, समाज-सुधारक और देश-हितैषी भी आ जाते हैं, जो आये दिन गृहस्थोंके पास चन्दा वसूल करनेके लिये पहुंचे ही रहते हैं। बल्कि गुरु महाराज तो सम्प्रदान कारकोंमें शिरोमणि हैं। * किसी देशमें आजतक उनकासा भयङ्कर सम्प्रदान नहीं उत्पन्न हुआ।

* Vide the great Maharaja Libel case of Bombay—
—धनदारादिकं सर्वं गुरवे हि निवेदितम्।

छात्रोंको थप्पड़-घूंसे रसीद करने पर या डरी हुई सीधी सादी औरत तथा आंखोंमें आंसू भरे हुई बुढ़िया मांको गाली देनेपर वे भी सम्प्रदान कही जायंगी या नहीं, यह अबतक निश्चित नहीं हो सका है।

"खण्डिकोपाध्यायः शिष्याय चपेटं ददाति इति—" भाष्य-प्रयोगानुसार इस स्थलमें भी सम्प्रदान संज्ञाका व्यवहार होता है। विलायतमें रोजगारी सम्प्रदानोंके लिये बड़ा कड़ा क़ानून है। वे रास्तेमें खड़े होकर राह चलने वालोंको तङ्ग नहीं करने पाते। वे इश्तहार छपवा छपवा कर बड़े आडम्बरके साथ दान ग्रहण करते हैं। इसलिये वे महासम्प्रदान हैं।

२—रुच्यर्थानाम्प्रीयमाणः—जो वस्तु जिसे बहुत पसन्द आती है, उस वस्तुके सम्बन्धसे उसमें सम्प्रदान कारक होता है। तुम्हारे बागमें बेला, जूही और चमेलीके जो फूल खिले हैं, वे मुझे बहुत पसन्द आते हैं, इसलिये उन फूलोंके लिये मैं सम्प्रदान हूंगा। मैं चाहूं तो उन्हें ले लूँ, न चाहूं तो न लूं, दोनों ही बातें एकसी हैं; पर मैं हूंगा सम्प्रदान ही। इसी प्रकार, तुम्हारा घर द्वार, जगह जमीन, गाड़ी घोड़ा, बर्त्तन बासन, गहना कपड़ा यहांतक कि जो कुछ तुम्हारा है, वह सब मुझे बड़ा अच्छा लगता है। अतएव तुम्हारी सब चीजोंके सम्बन्धमें मैं स्वयमिच्छु सम्प्रदान हूं। तुम्हें यह बात अच्छी लगे या बुरी, पर जब तुम्हारी चीजोंपर मेरे दांत गड़ गये हैं, तब मेरी सम्प्रदानता कहां जाती है! कारण

शास्त्रमें लिखा है —“ देवदत्ताय रोचते मोदकः—” अर्थात् देवदत्तको मिठाई बहुत पसन्द है। अतएव इस मिठाईके लिये देवदत्त सम्प्रदान होगा। तब एक गोलमाल यही है, कि तुम्हें भी मेरी सब चीजें अच्छी लग सकती हैं और तुम भी उनके सम्बन्धमें अपने आपको सम्प्रदान बना ले सकते हो। सम्प्रदानताकी इस मारामारमें मीमांसाका एक मात्र द्वार समाज विज्ञानरूपी आधुनिक शास्त्र ही है, किन्तु उसकी प्रधानता सब लोग थोड़े ही स्वीकार करते हैं !

करण

३—साधकतमं करणम्—परकीय क्रिया—निष्पत्तिका जो सर्वप्रधान साधक है, उसे करण कारक कहते हैं।

करण कारक आलसी और निकम्मा नहीं है। वह सदा किसी न किसी भले बुरे काममें लगा रहता है। परन्तु वह क्रिया उसकी अपनी नहीं होती, कर्त्ता उसे जिस भावसे जिस क्रियामें लगा देता है, वह उसी भावसे उस क्रियामें नियुक्त हो जाता है। चरवाहेके हाथमें डण्डा, संपेरेके हाथमें तुम्बड़ी, बाजीगरके हाथमें कठपुतली, रण्डीके हाथमें यार, अमलोंके हाथमें अहमक हाकिम, लालाजीके हाथमें नौकर करणका काम देते हैं। कर्त्ता जिन सब क्रियाओंको करना चाहते हैं, उनमें ये लोग सहायता पहुंचाते हैं। तेलीका बैल करण कारक है, क्योंकि वह तेल किसे कहते हैं, यह न तो जानता न आंखों देखता, तोभी दिन रात कोल्हू पेरता रहता है। आफिसके

किरानी और अदालतके मुहर्रिर भी करण कारक है, क्योंकि वे यह नहीं समझते, कि वे क्या लिख रहे हैं, वे न तो समझना चाहते हैं, न समझनेका अवकाशही पाते हैं; तोभी जब देखो, तभी क़लम घिसघिस करते रहते हैं। रोज़गारी भिक्षमंगे अपने गुरुकी बतायी हुई दो चार बातें याद्कर लेते और वही सब कह कह कर औरतों और गँवारोंको फुसलाया करते हैं। इससे अपने गुरुके लिये वे भी करण कारक ही हुए; क्योंकि गुरुजी इनके द्वारा अपनी कीर्त्ति दसों दिशाओंमें फैलाते हैं। ख़ुशामदी लोग ठकुरसुहाती बातें बना बनाकर, जिस आदमीसे अपना काम निकाल लेते हैं, वह भी उनके लिये करण कारक हो जाता है। कारण यह बात हम दिन रात प्रत्यक्ष देखते हैं, कि ख़ुशामदियोंकी चिकनी चुपड़ी बातें सुनकर लोगोंके हृदय ऐसे विमोहित हो जाते हैं, कि उनका कर्त्तृत्व नष्ट हो जाता है और वे करणताको प्राप्त हो जाते हैं। व्याकरणके अनुसार और भी बहुतसे करण कारक हो सकते हैं, जिन्हें हम सदा सर्वदा देखते भी हैं। न भी देखें, तो उनकी कहानियाँ ज़रूर सुना करते हैं और उनके कार्यों-का फल देखकर उनका परिचय पा लेते हैं। इसका कारण यह है, कि चाहे तुम क्रिया करो या क्रीड़ा—देवताओंके योग्य दुर्लभ रत्न पानेकी इच्छा करो या पिशाचवृत्ति अवलम्बन कर पापके दलदलमें फँसना चाहो, विना करण [illegible] सहायताके तुम कुछ भी न कर सकोगे। जो लोग [illegible]

कार्मुक हाथमें लेकर [illegible] हैं,

शास्त्रमें लिखा है —"देवदत्ताय रोचते मोदकः—" अर्थात् देवदत्तको मिठाई बहुत पसन्द है। अतएव इस मिठाईके लिये देवदत्त सम्प्रदान होगा। तब एक गोलमाल यही है, कि तुम्हें भी मेरी सब चीजें अच्छी लग सकती हैं और तुम भी उनके सम्बन्धमें अपने आपको सम्प्रदान बना ले सकते हो। सम्प्रदानताकी इस मारामारमें मीमांसाका एक मात्र द्वार समाज विज्ञानरूपी आधुनिक शास्त्र ही है, किन्तु उसकी प्रधानता सब लोग थोड़े ही स्वीकार करते हैं !

करण

३—साधकतमं करणम्—परकीय क्रिया—निष्पत्तिका जो सर्वप्रधान साधक है, उसे करण कारक कहते हैं।

करण कारक आलसी और निकम्मा नहीं है। वह सदा किसी न किसी भले बुरे काममें लगा रहता है। परन्तु वह क्रिया उसकी अपनी नहीं होती, कर्त्ता उसे जिस भावसे जिस क्रियामें लगा देता है, वह उसी भावसे उस क्रियामें नियुक्त हो जाता है। चरवाहेके हाथमें डण्डा, संपेरेके हाथमें तुम्बड़ी, बाजीगरके हाथमें कठपुतली, रण्डीके हाथमें यार, अमलोंके हाथमें अहमक हाकिम, लालाजीके हाथमें नौकर करणका काम देते हैं। कर्त्ता जिन सब क्रियाओंको करना चाहते हैं, उनमें ये लोग सहायता पहुंचाते हैं। तेलीका बैल करण कारक है, क्योंकि वह तेल किसे कहते हैं, यह न तो जानता न आंखों देखता, तोभी दिन रात कोल्हू पेरता रहता है। आफिसके

घरमें पुर वासिनियोंके निकट सुमधुर स्निग्ध भावसे वास करते थे। उस समय वन, रणक्षेत्र और अन्तः पर क्रमशः उनकी तपस्या, वीरत्व प्रकाश और स्नेह प्रदर्शन आदि क्रियायोंके अधिकरण थे। परन्तु आजकल लोग बड़ो भीड़ भाड़ और चहल पहलके अन्दर, रोशनीसे जगमगाते हुए सभा स्थानमें तपस्या करते हैं, रोब दिखलानेके लिये घूंघटवाली स्त्रियोंके सामने खड़े होते हैं और लात जूते खाकर भी ज़बर्दस्तके सामने सिर झुकाते हैं, गिड़ गिड़ाते हैं, और रोते कानते हैं। इसलिये इसमें कोई सन्देह नहीं, कि इन दिनों उनके लिये सभास्थान, जनानख़ाना और ज़बर्दस्तका सामना ही उक्त तीनों क्रियाओंका अधिकरण हो गया है।

कर्म

कर्त्तरीप्सिततमं कर्म—कर्त्ता जिसे अत्यन्त प्यार करे, उसे कर्म कहते हैं। इसके अनुसार बकरा, भेड़ा आदि देवताओंको बलि देने योग्य प्रिय वस्तुओंको कर्मकारक कहा जा सकता है। इसलिये, जो लोग पुरुषार्थका त्यागकर बकरे और भेड़ेकी तरह जीवन बिताते हैं, उन्हें कर्त्ताके सम्पर्कसे कर्म कारकही कहेंगे। कर्म कारककोऔर भी एक सरल संज्ञा है। वह यह है।

क्रियया‌क्रान्तं कर्म—

अर्थात् कर्त्ताकी क्रिया द्वारा जो आक्रान्त होता है, अर्थात् कर्त्ताकी क्रिया जिसके सिरपर पड़ती है, उसे कर्म कारक कहते हैं। जर्मनीके सम्राट् विलियम क़ैसरने सात समुद्र पार बैठे हँसते

उनकी प्रयोग निपुणताकी प्रधान परीक्षा भी करण कारकोंसे काम लेनेमें ही होती है। और भी जितनी तरहके काम हैं, सबमें करण कारकोंकी सहायता प्रधानतया दरकार होती है। क्योंकि लोग जिसे उपकरण कहते हैं, वह भी तो करण कारकोंमें ही आ जाता है। किताब बहुत बड़ी हो जायगी, इसी भयसे हमने यहाँ थोड़ेसे उदाहरण दे दिये।

अधिकरण

१—आधरोऽधिकरणम्—क्रियाका जो आधार हो, उसे अधिकरण कारक कहते हैं। अधिकरण कारक शयन मन्दिरकी खाटकी तरह एक जगह पड़ा रहता है और कर्त्ता उसके सिरपर बोझा रखकर औरोंको निमन्त्रण देकर जिमाता है। किये हुए कार्यका गुण और यश तो कर्त्ताके मत्थे मढ़ा जाता है और दोष तथा अपयशका भागी अधिकरण होता है। अंगरेजीमें अनुवाद करनेपर अधिकरण कारकको किसी किसी अर्थमें scape-goat (बलि पशु) भी कह सकते हैं। क्योंकि सब लोग सदा यही चाहते हैं, कि हमारे किये हुए कर्मोंका जो कुछ बुरा फल हो, वह किसी अधिकरणके ही मत्थे मढ़ दिया जाय, तो अच्छा है।

जहांपर कोई क्रिया की जाती है। उसे भी अधिकरण कहते हैं। जैसे, 'तुम घरमें बैठकर काम करते हो' इस वाक्यमें घर अधिकरण हुआ। पहले इस देशके पुरुषगण वनमें तपस्या करने, रणमें सम्मुख समर करते हुए विक्रम प्रकट करते, और

घरमें पुर वासिनियोंके निकट सुमधुर स्निग्ध भावसे वास करते थे। उस समय वन, रणक्षेत्र और अन्तः पर क्रमशः उनकी तपस्या, वीरत्व प्रकाश और स्नेह प्रदर्शन आदि क्रियायोंके अधिकरण थे। परन्तु आजकल लोग बड़ी भीड़ भाड़ और चहल पहलके अन्दर, रोशनीसे जगमगाते हुए सभा स्थानमें तपस्या करते हैं, रोष दिखलानेके लिये घूंघटवाली स्त्रियोंके सामने खड़े होते हैं और लात जूते खाकर भी ज़बर्दस्तके सामने सिर झुकाते हैं, गिड़ गिड़ाते हैं, और रोते कानते हैं। इसलिये इसमें कोई सन्देह नहीं, कि इन दिनों उनके लिये सभास्थान, जनानखाना और ज़बर्दस्तका सामना ही उक्त तीनों क्रियाओंका अधिकरण हो गया है।

कर्म

कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म—कर्त्ता जिसे अत्यन्त प्यार करे, उसे कर्म कहते हैं। इसके अनुसार बकरा, भेड़ा आदि देवताओंकी बलि देने योग्य प्रिय वस्तुओंको कर्मकारक कहा जा सकता है। इसलिये, जो लोग पुरुषार्थका त्यागकर बकरे और भेड़ेकी तरह जीवन बिताते हैं, उन्हें कर्त्ताके सम्पर्कसे कर्म कारकही कहेंगे। कर्म कारककीऔर भी एक सरल संज्ञा है। वह यह है।

क्रियया क्रान्तं कर्म—

अर्थात् कर्त्ताकी क्रिया द्वारा जो आक्रान्त होता है, अर्थात् कर्त्ताकी क्रिया जिसके सिरपर पड़ती है, उसे कर्म कारक कहते हैं। जर्मनीके सम्राट् विलियम कैसरने सात समुद्र पार बैठे हंसते

खेलते हुए क्रिया की और वह क्रिया समुद्र पारकर, पहाड़ लाँघकर चीनके सिरपर आ घहरायी, इसलिये चीनकी प्रजा उस सम्बन्धमें कर्म कारक हुई। पण्डितजीने व्यास गद्दीपर बैठे हुए राम वनवासकी कथा लोगोंको सुनायी; बस सब लोग ऐसे व्याकुल हो गये, कि एक दूसरेकी देहपर लुढ़क पड़ने लगे। किसी प्रसिद्ध और विकट वक्ताने सभा मण्डपमें खड़े होकर गगन भेदी उच्च स्वरसे दो चार अनूठी बातें कह सुनायीं और विना मूँछोंके बालक नाच उठे। कोई कवि कल्पित कपिवरकी भाँति सभ्यता सीखनेके लिये दो चार दिनोंके लिये विदेश चला गया और देशमें आकर अपनी अनोखी चाल ढालका नमूना दिखाना शुरू किया, बस सब लोग उसके पीछे पीछे दौड़ने लगे। ऐसे क्रिया-मुग्ध मनुष्योंको हम कर्म कारक ही कहेंगे; क्योंकि वे दूसरोंकी क्रियासे आक्रान्त होते हैं।

जो लोग आँखें रहते भी दूसरोंकी आँखोंसे देखते हैं, बुद्धि रहते भी परायी बुद्धिसे चलते हैं, दूसरे खिला दें, तो खाते हैं; अपने खानेका ज़रिया आप नहीं ढूँढ़ते हैं; दूसरे उठा दें, तो उठते हैं, अपने आप उठनेकी चेष्टा नहीं करते; और समझा दें, तो समझते हैं, पर आप अपनी अक्लपर ज़ोर नहीं देते, उन्हें भी कर्म कारकही कहते हैं। किसी किसी श्रेणीके लोग यशस्वी व्यक्तियोंके निकट सब समय कर्म कारक ही होते हैं और व्यक्ति विशेषके निकट तो विशेष करके होते हैं।

कर्त्ता

स्वतन्त्रः कर्त्ता ।

जो अपनी क्रियामें करणादि कारकोंसे ज़रूरतके मुताबिक़ सहायता लेनेके सिवा और कभी किसीके आगे पराधीनता नहीं स्वीकार करता, आपही अपना कार्य साधन करता है, वही कर्त्ता कहलाता है।

क्रिया सम्पादकः कर्त्ता ।

जो आलस्यके भाण्डार या मिट्टीके ढेलेकी तरह चुपचाप किसी कोनेमें नहीं पड़े रहते अथवा हवामें उड़ते हुए तिनकेकी तरह दूसरेकी शक्तिसे इधर उधर नहीं उड़ते फिरते ; बल्कि स्वतः प्रवृत्त होकर जगत्में स्वयं अपना कार्य सम्पादन करते हैं, वही कर्त्ता कहलाते हैं।

जैसे पंछियोंमें गरुड़ और पशुओंमें सिंह राजा होता है, वैसे-ही कारकोंमें अथवा मनुष्य-समाजमें कर्त्ता राजा है। कर्त्ता देखते ही पहचानमें आ जाता है। कर्त्तृ कारकोंके ललाट चौड़े, सिर ऊँचे, दृष्टि मर्मस्पर्शिनी, बुद्धि गम्भीर, आत्मा उद्यमपूर्ण, आकांक्षा अतीव उच्च, चित्त निर्मल, अचञ्चल और पर्वतवत् धीर; वाक्य अर्थ युक्त और मधुर तथा गति विनय लाञ्छित और अभिमान वर्जित होती है। यह भी स्वाधीनताके ही लक्षण हैं। उनके शरीर या मनपर पराधी छाप नहीं पड़ी होती। उनमें आलस्य नहीं होता, उदासीनता नहीं होती, आहार निद्राकी ओर

खेलते हुए क्रिया की और वह क्रिया समुद्र पारकर, पहाड़ लांघकर चीनके सिरपर आ वहरायी, इसलिये चीनकी प्रजा उस सम्बन्धमें कर्म कारक हुई। पण्डितजीने व्यास गद्दीपर बैठे हुए राम वनवासकी कथा लोगोंको सुनायी; बस सब लोग ऐसे व्याकुल हो गये, कि एक दूसरेकी देहपर लुढ़क पड़ने लगे। किसी प्रसिद्ध और विकट वक्ताने सभा मण्डपमें खड़े होकर गगन भेदी उच्च स्वरसे दो चार अनूठी बातें कह सुनायीं और विना मूँछोंके बालक नाच उठे। कोई कवि कल्पित कपिवरकी भाँति सभ्यता सीखनेके लिये दो चार दिनोंके लिये विदेश चला गया और देशमें आकर अपनी अनोखी चाल ढालका नमूना दिखाना शुरू किया, बस सब लोग उसके पीछे पीछे दौड़ने लगे। ऐसे क्रिया-मुग्ध मनुष्योंको हम कर्म कारक ही कहेंगे; क्योंकि वे दूसरोंकी क्रियासे आक्रान्त होते हैं।

जो लोग आँखें रहते भी दूसरोंकी आँखोंसे देखते हैं, बुद्धि रहते भी परायी बुद्धिसे चलते हैं, दूसरे खिला दें, तो खाते हैं; अपने खानेका ज़रिया आप नहीं ढूँढ़ते हैं; दूसरे उठा दें, तो उठते हैं, अपने आप उठनेकी चेष्टा नहीं करते; और समझा दें, तो समझते हैं, पर आप अपनी अक्लपर ज़ोर नहीं देते, उन्हें भी कर्म कारकही कहते हैं। किसी किसी श्रेणीके लोग यशस्वी व्यक्तियोंके निकट सब समय कर्म कारक ही होते हैं और व्यक्ति विशेषके निकट तो विशेष करके होते हैं।

कर्त्ता

स्वतन्त्रः कर्त्ता ।

जो अपनी क्रियामें करणादि कारकोंसे ज़रूरतके मुताबिक़ सहायता लेनेके सिवा और कभी किसीके आगे पराधीनता नहीं स्वीकार करता, आपही अपना कार्य साधन करता है, वही कर्त्ता कहलाता है ।

क्रिया सम्पादकः कर्त्ता ।

जो आलस्यके भाण्डार या मिट्टीके ढेलेकी तरह चुपचाप किसी कोनेमें नहीं पड़े रहते अथवा हवामें उड़ते हुए तिनकेकी तरह दूसरेकी शक्तिसे इधर उधर नहीं उड़ते फिरते ; बल्कि स्वतः प्रवृत्त होकर जगत्‌में स्वयं अपना कार्य सम्पादन करते हैं, वही कर्त्ता कहलाते हैं ।

जैसे पंछियोंमें गरुड़ और पशुओंमें सिंह राजा होता है, वैसे-ही कारकोंमें अथवा मनुष्य-समाजमें कर्त्ता राजा है । कर्त्ता देखते ही पहचानमें आ जाता है । कर्तृ कारकोंके ललाट चौड़े, सिर ऊँचे, दृष्टि मर्मस्पर्शिनी, बुद्धि गम्भीर, आत्मा उद्यमपूर्ण, आकांक्षा अतीव उच्च, चित्त निर्मल, अचञ्चल और पर्वतवत् धीर; वाक्य अर्थ युक्त और मधुर तथा गति विनय लाञ्छित और अभिमान वर्जित होती है । यह भी स्वाधीनताके ही लक्षण हैं । उनके शरीर या मनपर पराधी छाप नहीं पड़ी होती । उनमें आलस्य नहीं होता, उदासीनता नहीं होती, आहार निद्राकी ओर

कर्म कारक, नारी समाजमें कर्त्ृ कारक और सुचतुर बुद्धिमान मनुष्योंके हाथमें करण कारक हो जाते हैं। हमारे बाबू साहब लोग आजकल स्त्रियों और नौकर चाकरोंके ही सामने कर्त्तापन प्रकट करते हैं। ऐसा गर्जन करते हैं, कि वज्र भी लज्जित हो जाय, ऐसी आंखें तरेरते हैं, कि देखते ही बच्चे डरके मारे सामनेसे भाग जाय, पर वेही लोग अवस्था भेदसे समृद्ध शक्तिशाली और उच्चपदस्थ व्यक्तियोंके सामने कर्म कारक हो जाते हैं, कारण वे ऐसे लोगोंके पैर चूमनेमें ही अपना अहोभाग्य समझते हैं और उनके पदारविन्दके भौंरे बननेके लिये व्याकुल रहा करते हैं।

कहनेका मतलब यह है, कि जो लोग दूसरोंके कर्तृत्वके भरोसे कर्त्ता बने बैठे हैं, उन्हें प्रयोज्य कर्त्ता कहते हैं। स्वावलम्बी सत्पुरुष तो अपनी ही शक्तिके भरोसेपर कर्त्ता बनना चाहते हैं, इसीसे दर असल ये ही कर्त्ता कहलाने योग्य हैं जो लोग दूसरोंकी क्षमतासे, दूसरोंके हुकमसे, कर्तृत्व करते हैं, सूत्रार्थके मर्मानुसार वे प्रयोज्य कर्त्ता हैं। दूसरे लोग उनको जैसा सिखा देते हैं, वही वे किसी सभामें आकर उगल आते हैं। वे दूसरोंकी दिखायी राहसे चलते, और अपने लोक परलोक दूसरोंहीके चरणोंमें अर्पित कर देते हैं—परमार्थके बातोंमें भी वे पराया ही मुंह जोहा करते हैं। प्रयोज्य कर्त्ता, पाणिनिके मतानुसार, अनेक स्थानोंमें, अति निकृष्ट कर्म कारक समझा जाता है।

ध्यान नहीं होता और कालाकालका भेद नहीं रहता। वे सब समय कार्यमें लिप्त रहते हैं। कर्त्ताके निकट कर्म, करण आदि सभी कारक आपसे आप श्रद्धासे सिर झुका देते और उसकी शक्तिसे विमोहित होकर उसके अनुगत हो रहते हैं। कर्त्ता भले बुरे, दोनों तरहके होते हैं। पर वे भले हों या बुरे, उनके कर्त्तापनमें कोई रोक टोक नहीं कर सकता। नेपोलियन, वाशिङ्गटन, हैमडन और शेक्सपियरके कर्त्ता होनेमें भला कौन सन्देह कर सकता है! कर्त्तृ पद वाच्य कीर्त्तिमान् पुरुष कभी, किसी बातमें, किसीके पराधीन होते ही नहीं—ऐसी बात नहीं है। उनमेंसे अनेक, अनेक विषयोंमें, पराधीन हुआ करते हैं; पर वह पराधीनता वे जान बूझकर, प्रेम या भक्तिके वश होकर, स्वीकार करते हैं। लूथर आपही अद्वितीय कर्त्ता थे, तोभी वे मधुर स्वभाव मिलाङ्कथनके अधीन थे। नेपोलियन बोनापार्ट मनस्वी और कर्मठ व्यक्तियोंके उपदेशके सामने सिर झुका दिया करते थे, रिशलून राजनीति सागर अद्वितीय कर्णधार होनेपर भी, अपने विश्वासी अधीन पुरुषोंको मित्रकी तरह मानते और सब बातोंमें उनकी सलाह लिया करते थे।

परिशिष्ट

अवस्थावशात् कारकाणि।

जिस स्थानमें जो कारक होना चाहिये, अवस्था भेदसे कभी कभी वह वहां नहीं होता। जैसे कोई कोई पुरुष समाजमें,

कर्म कारक, नारी समाजमें कर्त्ता कारक और सुचतुर बुद्धिमान मनुष्योंके हाथमें करण कारक हो जाते हैं। हमारे बाबू साहब लोग आजकल स्त्रियों और नौकर चाकरोंके ही सामने कर्त्तापन प्रकट करते हैं। ऐसा गर्जन करते हैं, कि वज्र भी लज्जित हो जाय, ऐसी आंखें तरेरते हैं, कि देखते ही बच्चे डरके मारे सामनेसे भाग जाय, पर वेही लोग अवस्था भेदसे समृद्ध शक्तिशाली और उच्चपदस्थ व्यक्तियोंके सामने कर्म कारक हो जाते हैं, कारण वे ऐसे लोगोंके पैर चूमनेमें ही अपना अहोभाग्य समझते हैं और उनके पदारविन्दके भौंरे बननेके लिये व्याकुल रहा करते हैं।

कहनेका मतलब यह है, कि जो लोग दूसरोंके कर्तृत्वके भरोसे कर्त्ता बने बैठे हैं, उन्हें प्रयोज्य कर्त्ता कहते हैं। स्वावलम्बी सत्पुरुष तो अपनी ही शक्तिके भरोसेपर कर्त्ता बनना चाहते हैं, इसीसे दर असल ये ही कर्त्ता कहलाने योग्य हैं जो लोग दूसरोंकी क्षमतासे, दूसरोंके हुक्मसे, कर्तृत्व करते हैं, सूत्रार्थके मर्मानुसार वे प्रयोज्य कर्त्ता हैं। दूसरे लोग उनको जैसा सिखा देते हैं, वही वे किसी सभामें जाकर उगल आते हैं। वे दूसरोंकी दिखायी राहसे चलते, और अपने लोक परलोक दूसरोंहीके चरणोंमें अर्पित कर देते हैं—परमार्थके बातोंमें भी वे पराया ही मुंह जोहा करते हैं। प्रयोज्य कर्त्ता, पाणिनिके मतानुसार, अनेक स्थानोंमें, अति निकृष्ट कर्म कारक समझा जाता है।

उपसंहार

विश्वविद्यालयके जो तत्त्वदर्शी युवक-गण मानव जीवन रूपी अविनाशी विद्यालयकी प्रवेशिका परीक्षाके लिये इस कारक—प्रकरणको पढ़ेंगे, उनसे अन्तमें हमारा यही निवेदन है, कि अवस्थाधीन कारकता छोड़, ईश्वरीय व्यवस्थाधीन कारकता प्राप्त करनेका मन—वचन—कर्मसे उद्योग करें और किसी प्रकारके घृणित जातीय करण कारकसे अथवा जघन्य मनुष्योंकी जघन्य क्रियासे आक्रान्त होकर क्रियाक्रान्त कर्म—कारककी दशाको न प्राप्त हों, वल्कि सभी अपनी अपनी शक्तिके अनुसार कर्त्तापन प्राप्त करनेके लिये जी जानसे उद्योग करें। और सर्वसाधारण मनुष्योंसे यही कहना है, कि आप लोग सदा इस वातका ध्यान रखें कि पाणिनिके शिष्य लोग जिसे 'निपात' कहते हैं उस श्रेणीमें कहीं आपकी भी गिनती न होने पाये। क्योंकि मनुष्योंमें वाञ्छित क्रियाके योगसे अति क्षुद्र मनुष्य होना भी अच्छा है, पर एकदम निकम्मा होकर 'निपात' नामका अधिकारी होना अच्छा नहीं।

सामाजिक निग्रह

अविच्छिन्न सुख या सम्पत्ति मनुष्यकी आशाके बाहर बात है। जहां जिस परिमाणमें एक ओर परितृप्ति है, वहीं उसी परिमाणमें दूसरी ओर अतृप्ति है। जिस वाणिज्यमें एक वस्तुको खरीद है, उतनी ही दूसरी वस्तुकी बिक्री है। प्रेममें पराधीनता, भोगमें वैराग्य, आशामें उद्वेग, प्रभुतामें विपद्, कीर्त्तिमें कलंक, वैभवमें लोगोंका विद्वेष और बुद्धिमें अकारण भय भरा हुआ है। हानि और लाभ, सञ्चय और अपचयका यह नियम अव्यर्थ और अनुल्लंघनीय है। संसारमें किसी स्थानपर इस नियममें उलट फैर नहीं दिखाई देता। सच पूछो तो मनुष्यका सामाजिक सुख और सामाजिक सम्पद्दा भी इस निष्ठुर नियमके अधीन है। दार्शनिकोंमें जो लोग समाज शक्तिके अन्ध–भक्त हैं, वे हालाहाली इस बातपर हामी भले ही न भरें, पर खूब गौर करके देखनेपर वे भी इसी नतीजेपर पहुंचेंगे। प्रत्यक्ष प्रमाणके साथ कोई कब तक झगड़ा कर सकता है!

समाजका गौरव निश्चय ही बहुत बढ़ा हुआ है। सरसरी तौरसे देखनेपर भी यही मालूम होता है, कि मानव जातिको आजकल चाहे जिस विषयमें उन्नति हुई हो, उसकी जड़ समाजका बन्धन ही है। मनुष्य सामाजिक जीव है, इसीलिये

उपसंहार

विश्वविद्यालयके जो तत्त्वदर्शी युवक-गण 'मानव जीवन
रूपी अविनाशी विद्यालयकी प्रवेशिका परीक्षाके लिये इस
कारक—प्रकरणको पढ़ेंगे, उनसे अन्तमें हमारा यही निवेदन
है, कि अवस्थाधीन कारकता छोड़, ईश्वरीय व्यवस्थाधीन
कारकता प्राप्त करनेका मन—वचन—कर्मसे उद्योग करें और
किसी प्रकारके घृणित जातीय करण कारकसे अथवा अधम
मनुष्योंकी जघन्य क्रियासे आक्रान्त होकर क्रियाक्रान्त कर्म-
कारककी दशाको न प्राप्त हों, बल्कि सभी अपनी अपनी शक्तिके
अनुसार कर्त्तापन प्राप्त करनेके लिये जी जानसे उद्योग करें।
और सर्वसाधारण मनुष्योंसे यही कहना है, कि आप लोग
सदा इस बातका ध्यान रखें कि पाणिनिके शिष्य लोग जिसे
'निपात' कहते हैं उस श्रेणीमें कहीं आपकी भी गिनती न
होने पाये। क्योंकि मनुष्योंमें वाञ्छित क्रियाके योगसे अति क्षुद्र
मनुष्य होना भी अच्छा है, पर एकदम निकम्मा होकर 'निपात'
नामका अधिकारी होना अच्छा नहीं।

सामाजिक निग्रह

अविच्छिन्न सुख या सम्पत्ति मनुष्यकी आशाके बाहर बात है। जहां जिस परिमाणमें एक ओर परितृप्ति है, वहीं उसी परिमाणमें दूसरी ओर अतृप्ति है। जिस वाणिज्यमें एक वस्तुकी खरीद है, उतनो ही दूसरी वस्तुको बिकी है। प्रेममें पराधीनता, भोगमें वैराग्य, आशामें उद्वेग, प्रभुतामें विपद्, कीर्त्तिमें कलंक, वैभवमें लोगोंका विद्वेष और बुद्धिमें अकारण भय भरा हुआ है। हानि और लाभ, सञ्चय और अपचयका यह नियम अव्यर्थ और अनुल्लंघनीय है। संसारमें किसी स्थानपर इस नियममें उलट फेर नहीं दिखाई देता। सच पूछो तो मनुष्यका सामाजिक सुख और सामाजिक सम्पदा भी इस निष्ठुर नियमके अधीन है। दार्शनिकोंमें जो लोग समाज शक्तिके अन्धभक्त हैं, वे हालाहाली इस बातपर हामी भले ही न भरें, पर खूब गौर करके देखनेपर वे भी इसी नतीजेपर पहुंचेंगे। प्रत्यक्ष प्रमाणके साथ कोई कब तक झगड़ा कर सकता है!

समाजका गौरव निश्चय ही बहुत बढ़ा हुआ है। सरसरी तौरसे देखनेपर भी यही मालूम होता है, कि मानव ... आजकल चाहे जिस विषयमें उन्नति हुई हो, ... समाजका बन्धन ही है। मनुष्य

कितने प्रकारके हैं, एक बार उनकी भी आलोचना करनी चाहिये मनुष्य जाति सुपथमें ही इस असीम वैभवकी अधिस्वामिनी बन बैठी है, ऐसा भूल कर भी न सोचना।

'सामाजिक निग्रहके' कई अर्थ हो सकते हैं। राजा जो दण्ड देता है वह भी एक प्रकारका सामाजिक निग्रह है। क्योंकि समाज रक्षाके लिये यह जरूरी है, कि राजाके हाथमें समाजकी शक्ति दे दी जाय, जिससे वे सामाजिक अवस्थाका अव्यक्त शासन कर सकें। जिनकी हियेकी आंखें विद्याकी ज्योतिसे नहीं खुली हैं उन मूर्खोंका तो यही खयाल होगा, कि संसारमें जो लोग राजा कहे जाते हैं, राजसी ठाट बाटसे रहते और राज शक्तिके प्रचण्ड प्रतापसे प्रतापी हो रहे हैं, वे साधारण मनुष्य श्रेणीसे बाहरके कोई विचित्र जीव हैं वे जो चाहे कर सकते हैं, जिसका जैसा चाहें वैसा वारा न्यारा कर सकते हैं, परन्तु इस बीसवीं सदीके समाजविज्ञानने यह बात बुद्धि बलसे, वाक्य बलसे और विधाताके स्थापित किये हुए तथा क्रमसे विकास पानेवाले नीति तत्वके अकाट्ययुक्ति बलसे यह बात प्रमाणित कर दी है, कि जैसे सब आदमी समाजके आश्रित और समाजसे रक्षित हैं वैसा ही राजा लोग भी देखनेमें समाजके आश्रय और रक्षक होनेपर भी समाजके ही आश्रयमें रहते हैं और उसीसे रक्षा पाते हैं। राजाओंके सारे बल और वैभवका आदिबीज समाज ही तो है। इसलिये राजा या राजपुरुषों द्वारा किये हुए निग्रहको भी हम सामाजिक निग्रह ही समझते हैं। राजा

कितने प्रकारके हैं, एक वार उनकी भी आलोचना करनी चाहिये। मनुष्य जाति सुपतमें ही इस असीम वैभवकी अधिस्वामिनी बन बैठी है, ऐसा भूल कर भी न सोचना।

'सामाजिक निग्रहके' कई अर्थ हो सकते हैं। राजा जो दण्ड देता है वह भी एक प्रकारका सामाजिक निग्रह है। क्योंकि समाज रक्षाके लिये यह जरूरी है, कि राजाके हाथमें समाजकी शक्ति दे दी जाय, जिससे वे सामाजिक अवस्थाका अलग शासन कर सकें। जिनकी हियेकी आंखें विद्याकी ज्योतिसे नहीं खुली हैं उन मूर्खोंका तो यही ख़याल होगा, कि संसारमें जो लोग राजा कहे जाते हैं, राजसी ठाट वाटसे रहते और शक्तिके प्रचण्ड प्रतापसे प्रतापी हो रहे है, वे साधारण श्रेणीसे वाहरके कोई विचित्र जीव हैं वे जो चाहे कर जिसका जैसा चाहें वैसा वारा न्यारा कर सकते हैं, इस बीसवीं सदीके समाजविज्ञानने यह बात बुद्धि बलसे और विधाताके स्थापित किये हुए तथा क्रमसे पानेवाले नीति तत्वके अकाट्ययुक्ति बलसे यह कर दी है, कि जैसे सब आदमी समाजके रक्षित हैं वैसा ही राजा लोग भी देखनेमें रक्षक होनेपर भी समाजके ही आश्रयमें रक्षा पाते हैं। राजाओंके सारे बल और समाज ही तो है। इसलिये राजा पा... हुए निग्रहको भी हम

समाजमें मनुष्य कहलानेका सच्चा अधिकारी है। यही नहीं, वह देवता है। उसकी वासना और विवेक एकही रास्तेपर चलते हैं। उसकी आकांक्षा और आत्माकी उन्नति एक ही सूत्रमें गुँथी होती है। उसकी बुद्धि और हृदय, दोनों परस्परका विरोध छोड़कर एक दूसरेको कृतार्थ करते हैं। इसके विपरीत, जो बेलगाम स्वेच्छाचारिताके अधीन होकर जब जो झोंकमें आता है, वही करना चाहता है, वह प्रवृत्तिके भँवरजालमें पड़कर सदा पागल बना फिरता है और स्वाधीनताका स्वर्ग देखनेकी जगह अधीनताके गहरे कुएँमें जा गिरता है। इसलिये स्वेच्छाचारका त्याग और स्वाधीनताका नाश, दोनों एक ही पदार्थ नहीं हैं। परन्तु इस पार्थक्यको और स्वाधीनताके इस विशेष गौरवको ध्यानमें रखनेपर भी, बड़े दुःखके साथ यह बात स्वीकार करनी पड़ती है, कि जो सामाजिक हैं, वे ही पराधीन हैं और जो जहाँ तक इस सूक्ष्मसूत्रित समाजका सभ्य है, वह वहींतक मज़बूत ज़ंजीरमें जकड़ा हुआ है।* स्वाधीनताकी सब प्रकारसे रक्षा करनी हो, तो मनुष्यको कदापि इस आजकलकी सी अवस्था-वाले छिन्न सूत्र जड़ित विच्छिन्न समाजमें नहीं रहना चाहिये। मनुष्यकी आशा, आकांक्षा और मनोवृत्ति आसमानसे भी ऊँचे चढ़ना चाहती है, परन्तु समाज उसके पैरोंमें बेड़ी डाल उसे

---

* पाठक यदि इस बातको सम्पूर्ण रूपसे समझना चाहें, तो पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी द्वारा अनुवादित जान स्टुअर्ट मिलकी 'स्वाधीनता' (Liberty) नामक पुस्तक पढ़ लें।

समाजमें मनुष्य कहलानेका सच्चा अधिकारी है। यही नहीं, वह देखता है। उसकी वासना और विवेक एकही रास्तेपर चलते हैं। उसकी आकांक्षा और आत्माकी उन्नति एक ही सूत्रमें गुँथी होती है। उसकी बुद्धि और हृदय, दोनों परस्परका विरोध छोड़कर एक दूसरेको कृतार्थ करते हैं। इसके विपरीत, जो बेलगाम स्वेच्छाचारिताके अधीन होकर जब जो झोंकमें आता है, वही करना चाहता है, वह प्रवृत्तिके भँवरजालमें पड़कर सदा पागल बना फिरता है और स्वाधीनताका स्वर्ग देखनेकी जगह अधीनताके गहरे कुएँमें जा गिरता है। इसलिये स्वेच्छाचारका त्याग और स्वाधीनताका नाश, दोनों एक ही पदार्थ नहीं हैं। परन्तु इस पार्थक्यको और स्वाधीनताके इस विशेष गौरवको ध्यानमें रखनेपर भी, बड़े दुःखके साथ यह बात स्वीकार करनी पड़ती है, कि जो सामाजिक हैं, वे ही पराधीन हैं और जो जहाँ तक इस सूक्ष्मसूत्रित समाजका सभ्य है, वह वहाँतक मज़बूत ज़ंजीरमें जकड़ा हुआ है।* स्वाधीनताकी सब प्रकारसे रक्षा करनी हो, तो मनुष्यको कदापि इस आजकलकी सी अवस्था-वाले छिन्न सूत्र जड़ित विच्छिन्न समाजमें नहीं रहना चाहिये। मनुष्यकी आशा, आकांक्षा और मनोवृत्ति आसमानसे भी ऊँचे चढ़ना चाहती है, परन्तु समाज उसके पैरोंमें बेड़ी डाल उसे

---

* पाठक यदि इस बातको सम्पूर्ण रूपसे समझना चाहें, [illegible] प्रसादजी द्विवेदी द्वारा अनुवादित जान स्टुअर्ट मिलकी 'स्वाधीनता' नामक पुस्तक पढ़ लें।

यन्त्रोंकी तरह सिद्धोंके साथ खेलनेको ही लाचार करना चाहता है।

बहुतसे लोग पढ़ लिखकर अक्लपैग बन जाते और अपने-को स्वाधीन समझने लगते हैं, परन्तु इन दर्पके अभिमानियोंकी विडम्बनाका विचार करनेपर हँसी रोकनी मुश्किल हो जाती है। पर उनमें स्वाधीनता कहाँ है? किस युक्तिके बलपर उन्हें स्वाधीन कहा जा सकता है? जब हम देख रहे हैं, कि वे सब तरहसे दूसरोंके हाथके खिलौने बन रहे हैं, दूसरोंके ही इशारेपर नाच रहे हैं और पद पदपर पराधीन बने हुए हैं,—जब हम देख रहे हैं, कि उनके मनकी प्रत्येक चिन्ता, हृदयका प्रत्येक भाव और आशाकी प्रत्येक तरङ्ग, समाजके शासनसे, इसी एक रंगमें रंग गयी है और रूपान्तर धारणकर और भी एक दूसरी तरहका खेल खेल रही है, तब उन्हें स्वाधीन न कहकर, हमलोग भूत-शक्तिके खिलौनोंको ही क्यों न स्वाधीन कहें?

वह जो फूल पानीकी धारमें बहता हुआ नाचता नाचता चला आ रहा है, उसे भी क्या हम कभी स्वाधीन कह सकते हैं? यदि वह स्वाधीन नहीं है, तो सामाजिक मनुष्य भी कभी स्वाधीन नहीं हो सकता। उसे ज्वार ऊपर उठाता है, भाटा नीचे गिराता है और तरङ्गका हिलोरा कभी डुबोता और कभी ऊपर ले आता है। सामाजिक मनुष्य भी, अवस्थाके स्रोतमें बहते बहते आज साधुकी मूर्त्ति धारणकर प्रशंसा पाता है, तो कल बेईमान बनकर सबकी फटकार भी सहता है। यह दाता

हलाकर दुनियाके लोगोंसे धन्यवाद पाता है, तो वह कृपण और पराया धन हड़पनेवाला कहलाकर कलङ्कके चुल्लूभर पानीमें डूब रहा है वह क्या सोचता है, क्या करता है—यह उसकी समझमें नहीं आता। अबोध मनुष्य तारके इशारेपर नाचनेवाली कठपुतलियोंका तमाशा देख, बड़े खुश होते हैं, पर जिनके बुद्धि है, वे इस मनुष्यलीला रूपी कठपुतलियोंके नाचको देखकर चिन्तामें पड जाते हैं। यदि स्वाधीनताके साथ किसी भावका सबसे अधिक विरोध है, तो वह भाव यान्त्रिकता है। सामाजिक जीवनको यान्त्रिक जीवन कहना भी शायद बुरा न होगा। मनुष्यका हंसना रोना, हँसी खुशी, हर्ष विषाद और अनुराग विराग आदि अधिकांश भावोंमें ही यान्त्रिकता भरी हुई है। तुम्हारी इच्छा जिस समय हँसनेको हो रही है, उसी समय समाजका "अदब क़ायदा" तुम्हें रोनेको कहता है। इसी तरह जब तुम रोना चाहते हो, तब वही "अदब क़ायदा" तुम्हें खिल खोलकर हँसनेको लाचार करता है। इसीसे तुम आँसू भरी आँखोंसे हँसते और हँसी भरी आँखोंसे रोते हो—विरक्त हृदयसे प्रेमकर उसी शून्यगर्भ प्रेमसे सन्तुष्ट होते हो और अनुरक्त हृदयसे घृणाकर उसी शून्यगर्भ घृणामें पुरुषार्थकी महिमाकी छाया देखते हो। क्या इसीका नाम स्वाधीनता है?

धर्म स्वाधीनताका प्राण है। मनुष्यको सामाजिक जीवनकी दक्षिणामें यथार्थ धर्मकी ही भेंट चढ़ानी होती है। सच्चे धर्ममें परमुखापेक्षिताको कभी स्थान नहीं मिलता। यथार्थ धर्मका

बच्चोंकी तरह मिट्टीके साथ खेलनेको ही लाचार करना चाहता है।

बहुतसे लोग पढ़ लिखकर अकड़बेग बन जाते और अपने-को स्वाधीन समझने लगते हैं, परन्तु इन व्यर्थके अभिमानियोंकी विडम्बनाका विचार करनेपर हंसी रोकनी मुश्किल हो जाती है। पर उनमें स्वाधीनता कहाँ है? किस युक्तिके बलपर उन्हें स्वाधीन कहा जा सकता है? जब हम देख रहे हैं, कि वे सब तरहसे दूसरोंके हाथके खिलौने बन रहे हैं, दूसरोंके ही इशारेपर नाच रहे हैं और पद पदपर पराधीन बने हुए हैं,—जब हम देख रहे हैं, कि उनके मनकी प्रत्येक चिन्ता, हृदयका प्रत्येक भाव और आशाकी प्रत्येक तरङ्ग, समाजके शासनसे, इसी एक रंगमें रंग गयी है और रूपान्तर धारणकर और भी एक दूसरी तरहका खेल खेल रही है, तब उन्हें स्वाधीन न कहकर, हमलोग भूत-शक्तिके खिलौनोंको ही क्यों न स्वाधीन कहें?

वह जो फूल पानीकी धारमें बहता हुआ नाचता नाचता चला आ रहा है, उसे भी क्या हम कभी स्वाधीन कह सकते हैं? यदि वह स्वाधीन नहीं है, तो सामाजिक मनुष्य भी कभी स्वाधीन नहीं हो सकता। उसे ज्वार ऊपर उठाता है, भाटा नीचे गिराता है और तरङ्गका हिलोरा कभी डुबोता और कभी ऊपर ले आता है। सामाजिक मनुष्य भी, अवस्थाके स्रोतमें बहते बहते आज साधुकी मूर्त्ति धारणकर प्रशंसा पाता है, तो कल बेईमान बनकर सबकी फटकार भी सहता है। यह दाता

कहलाकर दुनियाके लोगोंसे धन्यवाद पाता है, तो वह कृपण और पराया धन हड़पनेवाला कहलाकर कलङ्कके चुल्लूभर पानीमें डूब रहा है यह क्या सोचता है, क्या करता है—यह उसकी समझमें नहीं आता। अबोध मनुष्य तारके इशारेपर नाचनेवाली कठपुतलियोंका तमाशा देख, बड़े खुश होते हैं, पर जिनके बुद्धि है, वे इस मनुष्यलीला रूपी कठपुतलियोंके नाचको देखकर चिन्तामें पड़ जाते हैं। यदि स्वाधीनताके साथ किसी भावका सबसे अधिक विरोध है, तो वह भाव यान्त्रिकता है। सामाजिक जीवनको यान्त्रिक जीवन कहना भी शायद पूरा न होगा। मनुष्यका हंसना रोना, हँसी खुशी, हर्ष विषाद और अनुराग विराग आदि अधिकांश भावोंमें ही यान्त्रिकता भरी हुई है। तुम्हारी इच्छा जिस समय हंसनेको हो रही है, उसी समय समाजका "अदब क़ायदा" तुम्हें रोनेको कहता है। इसी तरह जब तुम रोना चाहते हो, तब वही "अदब क़ायदा" तुम्हें दिल खोलकर हंसनेको लाचार करता है। इसीसे तुम आँसू भरी आँखोंसे हँसते और हँसी भरी आँखोंसे रोते हो—विरक्त हृदयसे प्रेमकर उसी शून्यगर्भ प्रेमसे सन्तुष्ट होते हो और अनुरक्त हृदयसे घृणाकर उसी शून्यगर्भ घृणामें पुरुषार्थकी महिमाकी छाया देखते हो। क्या इसीका नाम स्वाधीनता है?

धर्म स्वाधीनताका प्राण है। मनुष्यको सामाजिक जीवनकी दक्षिणामें यथार्थ धर्मकी ही भेंट चढ़ानी होती है।... परमुखापेक्षिताको कभी स्थान नहीं मिलता।

भाव न तो मधुर कण्ठसे स्तुति करनेपर खिलताही है, न निन्दाके विषैले डंकसे सूख जाता है, परन्तु मनुष्यका सामाजिक धर्म स्तुति और निन्दा रूपी दो सींगोंपर लटक रहा है। वर्त्तमान समयके लोग जिस भावके पक्षमें हैं, वही मनुष्यका धर्म है और जिसके विपक्षमें हैं, वही उसके लिये अधर्म है। समयके शासनसे ही वह कभी योगी, कभी भोगी, कभी वैदिक और कभी बौद्ध बन जाता है। एक समयमें वह जिसे धर्म मानता है, दूसरे समयमें उसे ही अधर्म मानने लगता है। और आजका अधर्म, कलका धर्म बन जा सकता है। आज ज़मानेका रुख देखकर वह जात पाँतके बन्धनमें जकड़ा हुआ है। तो कल ज़मानेका रंग बदला देख, जात पाँतके झंझटसे अलग हो जानेको तैयार होता है। आज समयके शासनसे भिक्षाकी झोली, बाघम्बर, त्रिपुण्ड्र और त्रिशूल उसके धर्मके साधन हो रहे हैं, तो कल समयके शासनसे फ़कीरका तसबीह और किश्ता अथवा मैङ्क और पादड़ियोंका क्रूस चिह्न ही उसके ध्यान, धारणा और स्वर्ग मोक्ष हो रहते हैं। यही क्या मनुष्यकी स्वाधीनताका लक्षण है? पाप पुण्य और सत्यासत्यकी परीक्षाके समय भी मनुष्य यही देखता रहता है, कि बहुमत किस ओर है। वह अपनेको उस गिनतीमें नहीं रखता, रखनेपर भी अपने हृदयके अन्तस्तलमें अपनेको कुछ चीज़ही नहीं समझता। वह बहुतसे लोगोंकी भीड़भाड़में बैठकर भजन करता है, दुनियाँको दिखाकर, ढोल दमामे बजाकर, दान और परोपकार आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान करता है और लोगोंके

चेहरेपर खुशी देखकर ही अपनी सारी साधना सिद्ध हुई समझता है—अपनेको कृतार्थ समझने लगता है।

एक बार फ़रांसीसियोंने सभाकर ईश्वरका निरूपण करना चाहा। सभाके अधिकांश सभासदोंकी राय हुई कि ईश्वर है ही नहीं, सभाकी व्यवस्था पुस्तकमें भी लिख दी गयी, कि ईश्वर नहीं है। इस घटनाका उल्लेखकर कुछ समयके बाद जो बड़े-बड़े पण्डित पैदा हुए, वे खूब हँसे और उन्होंने उनके इस मतकी बेतरह दिल्लगी उड़ायी। लेकिन संसारमें, सभ्य समाजमें प्रति दिन ऐसी कितनी ही घटनाएँ हो रही हैं और उनकी ओर कोई नज़र भी नहीं डालता। जो सब बातें समाजमें नीतिके सूत्र या धर्मकी मौलिक विधियाँ मानी जाती हैं, उनको यदि खूब ग़ौर करके देखा जाय, तो मालूम होगा, कि उनमेंसे अधिकांश बहुमतके द्वारा स्थापित हुई हैं—अनुष्ठान-कारियोंकी स्वाधीन चिन्ता और स्वाधीन प्रवृत्तिके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह ठीक है, कि कभी-कभी मानव-समाजमें ऐसे लोग भी पैदा हो जाते हैं, जो अपने पुरुषार्थपर निर्भरकर बहते हुए स्रोतके विरुद्ध उठ खड़े होते हैं और आत्माकी स्वाधीनता और धर्मके निर्मुक्त भावकी रक्षाके लिये सारे संसारके उपद्रव निडर होकर अपने सिरपर ले लेते हैं; परन्तु उनमेंसे अनेक एक आफ़तसे बचने जाकर दूसरीमें गिरफ्तार हो जाते हैं। वे लोग अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करने जाकर हज़ारों लोगोंकी स्वाधीनताको राहुकी तरह ग्रास कर लेते हैं तथा अपनेको निर्मुक्त करनेकी कोशिश

भाव न तो मधुर कण्ठसे स्तुति करनेपर खिलताही है, न निन्दाके विषैले डंकसे सूख जाता है, परन्तु मनुष्यका सामाजिक धर्म स्तुति और निन्दा रूपी दो सींगोंपर लटक रहा है। वर्त्तमान समयके लोग जिस भावके पक्षमें हैं, वही मनुष्यका धर्म है और जिसके विपक्षमें हैं, वही उसके लिये अधर्म है। समयके शासनसे ही वह कभी योगी, कभी भोगी, कभी वैदिक और कभी बौद्ध बन जाता है। एक समयमें वह जिसे धर्म मानता है, दूसरे समयमें उसे ही अधर्म मानने लगता है। और आजका अधर्म, कलका धर्म बन जा सकता है। आज ज़मानेका रुख देखकर वह जात पाँतके बन्धनमें जकड़ा हुआ है। तो कल ज़मानेका रंग बदला देख, जात पाँतके झंझटसे अलग हो जानेको तैयार होता है। आज समयके शासनसे भिक्षाकी झोली, बाघम्बर, त्रिपुण्ड्र और त्रिशूल उसके धर्मके साधन हो रहे हैं, तो कल समयके शासनसे फ़कीरका तसबीह और किश्ता अथवा मैड्ड और पादड़ियोंका क्रूस चिह्न ही उसके ध्यान, धारणा और स्वर्ग मोक्ष हो रहते हैं। यही क्या मनुष्यकी स्वाधीनताका लक्षण है? पाप पुण्य और सत्यासत्यकी परीक्षाके समय भी मनुष्य यही देखता रहता है, कि बहुमत किस ओर है। वह अपनेको उस गिनतीमें नहीं रखता, रखनेपर भी अपने हृदयके अन्तस्तलमें अपनेको कुछ चीज़ही नहीं समझता। वह बहुतसे लोगोंकी भीड़भाड़में बैठकर भजन करता है, दुनियाँको दिखाकर, ढोल दमामे बजाकर, दान और परोपकार आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान करता है और

सत्यका प्रच्छादन और असत्यका प्रदर्शन ही सभ्यता है। यही संसारकी नीति और सभ्य-समाजकी प्रचलित परिपाटी है। यदि तुम क्षणभरके लिये भी इस नीति या परिपाटीको छोड़कर दिलका परदा हटा दोगे और अपने हृदयकी सच्ची बातें-अपनी भक्ति या द्वेष, प्रीति या घृणाकी बातें-मनुष्य-जातिको कमसे कम एक बार भी जान लेनेका मौक़ा दोगे, अर्थात् जिस बातको तुमने दिलमें छिपा रखा है, उसे सबसे कहते फिरोगे, तो शायद तुम्हें सरकार क़ैद कर लेगी या समाजके लोग तुम्हें अपनी जमातसे ख़ारिज कर देंगे। अपने आदमी भी उस हालतमें पराये बन जायँगे और सम्भव है, कि जिसे या जिन लोगोंको तुम दिलसे चाहते हो वह या वे लोग भी तुम्हारे ख़िलाफ़ हो जायं। पर तुम भला ऐसा क्यों करने लगे? तुम्हें तो समाजने हर काममें धोखाधड़ीसे काम लेनेको सिखा दिया है अथवा ऐसा करनेको लाचार कर रखा है। फिर तुम समाजको क्यों न धोखा दोगे? कपटी गुरुका चेला भी तो कपटी ही होता है! यद्यपि इस तरहके जीवनमें तुम्हें अपने सुखकी राहमें कोई काँटा नहीं नज़र आता, तथापि इसे सच जानना, कि जोंक जिस तरह चुपचाप लहू पिया करती है, जीवनकी यह कपटता भी उसी तरह चुपचाप तुम्हारे प्राकृत पुरुषार्थको सोख लेती है और तुम जैसे होते, वैसे न हो कर एक नये ही साँचेमें ढल जाते हो। यदि एक बार झूठ बोलनेसे भी पाप लगता है और उस पापसे साहस, शौर्य आदि आध्यात्मिक सम्पदाओंको हानि पहुं-

करते-करते असंख्य मनुष्योंको दासत्वकी कठिन श्रृंखलामें बांध देते हैं। यदि भेंड़-बकरा कहलाना बुरा लगता है, तो क्या बाघ-भालू कहलाना अच्छा लगेगा? यथार्थमें स्वाधीनचेता मनुष्य अपनी स्वाधीनताका जैसा सम्मान करते हैं, वैसा ही दूसरेकी भी स्वाधीनताकी रक्षा करनेका यत्न करते हैं। अगर इसमें किसी तरहकी विपरीतता हो, तो समझना चाहिये, कि वह मनुष्य समाजका दास हैं। कपटताकी शिक्षा देना सामाजिक जीवनका और भी एक बड़ा भारी निग्रह है। अबोध बालक जब जिसे जो चाहे कह दें; पर यदि तुम बुद्धिमान हो, तो तुम कभी किसी सामाजिक मनुष्यको कपटी नहीं कह सकते, कपटता मनुष्य-समाजका वह पाप है, जिसे वह छोड़ना नहीं चाहता अथवा छोड़ नहीं सकता। जो इस समाजमें आया, वही कपटी हुआ। यदि वह कपटी न हो, तो समाजमें क्षणभर भी टिकने न पाये तुम जिससे जीसे जले-भुने बैठे हो और जिसके पास फटकना भी नहीं चाहते, बल्कि जिससे हज़ारों हाथ दूर ही रहना चाहते हो, समाजके शासनके प्रभावसे तुम बहुत बार उसकी भी दिल खोलकर तारीफ़ करनी पड़ती है। साथही तुम जिसे जीसे प्यार करते हो और कलेजेके अन्दर रखते हो, कभी-कभी उसके प्रति उपेक्षा दिखलाये बिना भी तुम नहीं रह सकते; क्योंकि ऐसा न करोगे, तो बहुत सम्भव है, कि लोग मारे निन्दाके म्हारा नाकमें दम कर दें। लोग जिसे सभ्यता कहते हैं। सका एक अर्थ प्रदर्शन और दूसरा अर्थ प्रच्छादन है। अर्थात्

सत्यका प्रच्छादन और असत्यका प्रदर्शन ही सभ्यता है। यही संसारकी नीति और सभ्य-समाजकी प्रचलित परिपाटी है। यदि तुम क्षण-भरके लिये भी इस नीति या परिपाटीको छोड़कर दिलका पर्दा हटा दोगे और अपने हृदयकी सभी बातें-अपनी भक्ति या द्वेष, प्रीति या घृणाकी बातें-मनुष्य-जातिको कमसे कम एक बार भी जान लेनेका मौक़ा दोगे, अर्थात् जिस बातको तुमने दिलमें छिपा रखा है, उसे सबसे कहते फिरोगे, तो शायद तुम्हें सरकार क़ैद कर लेगी या समाजके लोग तुम्हें अपनी जमातसे ख़ारिज कर देंगे। अपने आदमी भी उस हालतमें पराये बन जायँगे और सम्भव है, कि जिसे या जिन लोगोंको तुम दिलसे चाहते हो वह या वे लोग भी तुम्हारे ख़िलाफ़ हो जायं। पर तुम भला ऐसा क्यों करने लगे? तुम्हें तो समाजने हर काममें धोखाधड़ीसे काम लेनेकी सिक्षा दिया है अथवा ऐसा करनेको लाचार कर रखा है। फिर तुम समाजको क्यों न धोखा दोगे? कपटी गुरुका चेला भी तो कपटी ही होता है! यद्यपि इस तरहके जीवनमें तुम्हें अपने सुखकी राहमें कोई काँटा नहीं नज़र आता, तथापि इसे सच जानना, कि जोंक जिस तरह चुपचाप लहू पिया करती है, जीवनकी यह कपटता भी उसी तरह चुपचाप तुम्हारे प्राकृत पुरुषार्थको सोख लेती है और तुम जैसे होते, वैसे न हो कर एक नये ही साँचेमें ढल जाते हो। यदि एक बार झूट बोलनेसे भी पाप लगता है और उस पापसे साहस, शौर्य आदि आध्यात्मिक सम्पदाओंको हानि पहुं-

चती है, तो इसमें कोई सन्देह नहीं, कि शुरूसे लेकर अखीरतक दग़ाफ़रेब और छल-कपटसे भरा हुआ जीवन बितानेके कारण सामाजिक मनुष्योंकी बहुत बड़ी हानि हो रही है।

सामाजिक जीवनका और एक निग्रह नीचसेवा है। नीच-वृत्ति अवलम्बनकर नीचोंकी सेवा किये बिना मनुष्य-समाजके सब मनुष्योंको, सब समय, भर पेट अन्न नहीं मिलता। मनुष्य-समाजमें स्थान पाना भी सबके लिये सम्भव नहीं होता। शास्त्रमें लिखा है, कि—

"हीनसेवा न कर्त्तव्य कर्त्तव्य महदाश्रयः।" अर्थात् बड़ोंका पल्ला पकड़े, नीचोंकी कभी सेवा न करे।

नीतिकारोंने नीतिके भिन्न-भिन्न वाक्योंमें इसी उपदेशको झलकाया है और कवियोंने भी * तरह-तरहसे इस बातकी ओर लोगोंका ध्यान खींचा है। परन्तु मनुष्य-समाजमें जो लोग धन-मानमें बड़े हैं, जो सबको पीछे ठेलकर अगुआ बन बैठे हैं, जिनकी मर्कट- मूर्त्तिमें सम्पत्तिने माधुरी भर दी है, और जो उस सम्पत्तिके सुधास्वादसे मत्त होकर मनुष्य मात्रको ही अवज्ञाकी आँखोंसे देखते हैं, वे क्या साधारणतः महत्त्वके उपासक होते हैं? उनकी जो कुछ वृद्धि-समृद्धि हुई है, वह क्या महत्त्वकी ही उपासनाका फल है? यदि ऐसे मनुष्योंको ही हमलोग महत्त्वका उपासक मानने लगेंगे, तो फिर बेचारे स्यार-कुत्तोंने

* याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।

—मेघदूत।

कौनसा अपराध किया है, कि हम उन्हें इस आदरसे वञ्चित रखते हैं ? जिस महत्त्वकी चिन्ता ही करनेसे हृदय आनन्दसे अधीर हो जाता है, चित्त-वृत्ति पुलकित और चञ्चल हो उठती है, वह महत्त्व मानव-समाजमें कहाँ जाकर छिप गया है, यह कोई बतला सकता है ? समाज जिनको सेवा करने योग्य समझता है; लोग जिन्हें लोकपाल, और दिक्पाल और धर्मावतार कहकर रिझाया करते हैं; कविता जिन लोगोंकी कुलटाकी भांति प्रशंसा करती है; जिनके डरसे या लिहाज़से इतिहास दिनको रात या रातको दिन कहनेके लिये तैयार हो जाता है, क्या वे ही लोग महत्त्वके ख़ज़ाने हैं ? जिन्हें लोग नीरो, कैलिगुलो, कैथेराइन, जोन या जेम्स कहते हैं, क्या वे ही लोग सेवनीय महत्त्वके आश्रय-स्थल हैं ? नहीं। समाजके तो जैसे सेव्य होते हैं, वैसे ही सेवक। दोनों एकसे पदार्थ हैं। जैसे दाता, वैसे पात्र। जैसे देवता, वैसे ही पुजारी और वैसे ही धूप-दीप-नैवेद्य एवं पूजाकी पद्धति ! तो भी इसी महत्त्वकी उपासनामें सामाजिक जीवनका आधेसे अधिक अंश बीतता है। बड़े अफ़सोसकी बात है !

किसीने असंख्य मनुष्योंके कलेजेके खूनमें नहाकर अपने पाप धोये हैं, अतएव उनकी पूजा करो। किसीने भाई-बन्धुओं और असंख्य सुहृद्-स्वजनोंको धोखा दे अथवा बहुतसे लोगोंके दोनों लोक बिगाड़कर उनकी सारी आशा और सब धर्म-कर्मको धूलमें मिला दिया है और इस प्रकार आप धर्मावतार बन बैठे

चती है, तो इसमें कोई सन्देह नहीं, कि शुरूसे लेकर अख़ीरतक दग़ाफ़रेब और छल-कपटसे भरा हुआ जीवन बितानेके कारण सामाजिक मनुष्योंकी बहुत बड़ी हानि हो रही है।

सामाजिक जीवनका और एक निग्रह नीचसेवा है। नीच-वृत्ति अवलम्बनकर नीचोंकी सेवा किये बिना मनुष्य-समाजके सब मनुष्योंको, सब समय, भर पेट अन्न नहीं मिलता। मनुष्य-समाजमें स्थान पाना भी सबके लिये सम्भव नहीं होता। शास्त्रमें लिखा है, कि—

"हीनसेवा न कर्त्तव्य कर्त्तव्य महदाश्रयः।" अर्थात् बड़ोंका पल्ला पकड़े, नीचोंकी कभी सेवा न करे।

नीतिकारोंने नीतिके भिन्न-भिन्न वाक्योंमें इसी उपदेशको झलकाया है और कवियोंने भी * तरह-तरहसे इस बातकी ओर लोगोंका ध्यान खींचा है। परन्तु मनुष्य-समाजमें जो लोग धन-मानमें बड़े हैं, जो सबको पीछे ठेलकर अगुआ बन बैठे हैं, जिनकी मर्कट-मूर्त्तिमें सम्पत्तिने माधुरी भर दी है, और जो उस सम्पत्तिके सुधास्वादसे मत्त होकर मनुष्य मात्रको ही अवज्ञाकी आँखोंसे देखते हैं, वे क्या साधारणतः महत्त्वके उपासक होते हैं! उनकी जो कुछ वृद्धि-समृद्धि हुई है, वह क्या महत्त्वकी ही उपासनाका फल है? यदि ऐसे मनुष्योंको ही हमलोग महत्त्वका उपासक मानने लगेंगे, तो फिर बेचारे स्यार-कुत्तोंने

* याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।

—मेघदूत।

कौनसा अपराध किया है, कि हम उन्हें इस आदरसे वञ्चित रखते हैं? जिस महत्त्वकी चिन्ता ही करनेसे हृदय आनन्दसे अधीर हो जाता है, चित्त-वृत्ति पुलकित और चञ्चल हो उठती है, वह महत्त्व मानव-समाजमें कहाँ जाकर छिप गया है, यह कोई बतला सकता है? समाज जिनको सेवा करने योग्य समझता है; लोग जिन्हें लोकपाल, और दिक्पाल और धर्मावतार कहकर रिझाया करते हैं; कविता जिन लोगोंकी कुलटाकी भांति प्रशंसा करती है; जिनके डरसे या लिहाज़से इतिहास दिनको रात या रातको दिन कहनेके लिये तैयार हो जाता है, क्या वे ही लोग महत्त्वके ख़ज़ाने हैं? जिन्हें लोग नीरो, कैलिगुलो, कैथेराइन, जोन या जेम्स कहते हैं, क्या वे ही लोग सेवनीय महत्त्वके आश्रय-स्थल हैं? नहीं। समाजके तो जैसे सेव्य होते हैं, वैसे ही सेवक। दोनों एकसे पदार्थ हैं। जैसे दाता, वैसे पात्र। जैसे देवता, वैसे ही पुजारी और वैसे ही धूप-दीप-नैवेद्य एवं पूजाकी पद्धति! तो भी इसी महत्त्वकी उपासनामें सामाजिक जीवनका आधेसे अधिक अंश बीतता है। बड़े अफ़सोसकी बात है!

किसीने असंख्य मनुष्योंके कलेजेके ख़ूनमें नहाकर अपने पाप धोये हैं, अतएव उनकी पूजा करो। किसीने भाई-बन्धुओं और असंख्य सुहृद्-स्वजनोंको धोखा दे अथवा बहुतसे लोगोंके दोनों लोक बिगाड़कर उनकी सारी आशा और सब धर्म-कर्मको धूलमें मिला दिया है और इस प्रकार आप धर्मावतार बन बैठे

हैं। अतएव उनके पैरोंपर लोटो। तो क्या ऐसे असुरों, राक्षसों, पिशाचों और दैत्य-दानवोंके चरण चूमना ही सामाजिक उन्नतिकी सीढ़ी है? संसारमें कितने आदमी ऐसे हैं, जो इसका प्रतिरोध करनेको तैयार होते हैं और करनेपर भी कितने अपने सिर धड़पर क़ायम रख सके हैं? पेरिसका भूतपूर्व 'वेस्ट आइल' और रूसका 'साइवेरिया' क्या महत्त्वका परिचय देता था? डायोजिनिसने सिकन्दर शाहको अपनी नज़रोंके सामनेसे परे हट जानेको कहा था; पर यदि वे सामाजिक मनुष्य होते और उन्होंने समाजकी शिक्षा मानकर चलना सीखा होता, तो शायद ही वे ऐसा पौरुष-प्रताप दिखला सकते। उनको कभी हिम्मत ही नहीं पड़ती, कि वे उस जगद्विजयी वीरकी ओर आँख उठाकर भी देखते। जो लोग डायोजिनिसकी धातुके बने होते हैं, वे समाजमें आनेपर उसकी चक्कीमें पिस जाते हैं और अन्तमें ब्रेकन या वकिङ्घमकी तरह स्वर्गकी यात्रा करते हैं।

हमने तो यहां महज़ नमूने दिखाये हैं, लेकिन बुद्धिमान पाठक गण ज़रा ग़ौर करके देखेंगे, तो उन्हें ऐसे ऐसे सैकड़ों दृष्टान्त मिलेंगे। क्योंकि देशाचार, शिष्टाचार, लोकाचार और कुलाचारके नामसे जो अनेक आचार व्यवहार समाजमें चल पड़े हैं; उनमेंसे अधिकांश किसी न किसी अंशमें मनुष्यके लिये निग्रह स्वरूप हैं। कोई देशाचारकी मारसे मरा जाता और पापके दल दलमें फँसा जाता है, तो कोई कुलाचारके आगे स्नेह ममता और मनुष्यत्वका खून कर रहा है। कोई भलामानस

बननेके लिए कमीनेपनकी हद तक पहुँचा जाता है, तो कोई बुद्धि और हृदय आदि ईश्वरके दिये हुए दानोंको समाजके चरणों पर चढ़ाकर एक अन्धेके पीछे चलनेवाले दूसरे अन्धेकी तरह अंधेरेमें टटोल रहा है।

अब सवाल पैदा होता है, कि जब समाज सचमुच मनुष्यकी स्वाधीनताके मार्गका विषम प्रतिबन्धक है और धोखाधड़ी, छल कपट और नीच सेवा आदि तरह तरहकी नीच वृत्तियोंका शिक्षक है, तब क्या उसे छोड़ ही देना चाहिये ? पुराने समयके ऋषि—तपस्वी लोग जिस भावसे और जैसा हृदय लेकर दुनिया छोड़ जंगलोंमें रहा करते थे, क्या हम लोग भी वैसा ही भाव और वैसा ही हृदय हुए बिना केवल अकड़में आकर, उन्होंके रास्तेपर चलें ? जो लोग समाज विज्ञानको ही सर्वस्व-ज्ञान समझते और मानते हैं, वे लोग तो एक नहीं, हज़ार बार कहेंगे, कि नहीं। जो लड़कपनसे ही समाजकी गोदमें पलकर बड़ा हुआ है और समाजकी हज़ार ठोकरें खाकर भी उसने जिस समाजकी बदौलत फ़ायदे उठाये हैं, उसे तो समाज छोड़नेका कोई अधिकार ही नहीं है। समाज अच्छा हो या बुरा—मीठा हो या कड़वा,—सामाजिक मनुष्यको तो अवश्य ही उसकी रक्षा करनी होगी। समाज विज्ञानके उपासक लोग अपनी समाज प्रीतिकी इस प्रकार श्रुतिमधुर कण्ठसे व्याख्या करते हैं, कि—"इसीका नाम है कृतज्ञता-धर्म और कठोर कर्त्तव्य व्रत। कर्त्तव्यके रास्तेमें फूल नहीं बिछे होते। अपनी इच्छा नहीं पूरी होती, इस

हैं। अतएव उनके पैरोंपर लोटो। तो क्या ऐसे असुरों, राक्षसों, पिशाचों और दैत्य-दानवोंके चरण चूमना ही सामाजिक उन्नतिकी सीढ़ी है? संसारमें कितने आदमी ऐसे हैं, जो इसका प्रतिरोध करनेको तैयार होते हैं और करनेपर भी कितने अपने सिर धड़पर क़ायम रख सके हैं? पेरिसका भूतपूर्व 'वेस्ट आइल' और रूसका 'साइबेरिया' क्या महत्त्वका परिचय देता था! डायोजिनिसने सिकन्दर शाहको अपनी नज़रोंके सामनेसे परे हट जानेको कहा था; पर यदि वे सामाजिक मनुष्य होते और उन्होंने समाजकी शिक्षा मानकर चलना सीखा होता, तो शायद ही वे ऐसा पौरुष-प्रताप दिखला सकते। उनकी कभी हिम्मत ही नहीं पड़ती, कि वे उस जगद्विजयी वीरकी ओर आँख उठाकर भी देखते। जो लोग डायोजिनिसकी धातुके बने होते हैं, वे समाजमें आनेपर उसकी चक्कीमें पिस जाते हैं और अन्तमें बेकन या बकिङ्घमकी तरह स्वर्गकी यात्रा करते हैं।

हमने तो यहां महज़ नमूने दिखाये हैं, लेकिन बुद्धिमान पाठक गण ज़रा ग़ौर करके देखेंगे, तो उन्हें ऐसे ऐसे सैकड़ों दृष्टान्त मिलेंगे। क्योंकि देशाचार, शिष्टाचार, लोकाचार और कुलाचारके नामसे जो अनेक आचार व्यवहार समाजमें चल पड़े हैं; उनमेंसे अधिकांश किसी न किसी अंशमें मनुष्यके लिये निग्रह स्वरूप हैं। कोई देशाचारकी मारसे मरा जाता और पापके दल दलमें फँसा जाता है, तो कोई कुलाचारके आगे स्नेह ममता और मनुष्यत्वका ख़ून कर रहा है। कोई भलामानस

बननेके लिए कमीनेपनकी हद तक पहुँचा जाता है, तो कोई बुद्धि और हृदय आदि ईश्वरके दिये हुए दानोंको समाजके चरणों पर चढ़ाकर एक अन्धेके पीछे चलनेवाले दूसरे अन्धेकी तरह अंधेरेमें टटोल रहा है।

अब सवाल पैदा होता है, कि जब समाज सचमुच मनुष्यकी स्वाधीनताके मार्गका विषम प्रतिबन्धक है और धोखाधड़ी, छल कपट और नीच सेवा आदि तरह तरहकी नीच वृत्तियोंका शिक्षक है, तब क्या उसे छोड़ ही देना चाहिये? पुराने समयके ऋषि—तपस्वी लोग जिस भावसे और जैसा हृदय लेकर दुनिया छोड़ जंगलोंमें रहा करते थे, क्या हम लोग भी वैसा ही भाव और वैसा ही हृदय हुए बिना केवल अकड़में आकर, उन्हींके रास्तेपर चलें? जो लोग समाज विज्ञानको ही सर्वस्व ज्ञान समझते और मानते हैं, वे लोग तो एक नहीं, हज़ार बार कहेंगे, कि नहीं। जो लड़कपनसे ही समाजकी गोदमें पलकर बड़ा हुआ है और समाजकी हज़ार ठोकरें खाकर भी उसने जिस समाजकी बदौलत फ़ायदे उठाये हैं, उसे तो समाज छोड़नेका कोई अधिकार ही नहीं है। समाज अच्छा हो या बुरा—मीठा हो या कड़वा,—सामाजिक मनुष्यको तो अवश्य ही उसकी रक्षा करनी होगी। समाज विज्ञानके उपासक लोग अपनी समाज प्रीतिकी इस प्रकार श्रुतिमधुर कण्ठसे व्याख्या करते हैं, कि—

"इसीका नाम है कृतज्ञता-धर्म और कठोर कर्त्तव्य व्रत। रास्तेमें फूल नहीं बिछे होते। अपनी इच्छा

चोर-चरित्र

[चोर और डाकूमें क्या फ़र्क़ है ?]

'क्यों रे धनुआ ! तूने चोरी की है ?'—ऐसा सवाल सुनते ही बेचारा सीधा सादा और ईमानदार धन्नू चोट खाये हुए शेरकी तरह गरज उठता है और हार्दिक विरक्ति तथा अवज्ञा दिखलाने लगता है और जो सचमुच चोर है, वह भी शर्मसे सिकुड़ कर पाँने दो फ़ुटका हो जाता है और सिर झुका लेता है। लेकिन डाकू लोग अपनी डकैतीकी बात क़ुबूल करते हुए कभी ऐसी गहरी शर्मिन्दगीमें नहीं पड़ते। जब उनकी आँखें खुल जाती हैं, तब वे दुःखी होते हैं और कभी कभी घोर पश्चात्तापकी अग्निमें जलने लगते हैं। उस समय उनकी मर्म-वेदना उन्हें किसी काम लायक़ नहीं रहने देती। हाँ, वह जो लज्जा मिली हुई हृदय-ज्वाला होती है, उस अकथनीय क्लेशका उन्हें अनुभव नहीं होता।

स्पेन, इटली और कार्सिका आदि देशोंमें लोग डाकूका पेशा अख़्तियार करते हुए तनिक भी नहीं शर्माते। यदि किसीकी किसीसे खटक गयी हो, तो क़ानूनकी आँखोंमें मुट्ठीभर धूल झोंककर वे एक दूसरेका ख़ून कर डालते या सर्वस्व लूट लेते हैं और इसे बड़े भारी पुरुषार्थकी बात समझते हैं। पर जो इस
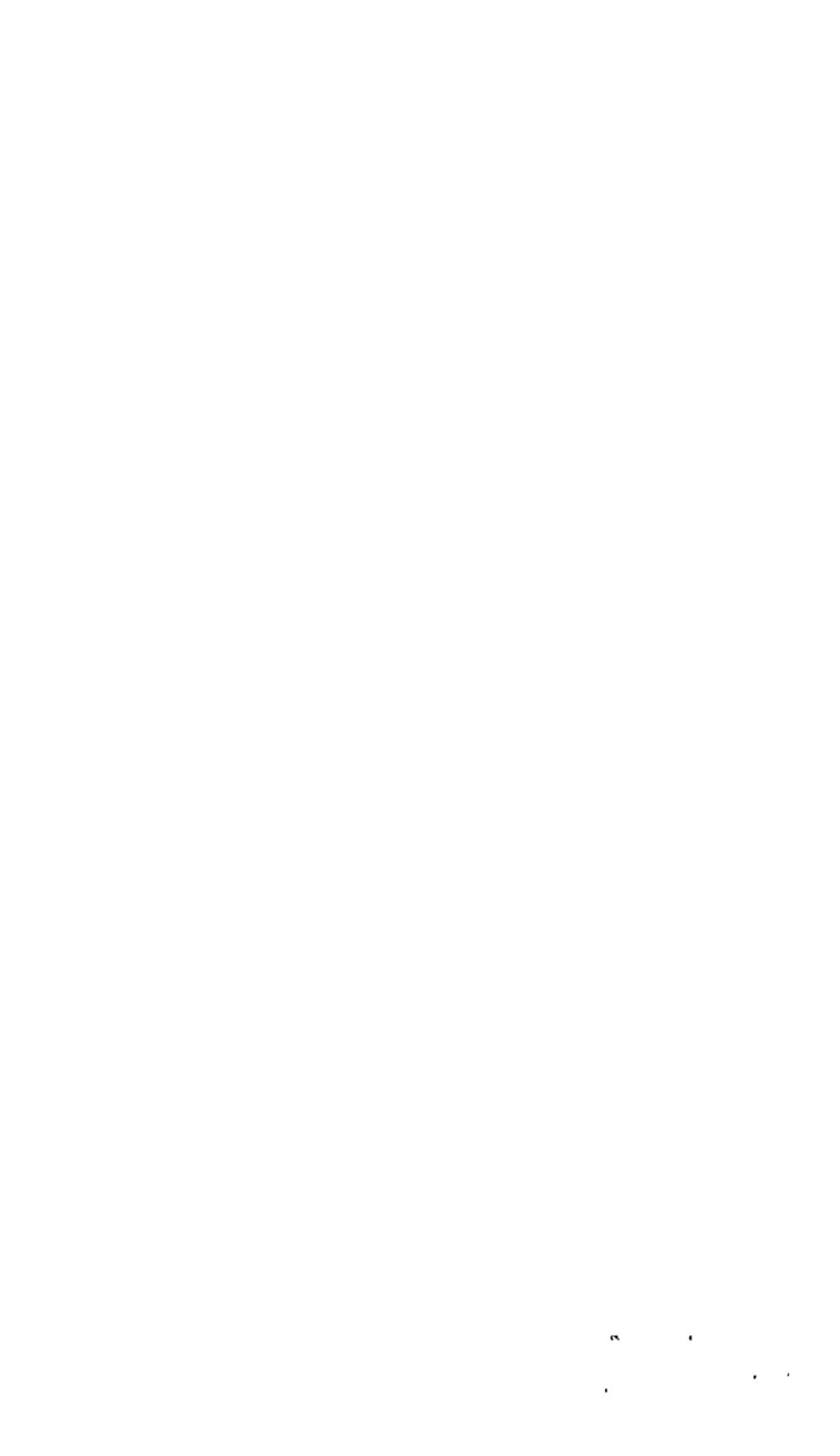
चाप छिपे चोरी डाका डालना उनके स्वभावके विरुद्ध है। चोरोंकी चाल इससे ठीक उलटी होती है। यह चुपचाप दबे पांवों घरमें घुसकर माल मता चुराते हैं और रोशनीसे डर मालूम होनेके कारण उसे बुझा देते हैं। एक ओर ऐसी निर्भीकता और दूसरी ओर ऐसी भय-विह्वलता ही इन दोनोंके प्रकृतिगत पार्थक्यका प्रधान लक्षण है और यह कोई मामूली बात नहीं है। जो भय मनुष्यको पापसे दूर भगाता है, सत्कार्यमें मतिको प्रवृत्त करता है, अथवा सामाजिक सुखके लिये आवश्यक सत्-शासनमें मनुष्यको ले आता है, उस भयकी हम प्रशंसा करते हैं। जो भय मनुष्यको वर्त्तमान मुहूर्त्तसे दृष्टि हटा कर भविष्यत्की ओर देखनेके लिये लाचार करता है, जो इस क्षणकी इच्छा और आकांक्षाको दबा कर परिणामकी चिन्तामें नियुक्त करता है, उस भयको हम भक्ति या विवेकसे नीचे दर्जेकी मनोवृत्ति नहीं मानते और उसकी व्याख्या सद्वृत्ति कह कर ही करते हैं। पर जो भय यह सब तो नहीं करता, उलटे छल कपट और धोखा धड़ी सिखलाता है, जो दुर्नीतिके पङ्किलहृदमें गहरासा गढ़ा खोदकर उसीके भीतर मनुष्यको छिपा देता है, अथवा जो स्वयं एकही साथ दुर्नीतिका आवरण और अन्यतम साधन बन जाता है, वह भय नितान्त-जघन्य वस्तु—घृणाकी सामग्री—है, इसमें कोई सन्देह नहीं। चोरके हृदयमें यही भय भरा रहता है यही क्यों? उसका तो हृदय भी इसीका बना हुआ होता है और डाकू, अत्यन्त पापी होनेपर भी इस तरहकी संड़ी बदबू वाले भयसे

विलकुल परे होता है। डाकूको हम सिंह नहीं कह सकते; क्योंकि उसमें इतनी वड़ी उच्चाशयता नहीं होती। पर हाँ, उसे हम वाघ या भेड़िया निस्सन्देह कह सकते हैं। चोरकी वात याद आते ही धूर्त्त, वञ्चक और छली स्यार याद आ जाते हैं। अभी दिखाई दिया, अभी छिप गया, अभी किसीकी जमा मारी और अभी नज़रोंसे ग़ायव हो गया! उसकी कोई वात ठीक समझमें नहीं आती। डाकू दुरात्मा है सही, पर चोर तो विलकुल पिशाच है। डाकूका थोड़े ही परिश्रमसे सुधार हो सकता है, क्योंकि उसकी प्रकृतिमें जो तेजस्विता है, उसे वुरी राहसे खींचकर अच्छी राहमें ले आनेसे ही वह पुराने डाकूसे तेजस्वी महापु-रुषके रूपमें वदल सकता है। लेकिन चोरकी आदत कभी नहीं छूटती। उसे लाख अच्छे अच्छे गहने कपड़े पहनाओ, उसके सिरपर भले ही मुकुट रख दो, अथवा जैसा कुछ शृङ्गार करना चाहो, कर डालो, परन्तु वह चोरका चोर ही वना रहेगा। उसकी आँखोंकी चितवनसे लेकर पैरोंकी चाल तकमें वही चोरों-कीसी प्रकृति मौजूद रहेगी। कोयला भी आगके स्पर्शसे कुछ देरके लिये लाल हो जाता है, पर फिर कोयलेका कोयला ही र जाता है। नीचता ऐसी चीज़ है, कि उसे लाख शक्ति ल कर ऊपर उठाना चाहो, पर वह नीचे ही आ गिरती है

"कल वल जल ऊँचो चढ़ै; अन्त नीचको नीच।"

कवियोंने भी चोरोंकी अपेक्षा डाकुओंका अधिक सम किया है। विलायतमें राविन हुड और भूमध्य सागरमें वि

नेवाले डाकू सरदारोंके बारेमें बड़े सुन्दर सुन्दर काव्य लिखे गये हैं और भाजतक लोग उन्हें बड़े चावसे पढ़ते हैं। विलायतके सर्वप्रधान उपन्यास लेखक और सुकवि सर वाल्टर स्काट अपने 'आइवेन हो' नामक उपन्यासमें वीर राजा रिचर्ड और पुरुषश्रेष्ठ आइवेन होके चरित्र अङ्कित कर जितने सुखी हुए होंगे, शायद उतने ही सुखी वे डाकू सरदार राबिन हुडका चरित्र चित्रण करनेमें भी हुए होंगे कुछ अधिक ही हुए हों, तो आश्चर्य नहीं। उनका राबिन हुड सुन्दर और विशालकाय पुरुष है। वह मनुष्यसे नहीं डरता। वाय गिलवर्ट और फ्राएट डि वियफ़ आदि दुनियांको दहलानेवाले योद्धा उसके शत्रु हैं, पर राबिन हुड उस ओर ध्यान भी नहीं देता। राजा जान, बहुतसे सैन्य सामन्तोंको लेकर सिंहासनपर बैठे हुए, उसकी ओर क्रोधभरी आंखोंसे देखते हैं, पर वह उनकी ओर आंख उठा कर भी नहीं देखता। इधर आइवेन होके असहाय नौकरने रातको राबिन हुडके हाथमें पड़नेपर उसके सिरपर तानकर लाठी मारी, परन्तु उसे असहाय देख, राबिन उसकी इस हरकतपर नाराज न हुआ, बल्कि उसने उसे उसी समय क्षमा कर दी। राबिन हुड बलके घमण्डमें चूर पापियोंको सदा लूटता खसोटता था, किन्तु लूटके मालके बंटवारेके समय वह धर्मध्यक्षसे भी बढ़कर न्याय दिखलाता था। वह धनुर्विद्यामें अपनेको सारे वृटिश द्वीपमें अद्वितीय समझता था, पर वह भूलसे भी कभी किसी कमजोर आदमीपर तीर न छोड़ता था और दूसरोंको

यश या प्रतिष्ठा पाते देख, जलता भी न था। यदि वह एक घर लूटता; तो दस घर गरीव दुखियोंको बांट देता था। अगर एकको बुराई करता, तो हजारोंकी भलाई कर अपने चित्तको सुखी करता था। सच पूछो, तो 'आइवेन हो' नामक उपन्यासका नायक यथार्थमें कौन है, यह निश्चय करना कठिन हो जाता है। रिचर्ड राजाओंके राजा थे, तो आइवेन हो भी पुरुषोंमें श्रेष्ठ था, परन्तु राविन हुड डाकू कहलाकर वदनाम होने पर भी इन दोनोंके वीचमें यशस्वी पुरुषकी तरह सिर ऊंचा करके खड़ा होने योग्य है। राविन हुडने रिचर्डको प्रणयका उपहार दिया है, आइवेनहोको नीतिका पथ दिखलाया है और इन दोनों ही कार्यों द्वारा उसने अपने पौरुष और अभिमानका अपूर्व सौन्दर्य दिखला दिया है। एक डाकू सरदारके लिये इससे बढ़कर गौरवकी वात और क्या होती?

नये उपन्यास लेखकोंमें प्रधान वुलवर लिटनने भी पाल क्लिफ़र्डकी कहानी लिखकर बहुतोंका मनोरञ्जन किया है। पाल डाकुओंका सरदार था, समाज और सामाजिक नियमोंका कट्टर विरोधी था और पैसेवालोंका जानी दुश्मन था। तो भी उसके साहस, शौर्य, दुर्वलोंपर दया, प्रवलोंपर पराक्रम आदि मर्दानगीके कामोंको देखकर कौन आनन्दसे खिल नहीं उठता? राविन हुडकी कहानीमें प्रेमकी छुआछूत तक नहीं है, परन्तु पाल प्रणय कुसुमसे भी परिशोभित था। डाकू सरदारके रूपमें ल वड़ा विक्रमशाली और अजेय मालूम पड़ता है, पर प्रेमी

पाल तो एकदम ही पवित्र और कुसुमके समान कोमल दिखलाई देता है। लेकिन पालके साथियोंमें जो लोग एक ओर तो साधु सज्जनोंकी तरह शास्त्रकी सूक्ष्म बातें कहा करते थे और मौका पाते ही चुपचाप चोरी या ठगी करनेके लिये हाथ बढ़ाते थे, उनकी बातें याद आते ही मन घृणाके साथ उनकी तरफसे फिर जाता है।

बुलवरके 'रियेण्टसि' नामक ऐतिहासिक उपन्यासमें तो इससे भी बढ़िया एक चरित्र-चित्र है। रियेण्टसि उस काव्यका नायक और वाल्टर डिमाण्टरियल प्रतिनायक है। रियेण्टसिका बल है,—*विद्या, बुद्धि, वाग्मिता, चतुरता और लोकानुराग।* वाल्टर डिमाण्टरियलका बल है—बलवान् भुजाएं, चौड़ी छाती और अजेय साहस। एक तो राजाके बलसे अपनेको बली समझता है और दूसरा अपने बलसे बली बना हुआ है। एक डाकुओंका उपद्रव दूर करनेवाला राज-कर्मचारी है और दूसरा संसारद्रोही डाकू सरदार है। यह अन्तिम व्यक्ति लोकपीड़क और निन्द-नीय था, इस बातको कौन अस्वीकार कर सकता है? तो भी मन महत्वसे मोहित होकर काव्यके किसी किसी स्थानमें रियेण्टसिकी अपेक्षा इसीपर अधिक अनुरक्त हो रहता है। रियेण्टसि *नीतिके अनुरोधसे कभी कभी नीच गतिका भी अवलम्बन करता* था और वह धोखा देना भी भली भांति जानता था; किन्तु वाल्टर डि माण्टरियल अपने आपको इतना बड़ा समझता था, कि कभी भूल कर भी वह नीचता और वञ्चकताकी बुद्धि मनमें उत्पन्न नहीं होने देता था, जहां रियेण्टसिने वाल्टरको हाथमें

आया जानकर अपमानित किया और उसकी एक प्रकारसे गुप्त रूपसे हत्या की है, वहाँ वाल्टरने उसे अपने क़ब्ज़ेमें पाकर भी वीरताके अभिमानमें आकर उसे छोड़ दिया है। वाल्टर और रियेण्टसि दोनोंही विश्वासघातकोंके हाथों मारे गये थे; पर मरते दम भी वाल्टरने अपना वह पौरुष और महिमा दिखला दी, जिसे रियेण्टसि जीवन भरमें कभी नहीं दिखला सका।

फ़रांसीसी कवि डूमाकी कल्पनासे निकली हुई लूगी वाम्पाकी कहानी भी इसीलिये मनोहारिणी है। सब कहते थे, कि वाम्पा बड़ा ही पाजी और संसारको सतानेवाला है। परन्तु उसकी प्रकृतिमें जो महत्वके लक्षण भरे थे उनका सब लोग आदर भी करते थे। वाम्पाकी कोर्त्ति दो बातोंसे ही थी—पहली, आश्रितोंका पालन और दूसरी, उपकारी व्यक्तियोंके उपकारका बदला देनेके लिये प्राणोंतककी बाज़ी लगा देना। वाम्पा अपने आश्रितोंको विपत्तिसे बचानेके लिये आसमानके चाँद तारे भी उतार लानेकी चेष्टा करता था और जो कोई उसका उपकार करता था, उसे अपने स्नेह-ऋणसे ऋणी बना लेता था, उसके लिये वह मान, प्राण और सर्वस्वतक न्यौछावर कर देना ही मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य समझता था। कविने वाम्पाको सिकन्दर शाह और क़ैसरके जीवन चरित पढ़नेमें लगा हुआ और उनपर अनुरक्त होता हुआ दिखलाकर मानव प्रकृतिकी सहानुभूतिके विषयमें उसको अधिक ज्ञानवान्, गम्भीर और सूक्ष्मदृष्टि भी दिखलाया है।

और भी बहुतसे ठाकुरों और डाकू सरदारोंका हाल अनेक ऐतिहासिक उपाख्यानोंमें लिखा गया है। हमारे घरोंमें भी स्त्रियाँ ऐसी बहुतसी कहानियाँ अपने लड़कों और पड़ोसियोंको सुनाया करती हैं, जिनमें डाकुओंकी बहादुरी और बड़प्पन दिखलाया गया है। परन्तु किसी देशके किसी कविने चोर चरित्रका चित्र उतारनेमें सौन्दर्यकी सृष्टि नहीं की। शायद काव्य कुञ्ज विनोदिनी स्वयं सरस्वती भी यदि लिखना चाहें, तो उस विषयमें कृतकार्य न हो सकेंगी। नीचता स्वर्गमें पहुँचकर भी नीचता ही बनी रहती है और महत्ता नरकमें भी अपनी महत्ता ही दिखलाती है। मनुष्य गोबरके ढेरमेंसे भी मणि निकाल लेता है और बड़े चावसे उसे धो माँजकर सिरपर चढ़ाता है; पर रत्न जड़े सिंहासनपर भी रखी हुई किसी अस्पृश्य वस्तुको हाथ लगाना नहीं चाहता।

नीतिके मामलेमें राजपुरुषोंकी भी दो श्रेणियाँ हैं। एक डाकू और दूसरी चोर। डाकुओंकी नीतिका नाम दस्यु नीति है ये लोग चीलकी तरह झपटा मारते हैं। और जो लोग चोर श्रेणीके हैं, उनकी राजनीतिका नाम चौर-नीति है। ये लोग बगुले या बिल्लीकी तरह आँखें मूँदे, ध्यान लगाये, मौक़ेकी ताकमें बैठे रहते हैं। सीज़र, तैमूर, रिशेलू और आटिला आदि बलवान् वीर डाकू थे और टाइबिरियस तथा मेज़ेरिन वग़ैरह मीठी बोली बोलनेवाले चोर थे। जिन लोगोंने दस्यु नीतिका अवलम्बन किया, वे दुनियाको तबाह करके भी नामी गरामी गिने गये और संसारमें

उनकी जय मनायी गयी ; पर जो सदा सभी कामोंमें चोरोंकी चाल चलते रहे, उनमें चाहे लाख गुण भरे रहे हों ; पर आजतक दुनिया उनके नामपर गालियाँ ही देती है।

चोर चरितका कीर्त्तन करते हुए हमने चोर और डाकूके स्वभावोंमें भेद दिखला दिया है ; किन्तु आशा है कि, इससे हमारा अभीष्ट बहुत ही अच्छी तरहसे सिद्ध हुआ होगा। क्योंकि तुलना द्वारा जो बात आसानीसे समझायी जा सकती है, वह संज्ञा द्वारा समझानी कठिन है। इस तुलनासे यह बात स्पष्ट है, कि पराये माल उड़ानेवालोंमें चोरका दर्जा बड़ा ही नीचा है और वह क्षुद्र तथा अधम गिना जाता है ; परन्तु डाकू सौ सौ अपराध करके भी निडर बना रहता है, वह पापी होनेपर भी महत्वशाली और पतित होनेपर भी पुनः ऊपर उठनेमें समर्थ होता है। पर क्या गड़बड़ानन्द सरस्वतीकी इसी व्यवस्थाको पाकर लोग चोरी करना छोड़कर डकैती करने लग जायँगे ? कवियोंका बड़ा प्यारा कमल, कीचड़में रहता है और वहीं अपनी सुन्दरतासे देखनेवालोंको प्रसन्न करता है। तब क्या इसी लिये लोग शौक़से कीचड़में लोटा करें ? मिल्टनका शैतान महत्व और तेजस्वितामें देवताओंको भी मात कर देता है। इसका यह अर्थ नहीं है, कि लोग आजहीसे शैतान होने लगें। इसका असल मतलब यह है, कि महत्व और तेजस्विता, यदि अधर्मोके संसर्गमें पड़कर या राक्षसोंके आकर्षणमें आकर, नीचे गिर जाय, तोभी वह इसलिये मनुष्यकी दृष्टि आकर्षण कर

लेता है, चूँकि उसमें फिर उठ खड़े होनेकी आकांक्षा मौजूद रहती है। मनुष्य प्रकृतिके जो सब गुण मणि मुक्ताओंसे भी मनोहर हैं, वे निकृष्ट स्थान और अत्यन्त शोचनीय अवस्थामें पड़े होनेपर भी, लोगोंकी निगाहमें पड़ ही जाते हैं और लोग उनकी पूजा भी किया ही करते हैं।

शास्त्र यही कहता है, समाजकी सर्ववादि सम्मत व्यवस्था भी ऐसी ही है और इसी व्यवस्थाके ऊपर वाणिज्य, व्यवसाय, भोग, विनियोग, आश्वास, विश्वास, दौत्य, दण्डविचार और एक मनुष्यके साथ दूसरे मनुष्यके अनेक प्रकारके कार्य-सम्बन्ध और सामाजिक यन्त्रकी सारी क्रियाएं निर्भर हैं, पर लोकचरित्र भी कैसा विचित्र है! झूठकी इतनी बुराई और झूठे आदमियोंकी ऐसी बेक़द्री होते हुए भी, कितनी ही झूठी बातें आजकल समाजमें बड़ी इज़्ज़तकी निगाहसे देखी जाती हैं और सभ्यता तथा शिष्टव्यवहार सर्वत्र ही नाना प्रकारसे उन सबका अनुमोदन करता है। यदि कोई एक नाम रख देना जरूरी हो, तो इस श्रेणीकी झूठी बातोंको प्रचलित झूठी बातें और जो शिष्टाचार-विरुद्ध तथा लोक गर्हित हों, उन्हें 'अप्रचलित झूठी बातें' कह सकते हैं। इससे कोई गड़बड़ नहीं होगी। यहांपर हम सबसे पहले प्रचलित अर्थात् सभ्य लोगों द्वारा अनुमोदित झूठी बातोंके ही कुछ उदाहरण देते हैं।

(१) "बड़े मज़ेसे हूं।"—मेरे जीवनकी अवस्था चाहे जैसी क्यों न हो, पर मैं "बड़े मज़ेसे हूं।" सूर्योदयसे लेकर अगले सूर्योदयतक मेरी हज़ारों आदमियोंसे देखादेखी होती है, सभी पूछते हैं,—"क्यों अच्छे हो न?" मैं भी हँसकर झट जवाब दे देता हूं, कि बड़े मज़ेसे हूं। शरीर सौ-सौ रोगोंका शिकार होकर गला जाता है, हृदय अनन्त यन्त्रणासे फटा जाता है—चाहे यह लोगोंको दिखाई देता हो या नहीं—मनुष्योंकी बस्ती

गंभीर अन्धकारमें तरङ्गें उछालते हुए समुद्रकी मूर्त्ति धारण कर रही है; तो भी मैं "बड़े मज़ेसे हूं ।" मैंने जिसे हाथ पकड़ कर ऊपर उठाया है, वही खड़ा होनेपर मेरे सिरपर लात मारता है, जिसे चन्दन-तरु समझकर स्नेहसे छातीसे लगाये रखता था, वही आज विषवृक्षकी तरह जला रहा है, जिस संसारकी हरी भरी शोभा देखकर मैं प्रीतिकी धारामें तैर रहा था, वही आज मेरे लिये तपती हुई मरुभूमि हो गया है, जिन्हें मैं आंखों प्यार करता था, जिन्हें कलेजेमें छिपाकर रखे हुए था; वे ही आज मेरे प्राण चूसनेके लिये सांपकी तरह जीभ निकाल रहे हैं; तो भी मैं 'बड़े मज़ेसे हूं ।' यदि मुंह खोलकर दिलकी सब बातें कह डालूं तो शिष्टाचारका उल्लङ्घन हो जाय; अतएव मैं "बड़े मज़ेसे हूं ।" सामाजिकताके लिहाज़से हमें सब समय, सब जगह और सभी अवस्थाओंमें अच्छा बना रहना पड़ेगा और भीतरकी आगको दोहरे पर्देसे ढक, तनिक गर्दन हिला और धीरेसे मुस्कराकर सब किसीसे यही कहना पड़ेगा, कि मैं "बड़े मज़ेसे हूं ।" नहीं तो मुझसा असभ्य कोई न माना जायगा।

(२) "कुछ भी नहीं ।"—गुप्त बातोंको छिपानेके लिये अब [illegible] तक जितनी तरहके वाक्योंकी कल्पना हुई है, उनमें "कुछ भी नहीं" बड़ा प्यारा है। युवक और युवती अकेलेमें [illegible] हुए धीमे-धीमे ढंगसे प्रेमकी बातें कर रहे हैं। इतनेमें बूढ़ा [illegible] आकर पूछा—"तुम दोनों यहां क्या बातें कर रहे हो?" [illegible] मिला,—"कुछ भी नहीं।" कुछ बूढ़े और बुद्धिमान [illegible]

या सम्मानके लिये किसी बातपर ऐसे लड़ पड़े हैं, कि एक दूसरेका कलेजा काढ़नेको तैयार हैं। किसीने पूछा,—"आप लोग यह क्या करते हैं?" उत्तर मिला,—"कुछ भी नहीं।" जिनके हृदय सबकी तरफ़से सदा मैले रहते हैं अथवा जो लोग अपनेसे अधिक प्रतिष्ठित और माननीय पुरुषोंके सम्बन्धमें अपने हृदयको विषका घड़ा बनाये रखनेमें ही अपने जीवनको धन्य मानते हैं, वे अपने बराबरवालोंके हृदयोंमें भी डर या डाह पैदा करनेके लिये अपने हृदयका विष उसके कानोंमें धीरे-धीरे डाल रहे हैं, उनसे भी यदि कोई पूछे, कि तुम उसे फुस-फुस करके क्या कह रहे हो? तो वे झट उत्तर दे देंगे, कि कुछ भी नहीं। एक बार गम्भीर होकर "कुछ भी नहीं" यह वाक्य कह देनेसे ही पूछनेवालेके मुँहपर ताला जड़ जायगा। यदि तुम "कुछ नहीं" को "कुछ" समझो, तो यह तुम्हारी बेवक़ूफ़ी है।

यह "कुछ भी नहीं" यूरोपकी पुर-सुन्दरियोंकी बड़ी प्यारी चीज़ें हैं। उनका जो कुछ "कुछ भी" है, वह "कुछ भी नहीं" है। यह बात कहने-सुननेमें तो बड़ी मीठी है, चाहे इसका अदृष्ट या दृष्टफल जैसा हो।

(२) "घरपर नहीं हैं।"—"Not at home यह बात विलायती सभ्यताका अवश्यम्भावी फल है। आजकल इस देशके लोग भी इस रसीले फलका मज़ा चखानेके लिये व्याकुल दिखाई पड़ते हैं। घरके मालिक, यदि घरपर रहते हुए भी किसी काममें लगे हुए हों, तो समझना होगा, कि वे "घरपर नहीं हैं।"

गंभीर अन्धकारमें तरङ्गें उछालते हुए समुद्रकी मूर्त्ति धारण कर रही है; तो भी मैं "बड़े मज़ेसे हूं।" मैंने जिसे हाथ पकड़कर ऊपर उठाया है, वही खड़ा होनेपर मेरे सिरपर लात मारता है, जिसे चन्दन-तरु समझकर स्नेहसे छातीसे लगाये रहता था, वही आज विषवृक्षकी तरह जला रहा है, जिस संसारकी हरी भरी शोभा देखकर मैं प्रीतिकी धारामें तैर रहा था, वही आज मेरे लिये तपती हुई मरुभूमि हो गया है, जिन्हें मैं जीसे प्यार करता था, जिन्हें कलेजेमें छिपाकर रखे हुए था; वेही आज मेरे प्राण चूसनेके लिये सांपकी तरह जीभ निकाल रहे हैं; तो भी मैं 'बड़े मज़ेसे हूं।' यदि मुंह खोलकर दिलकी सब बातें कह डालूँ तो शिष्टाचारका उल्लङ्घन हो जाय; अतएव मैं "बड़े मज़ेसे हूं।" सामाजिकताके लिहाज़से हमें सब समय, सब जगह और सभी अवस्थाओंमें अच्छा बना रहना पड़ेगा और भीतरकी आगको दोहरे पर्देसे ढक, तनिक गर्दन हिला और धीरेसे मुस्कराकर सब किसीसे यही कहना पड़ेगा, कि मैं "बड़े मज़ेसे हूं।" नहीं तो मुझसा असभ्य कोई न माना जायगा।

(२) "कुछ भी नहीं।"—गुप्त बातोंको छिपानेके लिये आजतक जितनी तरहके वाक्योंकी कल्पना हुई है, उन सबमें यह "कुछ भी नहीं" बड़ा प्यारा है। युवक और युवती अकेलेमें बैठे हुए सौ-सौ ढँगसे प्रेमकी बातें कर रहे हैं। इतनेमें बूढ़ी दादीने आकर पूछा—"तुम दोनों यहां क्या बातें कर रहे हो?" उत्तर मिला,—"कुछ भी नहीं।" कुछ बूढ़े और बुद्धिमान् व्यक्ति स्वार्थ

युवा भ्रमवश अनुचित स्थानमें भी अनेक समय प्रेमकी बात मुंहपर ले आते हैं। इससे उन्हें लज्जित होना पड़ता है। कृतज्ञता दिखलानेके लिये परेशान रहनेवाले नवीन सभ्योंको भी एक दिन उसी तरह भ्रमवश परम शत्रुको भी धन्यवाद देनेके लिये लज्जित होना पड़ेगा।

(५) चिट्ठीका मजमून—जिसके पास चिट्ठी लिखनी होती है। उसको अवश्य ही कुछ न कुछ कहकर सम्बोधन करना पड़ता है और अपनेको उसका कोई न कोई बनाना ही पड़ता है। झूठी बातोंके लिये यह भी एक खासा मैदान है। इसकी आड़में सैकड़ों हजारों झूठी बातें लिख डालो, कोई तुम्हारी निन्दा न करेगा। इङ्गलैण्डमें विवाहार्थी प्रेमीगण पहले एक दूसरेको आंखोंका तारा, हृदयका रत्नहार, प्राणोंका प्राण, आत्माकी अन्तरात्मा, अङ्गका आभरण, मस्तककी मणि, स्वर्गके देवता, देवलोकका आलोक इत्यादि असंख्य मीठे और प्रिय सम्बोधनोंसे सम्बोधित करते हैं। अन्तमें, यदि कोई स्वार्थ अटक जानेसे उनका विवाह नहीं होता, तो वे हर्जानेके लिये धर्माधिकारीके पास नालिश कर, *इन्हीं प्रिय सम्बोधनोंको लेकर दिल्लगी* करते हैं। सब देशोंके राजपुरुषोंमें, यह चाल है, कि उनमेंसे अधिकांश लोग औरोंकी इज़्ज़त और हकोंको पैरोंतले कुचल डालते हैं, मनुष्यको चूहे बिल्लीसे भी अधम बनाये रखनेकी चेष्टा करते हैं ; परन्तु उन्हें जब कभी किसीके पास पत्र लिखना होता है, तब वह चाहे अदनेसे भी अदना आदमी

जिनके साथ वे मिलना नहीं चाहें, उनके लिये तो वे कभी घर-पर नहीं" रहते। यदि वे घरमें बैठे हुए इस पापमें डूबे हुए संसारमें सत्यधर्मका प्रचार करनेके लिये कोई सत्य-मय सद्ग्रन्थ लिख रहे हों, तो भी वे कहला सकते हैं, कि "घरपर नहीं हैं।" जैसे ही दरबान कहेगा, कि मालिक "घरपर नहीं हैं," वैसे ही तुम्हें लौट आना पड़ेगा। अगर तुम सन्देह करके उससे फिर कुछ पूछोगे, तो तुम्हीं बेवक़ूफ़ और बदतमीज़ कहलाओगे।

(४) "धन्यवाद।"—Thank you Sir—जो उपकार करता है, वह बड़ा आदमी है; किन्तु जो दूसरेके उपकारको सच्चे दिलसे मानता हुआ, उसकी कृतज्ञता स्वीकार करता है, वह और भी बड़ा आदमी है। कारण, उपकारके मामलेमें दान करना जितना कष्टकर है, उससे कहीं अधिक कष्टकर ग्रहण करना है। आजकल तो यह कृतज्ञता, यह धन्यवाद-प्रदान "नलिनीदलगतजलमिव तरलं" हो गया है। लोग सोते-जागते, उठते बैठते हज़ारों बार लोगोंको धन्यवाद दिया करते हैं। मानों सारा संसार ही धन्य हो गया है। लोग बात-बातमें धन्यवाद की ध्वनि सुनते हैं और मन ही मन अपनेको धन्य मानते हैं। जैसा हाल बेहाल नज़र आ रहा है, उससे तो मालूम पड़ता है, कि कुछ दिनोंमें लोग जूते खाकर भी जूते मारनेवालेको धन्यवाद देने लगेंगे! जिसका हम मन ही मन सत्यानाश किया चाहते हैं, शिष्टाचारकी रक्षाके लिये जब समय पाकर अभ्यासवशतः हम ऐसा भी भ्रम कर बैठें, तो क्या ताज्जुब है! अनेक प्रेमविह्वल

युवा भ्रमवश अनुचित स्थानमें भी अनेक समय प्रेमकी बात मुंहपर ले आते हैं। इससे उन्हें लज्जित होना पड़ता है। कृतज्ञता दिखलानेके लिये परेशान रहनेवाले नवीन सभ्योंको भी एक दिन उसी तरह भ्रमवश परम शत्रुको भी धन्यवाद देनेके लिये लज्जित होना पड़ेगा।

(५) चिट्ठीका मजमून—जिसके पास चिट्ठी लिखनी होती है। उसको अवश्य ही कुछ न कुछ कहकर सम्बोधन करना पड़ता है और अपनेको उसका कोई न कोई बनाना ही पड़ता है। झूठी बातोंके लिये यह भी एक खासा मैदान है। इसकी आड़में सैकड़ों हजारों झूठी बातें लिख डालो, कोई तुम्हारी निन्दा न करेगा। इङ्गलैण्डमें विवाहार्थी प्रेमीगण पहले एक दूसरेको आंखोंका तारा, हृदयका रत्नहार, प्राणोंका प्राण, आत्माकी अन्तरात्मा, अङ्गका आभरण, मस्तककी मणि, स्वर्गके देवता, देवलोकका आलोक इत्यादि असंख्य मीठे और प्रिय सम्बोधनोंसे सम्बोधित करते हैं। अन्तमें, यदि कोई स्वार्थ अटक जानेसे उनका विवाह नहीं होता, तो वे हर्जानेके लिये धर्माधिकारीके पास नालिश कर, इन्हीं प्रिय सम्बोधनोंको लेकर दिल्लगी करते हैं। सब देशोंके राजपुरुषोंमें, यह चाल है, कि उनमेंसे अधिकांश लोग औरोंकी इज्जत और हकोंको पैरोंतले कुचल डालते हैं, मनुष्यको चूहे बिल्लीसे भी अधम बनाये रखनेकी चेष्टा करते हैं; परन्तु उन्हें जब कभी किसीके पास पत्र लिखना होता है, तब वह चाहे अदनेसे भी अदना आदमी

जिनके साथ वे मिलना नहीं चाहें, उनके लिये तो वे "कभी घर पर नहीं" रहते। यदि वे घरमें बैठे हुए इस पापमें डूबे हुए संसारमें सत्यधर्मका प्रचार करनेके लिये कोई सत्य-मय पुस्तक लिख रहे हों, तो भी वे कहला सकते हैं, कि "घरपर नहीं हैं।" जैसे ही दरवान कहेगा, कि मालिक "घरपर नहीं हैं," वैसे ही तुम्हें लौट आना पड़ेगा। अगर तुम सन्देह करके उससे कि कुछ पूछोगे, तो तुम्हीं बेवक़ूफ़ और बदतमीज़ कहलाओगे।

(४) "धन्यवाद!"—Thank you Sir—जो [illegible] करता है, वह बड़ा आदमी है; किन्तु जो दूसरेके उपकार सच्चे दिलसे मानता हुआ, उसकी कृतज्ञता स्वीकार करता वह और भी बड़ा आदमी है। कारण, उपकारके मामलेमें [illegible] करना जितना कष्टकर है, उससे कहीं अधिक कष्टकर [illegible] करना है। आजकल तो यह कृतज्ञता, यह धन्यवाद [illegible] "नलिनीदलगतजलमिव तरलं" हो गया है। लोग दिन-रात उठते बैठते हज़ारों बार लोगोंको धन्यवाद दिया करते हैं। [illegible] सारा संसार ही धन्य हो गया है। लोग बात-बातमें धन्य[illegible] की ध्वनि सुनते हैं और मन ही मन अपनेको धन्य मानते हैं। ऐसा हाल बेहाल नज़र आ रहा है, उससे तो मालूम पड़ता है कि कुछ दिनोंमें लोग जूते खाकर भी जूते मारनेवालेको धन्यवाद देने लगेंगे! [illegible] मन ही मन [illegible] किया करते [illegible] विश्वासकी [illegible] लिये [illegible] समय पाकर [illegible] देखा जो हम कर बैठें, तो क्या ताज्जुब है! [illegible]

युवा भ्रमवश अनुचित स्थानमें भी अनेक समय प्रेमकी बात मुंहपर ले आते हैं। इससे उन्हें लज्जित होना पड़ता है। कृतज्ञता दिखलानेके लिये परेशान रहनेवाले नवीन सभ्योंको भी एक दिन उसी तरह भ्रमवश परम शत्रुको भी धन्यवाद देनेके लिये लज्जित होना पड़ेगा।

(५) चिट्ठीका मज़मून—जिसके पास चिट्ठी लिखनी होती है। उसको अवश्य ही कुछ न कुछ कहकर सम्बोधन करना पड़ता है और अपनेको उसका कोई न कोई बनाना ही पड़ता है। झूठी बातोंके लिये यह भी एक खासा मैदान है। इसकी आड़में सैकड़ों हजारों झूठी बातें लिख डालो, कोई तुम्हारी निन्दा न करेगा। इङ्गलैण्डमें विवाहार्थी प्रेमीगण पहले एक दूसरेको आंखोंका तारा, हृदयका रत्नहार, प्राणोंका प्राण, आत्माकी न्तरात्मा, अङ्गका आभरण, मस्तककी मणि, स्वर्गके देवता, वलोकका आलोक इत्यादि असंख्य मीठे और प्रिय सम्बोधनोंसे म्बोधित करते हैं। अन्तमें, यदि कोई स्वार्थ अटक जानेसे नका विवाह नहीं होता, तो वे हर्जानेके लिये धर्माधिकारीके ास नालिश कर, इन्हीं प्रिय सम्बोधनोंको लेकर दिल्लगी रते हैं। सब देशोंके राजपुरुषोंमें, यह चाल है, कि उनमेंसे धिकांश लोग औरोंकी इज़्ज़त और हकोंको पैरोंतले कुचल डालते हैं, मनुष्यको चूहे बिल्लीसे भी अधम बनाये रखनेकी ेष्टा करते हैं; परन्तु उन्हें जब कभी किसीके पास पत्र लिखना होता है, तब वह चाहे

हो, पर अपनेको उसका 'बड़ाही आज्ञाकारी दास' लिखेंगे। खानेको* भरपेट अन्न या पहननेको अच्छासा कपड़ा भलेही नसीब न हो, द्वार द्वार घूमने और पराये मुंह जोहनेसे ही पेट भरनेकी नौबत आती हो, पर बापदादोंमेंसे यदि कोई कुलीन रहा हो, तो बाबू साहबके नामके साथ "श्री १०८" लिखा जाना ज़रूरी है। अथवा कोई महात्मा भूलकर भी झूठ छोड़कर सच नहीं बोलते, जिसके साथ मित्रता हो उसीकी बुराई करते हैं, ताम्रपत्रपर लिखी हुई प्रतिज्ञाको भी क्षणभरमें उलट देते हैं, विपदमें पड़कर जिसके तलवे चूमते हैं सम्पदाके दिनोंमें उसीका कलेजा काढ़नेको तैयार हो जाते हैं, ज़बरदस्तकी लाठी सिरपर ले लेते और जिससे कुछ डर नहीं रहता, उसको सतानेमें मान, अपमान, यश और अपयश आदि सब कुछ पुराणप्रसिद्ध जह्नुमुनिकी तरह चुल्लूमें उठाकर पी जाते हैं; पर भगवान्‌की दया या विधाताकी विडम्बनासे वे ऊंची

* हमारे यहांके एक ज़मीन्दारके पास किसी बड़े साहबने ऐसी ही एक चिट्ठी लिखी थी। उसे पाकर वे फूले न समाये, मारे अभिमानके पौने आठ फीटके हो गये और नाच, रङ्ग तथा देवताकी पूजामें दस हजार रुपये खर्च कर डाले। क्योंकि उसमें साहबने अपने दस्तख़तके साथ साथ लिखा था "I have the honour to be, Sir, your most obedient Servant." गांवके मास्टर साहबने इसका यों तर्जुमा करके उन्हें बताया था "मुझे प्राप्त है मान, महाशय! आपका आज्ञाकारी दास होनेका।" ऐसे ही ऐसे मास्टर तो गांववाले जमीन्दारोंके गुरु-पीरकी तरह पूज्य हुआ करते हैं।

कुरसीपर बैठते हैं, इसीलिये 'प्रचण्ड प्रतापान्वित, दोर्दण्ड मण्डित, महामहिम, धर्मावतार' कहे जाते हैं! सारे दिनमें एक बार या सपनेमें भी जिसका नाम हमें नहीं याद आता और जिसका दुःख छुड़ानेके लिये हम शरीरके रक्तका एक बूंद या खज़ानेका एक घिसा हुआ पैसा भी खर्च करना नहीं चाहते, उसे ही हम चिट्ठियोंमें प्राणाधिकतक कह डालते हैं और जिसे धूर्त समझ कर जीसे घृणा करते हैं। विश्वासघातक समझ कर अवज्ञाकी दृष्टिसे देखते हैं और जिसकी छायाका स्पर्श होते ही सारी देहमें आगसी लग जाती है, उसे ही श्रद्धास्पद कहते भी नहीं सकुचाते।*

६—'माननीय बन्धु' अथवा "Honourable friend" जिस प्रकार समुद्र मथकर नीलकण्ठके कण्ठका भूषण कालकूट विष निकला था, उसी प्रकार झूठी बातों अथवा मोहमदिरामयी मिथ्या सभ्यताके महासमुद्रको मथकर 'माननीय बन्धु' ये दो विचित्र शब्द निकाले गये हैं। इनकी बराबरीका शायद ही कोई शब्द हो। ये दोनों आधुनिक सभ्यताके अर्थ कौशलमय नये शब्दसागरके दो अमूल्य रत्न हैं। जो सभ्यतामें चढ़े बढ़े हैं, उन्हें इन दोनों शब्दोंकी सच्ची महिमा मालूम है और इसी महिमाके आश्रयमें ये लोग महिमामय बनकर मानव जगत्‌में

* दयामय, शरणागत वत्सल, परम गुणवान्, सुप्रतिष्ठित, परमाराध्य आदि पत्रोपयोगी सम्बोधन भी इसी श्रेणीके समझने चाहिये।

धन्य धन्य कहला रहे हैं। 'माननीय वन्धुकी' बात कहनेके पहले हम 'वन्धुके' ही सम्बन्धमें कुछ कहना चाहते हैं। क्योंकि स्त्री, पुत्र कन्या और अन्यान्य परिजनोंसे भी वन्धु कहीं अधिक प्राणप्रिय होता है। स्त्री पुत्र भी वन्धु हो सकते हैं, पर इस स्वार्थ कलङ्कित जगत्‌में न तो सभी स्त्रियां ही स्वामीके वन्धुका काम कर सकती हैं, न सभी पुत्र ही अपने पिताके यथार्थ होनेके योग्य हैं। 'वन्धु' शब्दके अर्थ क्या हैं? मेरा हृदय जिसके हृदयके साथ ओत प्रोत भावसे जुड़ा हुआ है, वही मेरा वन्धु कहला सकता है। मैंने जिसे हृदयके पतले तारोंसे सौ सौ वन्धनों द्वारा वांध रखा है, जिसे हृदयके हृदयमें छिपा रखा है, वही मेरा वन्धु है। जिसे देखते ही मेरी आंखें खुशीसे खिल जाती हैं, नजरोंके सामने चांदनीसी छिटक जाती है, जिसकी सच्चे प्रेमसे जगमगाती हुई माधुरीमयी मूर्त्तिको लाख वार देखकर भी आंखें नहीं अघातीं, जिसकी वातें कानोंमें अमृत टपकातीं और प्राणोंमें पुलक उत्पन्न कर देती हैं, तथा जिसका प्रेम अन्तरात्माको अनन्त प्रेमका पूर्वास्वाद चखा देता है, वही मेरा सच्चा वन्धु है। ऐसी ही वन्धुताका स्मरण कर शेक्सपियरने 'मर्चेण्ट आफ़ वेनिस' (वेनिसका व्यापारी) नामक नाटक लिखा है और ऐण्टोनियो तथा वैसेनियोकी बंधुताका चित्र अङ्कित कर संसारभरके मनुष्योंमें एक आदर्श उत्पन्न करनेकी चेष्टा की है। इसी महद्भावपूर्ण प्रीतिकी वात याद कर भारतके महाकवि भारविने लिखा है—

"अकिञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्ये दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥"

अर्थात् जो जिसका प्राणप्रिय होता है, अर्थात् प्रियबंधु होता है, वह उसके लिये एक बड़े ही आदरकी वस्तु हो जाता है। वह चाहे कुछ भी न करे पर आंखोंके सामने बैठा रहे, तो प्राण शीतल हो जाते हैं, मानों उसका पास बैठा रहना ही कोई बड़ा भारी सुख हो। उसके समीप आते ही दुःख मानों दूर हो जाते हैं और प्राण आनन्दसे भर उठते हैं।

किन्तु हाय! वह 'बंधु' शब्द आज इस नयी सभ्यताके कीचड़में पड़कर कैसी बुरी चीज बन गया है! आजकल तो हर गली कूचेमें टके सेर बन्धु बिक रहे हैं। लोग कहते हैं, कि मछलीकी मांके हृदयमें कभी शोक या दुःख नहीं होता; पर आजकल इस झूठे जगत्में बन्धुके लिये भी किसीके मनमें शोक दुःख नहीं व्यापता। सभी शिक्षित व्यक्ति इसे स्वीकार करते हैं कि, आजकल बन्धुके लिये किसीको कभी उद्वेग या उत्कण्ठा नहीं होती। सच पूछो तो जबसे यह 'माइ डियर' शब्द निकला है, तबसे 'बंधु' शब्दकी कोई कदर नहीं रह गयी। पुराने जमानेमें लोग एक भी सच्चा बंधु पाकर अपने जीवनको धन्य मानते थे और धर्मको साक्षी देकर उससे मित्रताका नाता जोड़ते थे। पर आजकल तो बंधुओंका ऐसा गड्डम गड्डा देखनेमें आता है, कि उनकी चढ़ाईके मारे घरमें बैठना हराम हो जाता है। न मैं तुम्हें जानता हूं और न तुम मुझे पहचानते हो। एक

धन्य धन्य कहला रहे हैं। 'माननीय वन्धुकी' बात कहनेके पहले हम 'वन्धुके' ही सम्बन्धमें कुछ कहना चाहते हैं। क्योंकि स्त्री, पुत्र कन्या और अन्यान्य परिजनोंसे भी वन्धु कहीं अधिक प्राणप्रिय होता है। स्त्री पुत्र भी वन्धु हो सकते हैं, पर इस स्वार्थ कलङ्कित जगत्में न तो सभी स्त्रियां ही स्वामीके वन्धुका काम कर सकती हैं, न सभी पुत्र ही अपने पिताके यथार्थ होनेके योग्य हैं। 'वन्धु' शब्दके अर्थ क्या हैं? मेरा हृदय जिसके हृदयके साथ ओत प्रोत भावसे जुड़ा हुआ है, वही मेरा वन्धु कहला सकता है। मैंने जिसे हृदयके पतले तारोंसे सौ सौ वन्धनों द्वारा बांध रखा है, जिसे हृदयके हृदयमें छिपा रखा है, वही मेरा वन्धु है। जिसे देखते ही मेरी आंखें खुशीसे खिल जाती हैं, नजरोंके सामने चांदनीसी छिटक जाती है, जिसकी सच्चे प्रेमसे जगमगाती हुई माधुरीमयी मूर्त्तिको लाख वार देखकर भी आंखें नहीं अघातीं, जिसकी बातें कानोंमें अमृत टपकातीं और प्राणोंमें पुलक उत्पन्न कर देती हैं, तथा जिसका प्रेम अन्तरात्माको अनन्त प्रेमका पूर्वास्वाद चखा देता है, वही मेरा सच्चा बन्धु है। ऐसी ही वन्धुताका स्मरण कर शेक्सपियरने 'मर्चेण्ट आफ़ वेनिस' (वेनिसका व्यापारी) नामक नाटक लिखा है और ऐण्टोनियो तथा वैसेनियोकी बंधुताका चित्र अङ्कित कर संसारभरके मनुष्योंमें एक आदर्श उत्पन्न करनेकी चेष्टा की है। इसी महद्भावपूर्ण प्रीतिकी वात याद कर भारतके महाकवि भारविने लिखा है—

"अकिञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यै दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥"

अर्थात् जो जिसका प्राणप्रिय होता है, अर्थात् प्रियबंधु होता है, वह उसके लिये एक बड़े ही आदरकी वस्तु हो जाता है। वह चाहे कुछ भी न करे पर आंखोंके सामने बैठा रहे, तो प्राण शीतल हो जाते हैं, मानों उसका पास बैठा रहना ही कोई बड़ा भारी सुख हो। उसके समीप आते ही दुःख मानों दूर हो जाते हैं और प्राण आनन्दसे भर उठते हैं।

किन्तु हाय! वह 'बंधु' शब्द आज इस नयी सभ्यताके कीचड़में पड़कर कैसी बुरी चीज बन गया है! आजकल तो हर गली कूचेमें टके सेर बन्धु बिक रहे हैं। लोग कहते हैं, कि मछलीकी मांके हृदयमें कभी शोक या दुःख नहीं होता; पर आजकल इस झूठे जगत्में बन्धुके लिये भी किसीके मनमें शोक दुःख नहीं व्यापता। सभी शिक्षित व्यक्ति इसे स्वीकार करते हैं कि, आजकल बन्धुके लिये किसीको कभी उद्वेग या उत्कण्ठा नहीं होती। सच पूछो तो जबसे यह 'माइ डियर' शब्द निकला है, तबसे 'बंधु' शब्दकी कोई कदर नहीं रह गयी। पुराने जमानेमें लोग एक भी सच्चा बंधु पाकर अपने जीवनको धन्य मानते थे और धर्मको साक्षी देकर उससे मित्रताका नाता जोड़ते थे। पर आजकल तो बंधुओंका ऐसा गड्डम गड्डा देखनेमें आता है, कि उनकी चढ़ाईके मारे घरमें बैठना हराम ै है। न मैं तुम्हें जानता हूं और

दूसरेके वापदादोंका हाल जानना तो दूरकी वात है, हम परस्पर एक दूसरेका पूरा नाम भी नहीं जानते ; पर काम आ पड़नेपर हमलोग वड़े गहरे दोस्त वन जाते हैं। यहां तो मैं तुम्हारा सत्यानाश करनेकी दिलमें ठाने हुए हूं; तुम्हारी जानका गाहक वन रहा हूं ; तुम्हारी शान्तिके पथमें रोड़े अटकाने और कीर्त्तिकी चादरमें कालिख लगानेको तुला वैठा हूं, तुम्हारी रोजी छीन लेनेकी ताकमें लगा रहता हूं और यही सोचता रहता हूं, कि किस तरह तुम्हें जला जलाकर मार डालूं ; पर तुम्हारी चिट्ठीमें अपनेको तुम्हारा 'एकान्त स्नेहानुगत वन्धु' ही लिखूंगा। यह सव तो सभ्यताकी वातें हैं सरलताके सार हैं और शिष्ट-व्यवहारका मज्जागत रस हैं। इस तरहके व्यवहारसे भला धर्मपर कुछ आघात थोड़े ही होता है ? देवता नाराज थोड़े ही होते हैं ?

'वंधु' ही जव इस तरहकी झूठी वस्तु हो रहा है, तव 'माननीय वंधुको' तो झूठका पहाड़ ही समझना चाहिये। अगर पहला मोदक है, तो दूसरेको महामोदक समझना चाहिये। क्योंकि कहां तो 'वंधु' ही इतना प्यारा शब्द है तिसपर 'माननीय' का पचड़ा फिर गया। उन्होंने वणिज व्यापारमें वहुत दफे वहुतोंका सर्वनाश कर डाला है; पर अव तो सैकड़ों लोग उनको आशीर्वाद देनेके लिये व्याकुल दिखलाई पड़ते हैं। दीवालिया हो जाना या किसीको जमा डकार जाना तो कोई वड़ी वात नहीं। फिर जो लोग उनके पापके सारथि, परितापके

साक्षी और प्रायश्चित्तके पुरोहित हैं, वे क्यों नहीं आधी रातको उनके पादपद्मोंको हाथमें लेकर 'देहि पद पल्लवमुदारम्'का पाठ करें? इससे क्या होता जाता है? उनको तो सदा, सबके सामने, हर बातमें 'प्राण बंधु' कह कर पुकारना ही होगा। कारण, वे केवल बंधु ही नहीं, 'माननीय बंधु' हैं। यदि वे केवल 'माननीय' न होकर पार्लामेण्टके सभासदोंकी तरह "राइट आनरेब्ल' अथवा 'महामाननीय' बंधु होते, तब तो उनके गौरवकी रक्षाके लिये भाषाका कैसा आकुञ्चन, विकुञ्चन और सम्प्रसारण करना पड़ता, यह बेचारे बदनसीब 'प्राणानन्द'को, मालूम नहीं। पार्लामेण्टकी प्रथाके अनुसार ग्लेडस्टनके महामाननीय परम बंधु थे विख्यात नीति नट बेकन्सफ़ील्ड और आयर्लैण्डके नेता पारनेलके 'परम बंधु' थे प्राणप्रिय हारकोर्ट, ऐसे—ऐसे बंधुओंकी बन्धुतापर अपदेवतागण ही फूल बरसाया करते हैं।

७—हलफ़ नामा। यह एक बड़ी भारी और प्रसिद्ध मिथ्या है। पहले पहल इसकी कल्पना सत्यकी रक्षाके ही लिये की गयी थी; यह सत्यका समूल संहार ही करता रहता है। शुक, शौनक और शातातप आदि महर्षि,—ध्रुव, प्रह्लाद और उद्धव आदि भक्त और सुकरात, शाक्यसिंह, अरस्तू, पाल और गौतम आदि ज्ञानगुरु तथा ध्यानगुरु महात्माओंने जिसे चित्त और

अगम्य और अज्ञेय

मुर्दोंसे भरे हुए श्मशान आदि भयङ्कर स्थानोंमें दिन रात साधना और तपस्या करके भी जिन्हें न देख सके, न जान सके, किंवा उनका अनुभव न कर सके, बड़े बड़े वैज्ञानिक गहरी खोज करके भी जिनकी थाह न पा सके, अदालतमें जजके सामने खड़े होकर चमारतक हलफ़ लेते समय उस खुदाको हाज़िर नाज़िर समझ और जानकर सच्ची बातें बयान कर रहे हैं! धर्म संस्थापन ही जिनका रोज़गार है उनमें कोई कोई आँखें मटकाकर और कोई कोई रातको मौजें उड़ानेके कारण अलसायी हुई देहसे अँगड़ाई लेते हुए इसी तरह ईश्वरको प्रत्यक्ष देखा करते हैं और धर्मका मर्माघात करनेको ही जिनका दुनियांमें अवतार हुआ है, वे भी इसी तरह ईश्वरको हाज़िर नाज़िर जानते हैं। इस तरहकी हरकतको न तो कोई बुरा बतलाता है, न इसकी निन्दा करता है। इस तरह ईश्वरको प्रत्यक्ष देखना बहुतोंका रोज़गार सा हो गया है और कभी कभी इसके लिये उनको कैसी सजायें मिलती हैं, यह भी क़ानूनकी किताबोंमें दर्ज है।

प्रशंसा, विनय, अभ्यर्थना और अनुतापकी भाषाको भी हम साधारणतः प्रचलित मिथ्या में ही गिनते हैं। यदि किसीको खुश करने या घरपर आये हुए मनुष्यकी संवर्द्धनाके लिये उसकी चाहे जितनी प्रशंसा कर डालो, विनीत कहलानेके लिये चाहे जितनी नरमी दिखला दो और दीनता दिखलाते हुए हृदयका अनुताप प्रकट करनेके लिये चाहे जितना झूठ बोल जाओ, वह सभ्य समाजमें शोभा ही पायेगा। "चौबेजीमें [illegible]

आदमी तो इस दुनियांमें कोई न होगा," "मुझसा दीन हीन और महापापी तो इस जगतमें दूसरा नहीं है"—ऐसी ऐसी बातें बहुत सुननेमें आती हैं, पर यदि कोई धृष्ट व्यक्ति, शिष्टताकी सीमा लांघ कर पूछ बैठे कि, अभी तो उस दिन आप चौबेजीकी पीठ पीछे उनकी बड़ी बुराई कर रहे थे और आज मुंहपर ऐसी तारीफ हांक रहे हैं, अथवा यदि कह बैठे, कि यदि आप ऐसे महापापी हैं, तो फिर इस दुनियांसे मुंह काला क्यों नहीं कर जाते? तब तो वे पर प्रशंसाकारी, विनयी, अनुगत और अनुतप्त महात्मा उसी क्षण क्रोधसे आग बबूला होकर प्रशंसा, विनय, अभ्यर्थना और अनुतापको भाषाको थोड़ी देरके लिये ताकपर धर देते हैं और एकबारगी बदले हुए सुरमें कड़ी कड़ी बातें कहने लग जाते हैं। धन्य हो सभ्यता! तू सब शक्तियोंकी मूल शक्ति और सब शास्त्रोंका सार सिद्धान्त है! तेरे प्रभावसे अन्धेरेका उंजेला और उंजेलेका अंधेरा हो जाता है! जिसे तूने अपना बाना पहना दिया, वह चाहे हृदयका पिशाच ही क्यों न हो, पर तू उसे संसारमें पूज्य और प्रशंसनीय बना देती है। सच पूछो, तो समाजमें रहनेवालोंको तेरी ही पूजा करनी चाहिये।

हमने ऊपर प्रचलित झूठी बातोंके ये कुछ नमूने दिखला दिये, अब बुद्धिमान् व्यक्ति चाहें तो ऐसे हजारों उदाहरण ढूंढ़कर निकाल सकते हैं। अब अप्रचलित झूठी बातोंके सम्बन्धमें केवल इतना ही कहना काफ़ी है, कि ऊपर जिस श्रेणीकी

मुर्दोंसे भरे हुए श्मशान आदि भयङ्कर स्थानोंमें दिन रात साधना और तपस्या करके भी जिन्हें न देख सके, न जान सके, किंवा उनका अनुभव न कर सके, बड़े बड़े वैज्ञानिक गहरी खोज करके भी जिनकी थाह न पा सके, अदालतमें जजके सामने खड़े डोम चमारतक हलफ़ लेते समय उस खुदाको हाज़िर नाज़िर समझ और जानकर सच्ची बातें बयान कर रहे हैं! धर्म संस्थापन ही जिनका रोज़गार है उनमें कोई कोई आँखें मटकाकर और कोई कोई रातको मौजें उड़ानेके कारण अलसायी हुई देहसे अँगड़ाई लेते हुए इसी तरह ईश्वरको प्रत्यक्ष देखा करते हैं और धर्मका मर्माघात करनेको ही जिनका दुनियांमें अवतार हुआ है, वे भी इसी तरह ईश्वरको हाज़िर नाज़िर जानते हैं। इस तरहकी हरकतको न तो कोई बुरा बतलाता है, न इसकी निन्दा करता है। इस तरह ईश्वरको प्रत्यक्ष देखना वहुतोंका रोज़गार सा हो गया है और कभी कभी इसके लिये उनको कैसी नसीहत मिलती है, यह भी क़ानूनकी किताबोंमें दर्ज है।

प्रशंसा, विनय, अभ्यर्थना और अनुतापकी भाषाको भी हम साधारणतः प्रचलित मिथ्य में ही गिनते हैं। बड़ेका जी खुश करने या घरपर आये हुए मनुष्यकी संवर्द्धनाके लिये उसकी चाहे जितनी प्रशंसा कर डालो, विनीत कहलानेके लिये चाहे जितनी नरमी दिखला लो और दीनता दिखलाते हुए हृदयका अनुताप प्रकट करनेके लिये चाहे जितना झूठ बोल जाओ, सब सभ्य समाजमें शोभा ही पायेगा। "चौबेजीसे बढ़कर बनु

आदमी तो इस दुनियांमें कोई न होगा," "मुझसा दीन हीन और महापापी तो इस जगत्‌में दूसरा नहीं है"—ऐसी ऐसी बातें बहुत सुननेमें आती हैं, पर यदि कोई धृष्ट व्यक्ति, शिष्टताकी सीमा लांघ कर पूछ बैठे कि, अभी तो उस दिन आप चौबेजीकी पीठ पीछे उनकी बड़ी बुराई कर रहे थे और आज मुंहपर ऐसी तारीफ हांक रहे हैं, अथवा यदि कह बैठे, कि यदि आप ऐसे महापापी हैं, तो फिर इस दुनियांसे मुंह काला क्यों नहीं कर जाते? तब तो वे पर प्रशंसाकारी, विनयी, अनुगत और अनुतप्त महात्मा उसी क्षण क्रोधसे आग बबूला होकर प्रशंसा, विनय, अभ्यर्थना और अनुतापकी भाषाको थोड़ी देरके लिये ताकपर धर देते हैं और एकबारगी बदले हुए सुरमें कड़ी कड़ी बातें कहने लग जाते हैं। धन्य हो सभ्यता! तू सब शक्तियोंकी मूल शक्ति और सब शास्त्रोंका सार सिद्धान्त है! तेरे प्रभावसे अन्धेरेका उंजेला और उंजेलेका अंधेरा हो जाता है! जिसे तूने अपना बाना पहना दिया, वह चाहे हृदयका पिशाच ही क्यों न हो, पर तू उसे संसारमें पूज्य और प्रशंसनीय बना देती है। सच पूछो, तो समाजमें रहनेवालोंको तेरी ही पूजा करनी चाहिये।

हमने ऊपर प्रचलित झूठी बातोंके ये कुछ नमूने दिखला दिये, अब बुद्धिमान् व्यक्ति चाहें तो ऐसे हजारों उदाहरण ढूंढकर निकाल सकते हैं। अब अप्रचलित झूठी बातोंके केवल इतना ही कहना काफ़ी है, कि ऊपर

मिथ्याके उदाहरण दिये गये हैं, उसके सिवा और तरहकी झूठी बातें अप्रचलित श्रेणीमें आ जाती हैं। किसी पापी, नशेबाज और अत्याचारीने, असुरोंकी तृष्णा और राक्षसोंकी क्षुधा द्वारा पोषण किये हुए, किसी सती साध्वी कुलाङ्गनाका धर्मनाश करनेकी ठान ली है, पर यदि उस बेचारीको बचानेके लिये तुम एक भी बात झूठ बोल दोगे, तो यह बड़ी बेजा बात समझी जायगी, क्योंकि यह अप्रचलित झूठ है। तुम्हारी एककी झूठी बातसे चाहे किसीकी जान बचती हो, किसी पवित्रहृदया कुल-महिलाकी धर्म-रक्षा होती हो या किसी भले घरके आत्मीय जाति-मान बचता हो, पर संसारका नीतिशास्त्र तुम्हें सौ सौ मौकोंपर झूठ बोलनेकी छुट्टी देकर भी इस मौकेपर झूठ बोलनेसे रोकनेको तैयार हो जायेगा, क्योंकि यह अप्रचलित है। तुम्हारे झूठ न बोलनेसे भलेही किसीका घर बरबाद हो जाये या सैकड़ोंके दिलपर बिजली गिर पड़े, पर यह परिणाम-मधुर और पुण्य-पुञ्जमयी मिथ्या बोलनेकी आज्ञा समाज नहीं दे सकता। कारण, यह प्रचलित नहीं है।

इसीसे हमें फिर कहना पड़ता है, कि सभ्यता, तू धन्य है। तू ही सब शक्तियोंकी आदिशक्ति और सब नीतियोंकी मूलनीति है! पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म यह सब तो तेरे बायें हाथके खेल हैं! तेरा हुक्म न माननेवालोंका दुःख दूर [illegible], [illegible] माना जाता है और [illegible] जाता है [illegible] [illegible] है, जैसे [illegible], पापी और धूर्त मनुष्यों

भी तू अपनी जादूकी छड़ी घुलाकर दूसरा रौबस्पेय * बना देती है।

कुंए या गड्ढे वगैरहमें बँधा हुआ रहता है, उसे बँधा या कारारुद्ध जल कह सकते हैं। पहला जैसा ही सद्यःप्राणकारक है, दूसरा वैसा ही सद्यःप्राणहारक है।

धर्मकी भी ठीक यही हालत है। जो धर्म मनुष्यके हृदयसे अपनी स्वाभाविक शोभाके साथ बाहर निकलता है वह चारों दिशाओंमें सुगन्धसी फैला देता है। सच पूछो, तो यही सच्चा अर्थात् निर्मुक्त धर्म है। इसके विपरीत जो धर्म कुछ भ्रममें डूबे हुए या ओछोंके लोगोंके सङ्कीर्ण चित्तरूप कूड़ा कांटेसे भरी कुटियामें या तङ्ग मुंहवाले कुंएमें बन्द पड़ा रहता है। वही अस्वाभाविक अर्थात् कारारुद्ध धर्म है। कारारुद्ध वायु और जलकी ही तरह यह कारारुद्ध धर्म भी यदि कुछ दिनोंतक बुरा परिणाम न भी करे, तोभी अन्तमें विकार पैदा किये विना नहीं रहता। निर्मुक्त धर्म सदा हृदयको विकसित किये रहता है और कारारुद्ध धर्म कोमल और स्वभाव सुन्दर हृदयको भी विगाड़ डालता है, उसे दिन दिन सङ्कुचित करता चला जाता है। फिर वहांसे स्नेह, प्रीति और दयाके सोते निकलने ही नहीं पाते। फिर तो सबको अपना नहीं समझ सकता और पराये सुख दुःखसे कोई वास्ता नहीं रखता। जड़-कटी लताकी तरह वह भी नीरस और निरानन्द हो जाता है। फिर तो जिसे देखकर लोगोंके प्राण सुखी हो जाते, उसे ही देखकर लोग निराश हो, आंखें फेर लेते हैं।

जिस समय प्रातःकाल सूर्यकी सुनहली किरणोंसे आसमान

जगमगा उठता है, उस समय सारा संसार जाग जाता है और उस अनुपम तथा अनिर्वचनीय सौन्दर्य राशिको देखता है; क्योंकि सभी लोग सूर्यको अपना ही मानते हैं। भला जिसकी आंखें ख़राब हो गयी हों या दुखने आयी हों, उसके सिवा और कौन सूर्यकी रोशनीसे चिढ़ सकता है ? जिस समय चन्द्रमाकी अमृतभरी चाँदनी, बादलोंको हटाकर जगत्में सुधाकी धार बरसाने लगती है, उस समय एक बार बड़ा भारी दुखिया भी आंखें उठाकर आसमानकी ओर देखने लगता है। चन्द्रमाको कोई पराया नहीं मानता। इस जगत्में भला कौन ऐसा अभागा है, जिसे चांदनी देखकर प्रसन्नता न होती हो ? इसी तरह जब कोई सच्चा धर्मात्मा मनुष्य यथार्थमें ही किसी धर्मका अनुष्ठान करता है, अथवा धर्मकी शीतल किरणें संसारमें फैलाने लगता है; तब सभी सहृदय व्यक्ति पुलकित होकर उसकी ओर देखने लगते हैं और मानव जगत्में भक्ति, प्रीति और कृतज्ञता, त्रिधारा मन्दाकिनीकी भांति, आपसे आप उसकी ओर प्रवाहित होने लगती हैं। निन्दकोंकी जीभ कभी चले बिना नहीं रहती; तोभी वह उसे देख, डरसे चुपचाप रह जाती है; डाही मनुष्य अपना स्वभाव छोड़नेमें लाचार होते हुए भी मन ही मन कुढ़ कर रह जाते हैं और चाहे कैसा भी अविश्वासी क्यों न हो, वह भी थोड़ी देरके लिये यही सोचता हुआ चुपचाप खड़ा रह जाता है, कि ऐं ! यह मैं क्या देख रहा हूं ? ऐसे धर्मात्माओं और धार्मिक भावोंको सरल और उदार हृदय मनुष्य

कभी दिलसे दूर नहीं कर सकते; परन्तु जो धर्म अमृतके स्पर्शकी तरह प्राण देनेवाला न होकर जीव-जगत्में ज्वाला उत्पन्न करनेवाला होता है, जो पतझड़में बिना पत्तोंके वृक्षकी तरह बड़े भद्दे रूपमें दिखाई देता है, जो अपना-पराया और लाभहानिकी गिनती करनेमें धूर्त्त बनियेसे भी बढ़ जाता है, जो डर दिखलाकर रोब गांठना चाहता है और लालच दिखलाकर लोगोंको अपनी ओर खींच लाना चाहता है, उसे भला दुनियांके लोग एक स्वरसे अपना धर्म कैसे मान सकते हैं? उसे क्योंकर सिरपर चढ़ा सकते हैं? वैसे धर्ममें तो आशीर्वादका नाम 'शाप' साधनाका नाम 'वैर भँजना' और स्वर्गका नाम 'जन-मानव हीन, आशाशून्य श्मशान' है। इतिहासके पन्ने उलट कर देखो, इस बातके सहस्रों उदाहरण मिल जायँगे।

इङ्गलैण्डके राजा आठवें हेनरीके लोक-विगर्हित अनीतिपूर्ण कार्योंको स्मरण कर किसका हृदय नहीं दहल जाता? वह एक ही समय बहुत सी औरतोंके प्रेमके मजे लूटना चाहता था, पर जो कोई उसके हाथ पड़ जाती, उसे हर तरह मुसीबतमें फंसाकर वह या तो उसकी जान ही ले लेता या उसे रास्तेकी भिखारिन बनाकर घरसे बाहर निकाल देता था। वह लोगोंको आशा देकर निराश करता, जबान देकर मुकर जाता, और भले आदमियोंको तङ्ग करता था वह महा नीच मनुष्योंके संसर्गमें पड़ा हुआ अपनी क्षुद्र वासनाएं चरितार्थ करनेमें ही डूबा रहता था।

सचमुच वह बड़ा भारी नीच, निष्ठुर, नीतिशून्य और निर्विवेकी पाखण्डी था। यद्यपि उसके समयके कुछ खुशामदियोंने उसे बहादुर बतलाकर ऊंचे चढ़ानेकी चेष्टा की थी, तोभी सारी दुनियांके लोग उसे दुष्ट जानकर उसे फटकार बतलाते थे। कुछ दिनोंतक अपनी गरज़ साधनेके इरादेसे उसने कथोलिक सम्प्रदायवालोंका साथ दिया और प्रोटेस्टैण्ट-मतवालोंको बुरी तरह सताया और पीछे प्रोटेस्टैण्टमतके आदि प्रवर्तक महात्मा लूथरकी उदयोन्मुखी यशः—प्रतिभासे ईर्षालु होकर उसने उनके उपदेशोंका खण्डन करनेके लिये एक पुस्तक लिख डाली।* बस इसी एक गुणने उसके सारे कलङ्क धो डाले और पोप उसपर प्रसन्न हो गये। फिर तो युरोपीय जगत्‌की धार्मिक राजधानी रोमनगरीने बादशाह हेनरीको 'धर्मरक्षक'† की उपाधि दे डाली और धर्मका मान और गौरव बढ़ाया। इसी तरह स्पेन देशमें जो लोग धर्मके नामपर मनुष्य जातिपर बेहद अत्याचार करते, लोगोंकी घर गृहस्थी चौपट कर देते और दयाधर्मको भाड़में झोंककर अबलाओंके कोमल प्राणोंपर

---

* यह किताब हेनरीकी नहीं, वरन् सर टामस मूर नामक एक सुयोग्य मनुष्यकी लिखी हुई थी। पहले तो हेनरी उसपर बड़ा प्रसन्न था पीछे इस कामका इनाम उन्होंने उसका सिर कटवाकर दे डाला!

† तभीसे इङ्गलैण्डके राजागण "Defender of the faith" कहे जाते हैं।

आघात करते हुए भी न चूकते थे, उन्हें ही बड़े बड़े पादरी भी धर्मात्मा कहते हुए न शर्माते थे। इसके साथ ही जो लोग धर्मको प्रीतिका प्रस्रवण, दयाका जीवन और शान्तिका चिर-निवास मानकर लोगोंपर अत्याचार करते हुए हिचकते थे, वे विधर्मी और अविश्वासी माने जाकर सबकी घृणाके पात्र बनते थे।

इन सब बातोंसे क्या यह नहीं सिद्ध होता कि धर्मकी कैद भी इस प्रकारकी भद्दी भक्ति, भद्दे प्रेम, कुपात्रकी श्रद्धा और सुपात्रकी अप्रतिष्ठाका मूल कारण है? साधुता, सत्य-वादिता, परमार्थ निष्ठा और परोपकारिता आदि अच्छे गुण कभी किसी देशमें नहीं बदलते। जो इस देशमें भलाई मानी जाती है, वही सब देशोंमें भलाई मानी जाती है। जो यहां परोपकार समझा जाता है, वही सब जगह समझा जायेगा। जो सचमुच महत्वकी वस्तु है, उसका तो सभी जगह एकसा मान होगा। लोग जिसे चरित्र गौरव कहते हैं, वह तो सभी स्थानोंमें समान आदर पाता आया है। फिर जो लोग किसी खास धर्मके प्रचारकोंकी निगाहमें बड़े भारी भक्ति भाजन और आदर्श माने जाते हैं, उन्हें और और धर्मोंवाले अधर्मात्मा और अन्धे क्यों बनाते हैं? और सारे जगत्के लोग जिन्हें पिशाच या उससे भी बदतर समझते हैं उन्हें ही किसी खास धर्मके माननेवाले लोग क्योंकर भला मानते हैं और उनकी करतूतोंका समर्थन करते हैं? कहीं इसका कारण उसी

कारारुद्ध धर्मकी कुटिलगति ही तो नहीं है? विदुरकी अलौकिक भक्ति, बुद्धदेवकी अमानुषिक तपोरति, नानककी निर्भय आत्म परायणता, नित्यानन्दनका प्रेम और नरोत्तमका दैन्य औदास्य और दीनबन्धुता सदा सर्वसाधारणमें अमूल्य रत्न माना जाता है, परन्तु जो लोग धर्मकी लीक पीटते पीटते किसी तरहकी कैदमें पड़ गये हैं, जरा उनसे तो पूछो कि वे क्या कहते हैं? वे किसीको नास्तिक, किसीको पतनोन्मुख नास्तिक और सब किसीका अन्धकारमें पड़े हुए मूर्ख ही बतलायेंगे!

हम पहले ही कह चुके हैं, कि कारारुद्ध धर्म प्रकाशसे डरता है। वह मनुष्यकी आंखों और उसकी बुद्धिकी मर्मस्पर्शिनी दीप्तिसे बहुत ही घबराता है। प्राचीन कवियोंने मिश्रकी रातको बड़ी ही भयंकर अन्धकारमयी कहा है, पर मिश्र देशवालोंका प्राचीन धर्मतत्त्व तो उससे भी कहीं बढ़कर अन्धकारपूर्ण है। येशुट-सम्प्रदायके लोग कैसे हैं, यह आजतक भी नहीं समझ आया। वे कब कहां रहते हैं, कहां नहीं; कहाँ क्या करते हैं, क्या नहीं करते; किस मतलबसे कभी दिखलाई देते हैं और कभी छिप जाते हैं, यह बात सिवा येशुटोंके और कोई नहीं जान सकता। इधर कापालिकोंका यह हाल है कि चाहे उनकी जान ले ली जाय, पर वे सिवा किसी कापालिकके औरोंके कानमें अपने मनकी बात न पड़ने देंगे। ज्ञानका उज्वल आलोक देखते ही वे उस स्थानको क्रोध और भयके

मारे छोड़ देते हैं और जो कोई मनुष्य ज्ञानालोककी सहायतासे उनसे कुछ सीखने या उनकी परीक्षा लेनेके लिये उनके पास आता है, उसे वे अपनी धर्म-साधना और धार्मिक संसारका परम शत्रु समझकर तरह तरहके अत्याचार करते हुए खदेड़ देते हैं।

कारारुद्ध धर्मका एक बड़ा भारी परिचय धर्मकी ध्वजा है। ध्वजा कहनेसे लोग साधारणतः उसका अर्थ 'झण्डा' समझते हैं; पर नहीं, यह धर्मकी ध्वजा नाना प्रकारकी होती है। कहीं वह ध्वजा लम्बे चौड़े छापा तिलकके रूपमें होती है, तो कहीं त्रिपुण्ड्रके रूपमें। कहीं गेरुए वस्त्रके रूपमें, तो कहीं बाघम्बरके। इन ध्वजाओंको धारण करनेके लिये कोई सिर मुंड़ाता है, तो कोई लम्बी लम्बी जटाएँ रखता है; कोई दिगम्बर रहता है, तो कोई दोनों बाहें ऊपर उठाये दुनियाँको हैरतमें डाल रहा है। इसीकी पहचानके लिये कोई अलख जगाते हैं, तो कोई चेत, चेत, कहकर अचेतोंको चेताते हैं। इसीके फेरमें पड़कर कोई अद्भुत वेश बनाता है, कोई भिक्षाकी झोली लटकाये फिरता है, अथवा शीशा, सोना, पत्थर शङ्ख और स्फटिक आदिकी विचित्र मालाएं गलेमें डाले रहता है। बहुत बार प्रयोजन आ पड़नेपर इन्हें शरशय्या, सूचिशय्या और कभी कभी शवशय्यापर भी शयन करनेके तमाशे दिखाने पड़ते हैं। सच पूछो, तो दुनियाँमें धर्म बड़ा है कि धर्मका दिखावा, इसका निर्णय करना बड़ा कठिन है। हमारे कहनेका मतलब यह नहीं, कि जहां कहीं आप इस तरहकी धर्मध्वजा देखें, वहीं पाखण्ड भरा

हुआ समझें। सभी धर्मध्वजाएं पाखंडीपनकी पहचान नहीं हैं। भावके प्रबल आवेशमें आकर अथवा विवेकके अनन्य साधारण विश्वासके कारण बहुतेरे लोग अक्सर इस तरहकी ध्वजा प्रेमसे भी धारण कर लेते हैं और नूतनताकी मोहन माधुरी अथवा सबसे निराले बननेकी चाह भी अक्सर मनुष्यको इस तरहकी कोई न कोई ध्वजा धारण करनेके लिये प्रवृत करती है। तो भी यह बात सोलह आने ठीक है, कि भक्तिकी अप्राकृत गति या पाखंडीपनकी इच्छा ही लोगोंको इस तरहकी कोई ध्वजा धारण करनेकी ओर झुकाती है तथा यह भी बावन तोले पाव रत्ती सही है कि जो लोग तिलक छाप लगाकर ही दुनियांको अपना धर्मात्मापन जंचाना चाहते हैं वे या तो कारारुद्ध धर्मके नायक हैं, अथवा उसके हाथके खिलौने हैं। पर जो लोग धर्मको विश्वमय सौन्दर्यकी तरह विश्वका आराध्य पदार्थ मानते हैं वे कभी किसी तरहकी ध्वजा धारण कर या ध्वजा बना कर अपने-को दुनियांके और लोगोंसे पृथक् बतलाना नहीं चाहते।

कारारुद्ध धर्मकी तीसरी पहचान कपोल कल्पित आध्यात्मिक जातिभेद है। सामाजिक जातिभेदका हाल तो सभीको मालूम है। पुराने जातिभेदकी वह श्रृंखला टूट जाने पर भी फिरसे जो नया जातिभेद खड़ा किया गया है, वह जाति विद्वेषकी ज्वाला जगाकर उसीसे अपना काम निकालनेका यत्न करता है। इस पृथ्वीमें कोई मनुष्य नीचेसे ऊपरतक धर्मसे भरा हुआ नहीं है। वैसे ही कोई सोलह आने अधर्मी भी

नहीं है। जो लोग भक्ति और प्रीतिके पवित्र धर्ममें सरल हृदयसे श्रद्धा रखते हैं, उनका आदरणीय जीवन भी मतभेद आ पड़नेपर कठोर समालोचनाका पात्र बन जाता है। इधर जो लोग संसारभरसे अधार्मिक कहकर ठुकरा दिये गये हैं, वे उदारता और परोपकारतामें कभी कभी बड़े बड़े धर्मात्माओंके कान काट लेते हैं। परन्तु कारारुद्ध धर्मने पहले ही धार्मिक और अधार्मिक विश्वासी और विरोधी, प्रविष्ट और अप्रविष्ट तथा मुक्त और अमुक्त आदि नये नये जातिभेद निकालकर पहलेसे ही प्रीति और सहानुभूतिकी रेड़ मार दी है और अचिह्नित, अप्रविष्ट और अमुक्त व्यक्ति लाख ऊँचे दर्जेका आदमी क्यों न हो, पर वे तो उसे मँडलीके बाहरका आदमी समझ कर एक विचित्र श्रेणीका जीव मानेगा और अवज्ञाकी दृष्टिसे देखेगा। इसके खयालसे उसका सारा दान, ध्यान, लोकहितैषिता और कार्यतत्परता पाखंड और व्यर्थका परिश्रम है। कारण, वह कारागृहका कैदी नहीं है। उसकी प्रीतिका नाम पाप, पुण्याञ्जलिका नाम पंकप्रवाह और उन्नतिका नाम अधःपात है। क्योंकि वह कैदमें रहना पसन्द नहीं करता। हां, वह अन्धेरेसे उजेलेमें और अविश्वाससे विश्वासके प्रकाशमें लाया जा सकता है, क्योंकि आखिर वह भी तो इन्सानका ही चोला धारे हुए है! पर उसे खुले दिलसे प्यार करना तो बड़ा ही असम्भव है, योगमें, भोगमें या कर्म सूत्रमें उसके साथ मिलकर चलना तो बड़ा ही मुश्किल है, क्योंकि वह जातिमें भिन्न है!

कारारुद्ध धर्मकी चौथी पहचान गुरु लोगोंका अनुचित और असह्य आधिपत्य है। गुरु लोग भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं। कहीं ये माङ्क कहलाते हैं और कहीं गुरु महाराज, पर सभी देशोंमें इनका प्रभुत्व खूब चढ़ा चढ़ा है। कारारुद्ध धर्मके ये लोग सच्चे प्राणदेवता हैं। येही इस धर्मकी आंख, कान और सिर हैं, इनकी कृपा ही सब कुछ है। हम तो इन्हें केवल धर्मके द्वारपालही नहीं मानते, बल्कि धर्मके कैदखानेके जमादार समझते हैं। तुम देखना चाहो, तो उन्हींकी आंखोंसे देखो, क्योंकि तुम्हारी आंखोंसे जो कुछ नजर आता है, वह असत्य है! कुछ सुनना चाहो, तो उन्हींके कानोंसे सुनो, क्योंकि तुम्हारे कान जो कुछ सुनते हैं, वह सरासर धोखा है! अपने मनकी वृत्तियोंका तुम कभी विश्वास न करो; क्योंकि तुम अपने मनमें जो कुछ सोचते, समझते हो, जो कुछ तुमने अबतक सीखा पढ़ा या ज्ञान विज्ञान और इतिहास पढ़कर जाना है, वह सब तुम्हारा मतिभ्रम है! पण्डे, पुरोहित और पुजारीजीका स्वार्थ, सम्मान, अभिमान और परिमित ज्ञान ही इस मतिभ्रमकी चहारदिवारी है और उन लोगोंकी भूलें ही इसका "भाष्य प्रदीप" है। यदि तुम धर्मके झण्डेके नीचे रहना चाहते हो तो, इस चहारदिवारीको कभी लांघनेकी कोशिश न करना! यदि तुम धर्मके रास्तेपर चलना चाहते हो, तो इस दीपशिखाकी रोशनीके सिवा और कोई रोशनी प्रयोगमें न लाओ! कारण, यदि ये पण्डे पुजारी

अधर्मको भी धर्म कह दें, तो सर्वसाधारणके लिये वही सच्चा धर्म है और धर्मको भी अधर्म कह दें तो वह सर्वथा अधर्म समझा जाता है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि हृदयको स्फूर्त्ति, भक्तिका पवित्र विलास, बुद्धिका विकास और चिन्ताकी गति आदि बातें भी उन्हींको इच्छाके अनुसार होनी चाहिये। यदि वे तन्दुरुस्तीको बीमारी बतला दें, अक़्लमन्दीको बेवकूफी कह दें, दूरन्देशीको खामखयाली ठहरा दें तो उसमें ज़रा भी शब्द मुँहसे नहीं करना चाहिये। कहनेका मतलब यह कि यह कारारुद्ध धर्म हर तरहसे इन पहरेदारोंके पहरेके भीतर रहता है और इनकी बपौती है। जो इस सम्पत्तिके लिये थोड़ी सी भी लालसा रखते हैं, उन्हें इनकी गुलामी करनी निहायत ज़रूरी है। ऐसे धर्मसे सर्वसाधारणका सीधा सरोकार होना असम्भव है। अगर पहरेदार रास्ता छोड़ दें, तभी तो तुम भीतर जा सकोगे? और नहीं तो उनके घुड़की दिखाते ही, द्वार बन्द करते ही, सदाके लिये तुम्हारे भीतर घुसनेकी आशा मिट्टीमें मिल जायेगी।

अब प्रश्न पैदा होता है कि क्या धर्म सदा इसी तरह भिन्न भिन्न कुसंस्कारपूर्ण सम्प्रदायोंके भिन्न भिन्न प्रकारके क़ैदखानोंमें क़ैद रहेगा? जो सत्यकी तरह सार्वजनिक और सार्वभौमिक है, वायुकी तरह स्वच्छन्द सब जगह घूम फिर सकता है, जो मनुष्यके लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा है, जिसका प्राणोंके साथ बड़ा गहरा नाता है, वह क्या सब दिन इसी तरह ज़ंजीरोंसे

जकड़ा रहेगा ? इसके उत्तरमें सारी दुनियां कहती है, कि नहीं विज्ञान्, इतिहास, काव्य, दर्शन आदि भी अपनी अपनी शक्तिके अनुसार ऊँचे स्वरसे मनुष्योंकी हृदयध्वनिको प्रतिध्वनि करते हुए कहते हैं—नहीं, अबतक विज्ञान विकृतदर्शिनी आलोक वर्त्तिकाकी भाँति कुछका कुछ दिखलाता रहा है—मनुष्यकी बुद्धिको सत्यके अनुरागसे उन्मादित कर, घनी अँधियारीमें ले जाता रहा है ; परन्तु अब युगोंकी खोज पड़तालके बाद वही विज्ञान भगवान्‌को ढूँढ़ रहा है और कहता है, कि भक्ति ही मानव विकासकी चरम सीमा है। लोग अबतक इतिहासको धूमकेतुकी तरह उच्छृंखल और उत्पथगामी जानते और उसकी बेक़द्री करते थे। आज वही इतिहास विश्वविधाताका दृढ़-नियमवद्ध लीला विलास माना जाकर सर्वत्र पूजा पा रहा है। कविता, मानों युग युगान्तरकी निद्राके बाद, फिर जग पड़ी है, और साम गानके अनुकरणपर अति गम्भीर कण्ठसे स्तुति कर रही है। दर्शनकी मानों आँखें खुल गयी हैं। वह संशयकी दुःख ज्वालासे जलाया जाकर अब प्राणोंको शीतल करनेके लिये प्राणाधीशके पदारविन्दोंमें प्रणत हो गया है। ये सब पहले धर्मकी ओरसे विमुख हो रहे थे, अब उसे प्राणोंकी सामग्री समझकर अपनी ओर खींच रहे हैं। इसीसे हम कहते हैं, कि अब क़ैदकी रातका सवेरा हो चला है, बहुत शीघ्र मनुष्य सवेरे-की हवाका मजा चख सकेंगे। सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें अर्थात् फ्रान्सकी प्रसिद्ध राज्यक्रान्तिकी पहली लहरमें जब पेरिसके

हिताहित ज्ञानशून्य, विकार विद्वेषपूर्ण, प्रमत्त प्रजावर्गने 'बास्टल' के मज़बूत क़ैदख़ानेकी दीवारें तोड़ डाली थीं, तब सीधे सादे बादशाह सोलहवें लुईने एकदम अकचकाकर पूछा था,-"ऐं! यह क्या हो गया?" उनके पास ही खड़े एक बड़े बुद्धिमान् और चतुर मन्त्रीने जवाब दिया था,—"महाराज, इसीका नाम है, ज्ञानका क़ैदसे छूटना। इतने दिनतक मनुष्योंको क़ैद करके रखा जा सकता था, इसी लिये वे क़ैद रहे, पर अब मनुष्योंकी बुद्धि, हृदय और आत्माको भी क़ैद करनेका विचार होने लगा था; पर ये तीनों क्या कभी सदाके लिये क़ैद किये जा सकते हैं? कभी नहीं।"

जिनके हाथोंमें धर्मके क़ैदख़ानेकी कुंजी है अर्थात् जो उसके पहरेदार हैं, उनकी भी एक दिन यही दशा होनेवाली है। ये लोग भी किसी दिन राजा सोलहवें लुईकी तरह चौंककर पूछेंगे, कि क्या हुआ? उनके पास खड़ा हुआ कोई बुद्धिमान् भी वही जवाब देकर उनका सिर नीचा कर देगा। पहले तो उनमेंसे बहुत-से लोग चैतन्यकी इस पहली लहरको देख, सन्तापसे दग्ध हो उठेंगे, संसार उन्हें अन्धकारपूर्ण दिखाई देने लगेगा, वे 'सृष्टिका संहार हुआ' ऐसा कहकर पुकार मचाने लगेंगे और मनमें जो कुछ बचे बचाये ममताके बन्धन होंगे, उन्हें तोड़ डालेंगे; पर अन्तमें उनका भी यह दुःख जाता रहेगा। कारण, संसारभरका मङ्गल कभी किसी ख़ास आदमीके लिये अमङ्गलकी वस्तु नहीं हो सकता और यदि अज्ञानके क़ैदख़ानेसे छुटकारा पाना मनुष्य

विशेषके लिये हितकारी है, तो वह धर्म-जगत्के लिये कभी हानिकारी नहीं हो सकता। धर्म अनेक स्थानोंमें, प्राणाराध्य पदार्थकी भाँति, सच्चे धार्मिकोंके हृदयमें छिपा रहता है। इससे किसीको किसी तरहका मनःक्षोभ नहीं हो सकता। कहनेका मतलब यह, कि जो साधनाका सार मर्म और धर्मका सच्चा सार है, वह कभी सहज ही सबको नहीं दिखाई देता। पर कारारुद्ध धर्मकी तो बात ही न्यारी है। उसकी क्रोधभरी मूर्त्ति समस्त जीवोंके लिये दुःखदायिनी और सभी सहृदयोंके लिये कष्टकारिणी है। इसलिये जितनी जल्दी उसका लोप होगा उतना मनुष्यत्वका विकास होगा और मनुष्य जातिके लिये अक्षय सुखका द्वार खुल जाना सम्भव होगा।

देवताओंकी सवारी

हिन्दू शास्त्रोंके जिस अंशमें पौराणिक तत्वोंका विवरण दिया गया है, उसमें सभी देवताओंको एक एक सवारी बतलायी गयी है। सच पूछिये, तो कोई प्रधान देवता बिना सवारीका नहीं है। परन्तु सबसे पहले जिन्होंने देवताओंको सवारियोंकी कल्पना की है, उन देवकवियोंकी सूझकी हम चाहे जितनी बड़ाई करें, पर उनकी अनोखी बातें सभी समय, सभी मनुष्योंकी बुद्धिमें नहीं आतीं ; क्योंकि हम अज्ञानी मनुष्योंके दिमाग़में ज्यादातर कूड़ा कर्कट ही भरा रहता है।

ब्रह्माका वाहन हंस है। यह बहुत ही अच्छी बात है। ब्रह्मा मानस सरोवरमें तैरते हुए अपने चारों मुखसे चारों वेद गाते रहते हैं और उनका वाहन हंस मधुर कल कल नादसे उस जलद गम्भीर वेदध्वनिकी प्रतिध्वनि करता हुआ चारों दिशाओंको गुँजाता रहता है। 'हंस' शब्दका एक और अर्थ है—आत्मा अथवा परमात्मा। इस अर्थसे वेदनिहित गंभीर सत्यका कैसा गूढ़ सम्बन्ध है, यह एक सोचनेकी बात है।

विष्णुका वाहन गरुड़ है। यह भी बिलकुल ठीक है। जैसे देवताओंमें बड़े विष्णु, वैसे ही पक्षियोंमें बड़ा गरुड़ भी है। दोनों ही तेजपुंज, दयावान्, दुष्टनाशक, शिष्टपालक और लोकसर्प तथा सर्प लोकके दर्पहारक हैं। गुण गौरवसे पूजित गरुड़के

सिवा भला त्रिभुवनमें और कौनसा वाहन विष्णुके लिये उपयुक्त होता? 'गरुड़' शब्दका दूसरा अर्थ 'विषका नाश करनेवाला' भी है। इस विषकी ज्वालासे जलते हुए विश्व ब्रह्माण्डमें जो शक्ति जीवोंका पापताप दूर करती है, दुःख दुष्कृतिका विष उतार देती है, वही शायद गरुड़के रूपमें कल्पित कर ली गयी है। पाठक गण विचार कर देखें।

बमभोलानाथ महादेवके लिये 'बैल' से बढ़कर भला और कौनसी सवारी सोची जा सकती थी? महादेव जैसे अवघड़ दानी हैं, वे जैसे या तो कभी नाराज़ ही नहीं होते, या झट बातोंमें ही नाराज़ हो जाते हैं, बहुतसे मामलोंमें उनका वाहन भी बैल ही है। बैलके लिये संस्कृतमें 'वृष' शब्द भी आता है। उसका एक अर्थ 'धर्म' भी है। इस शब्दका यह गूढ़ अर्थ जब दिमाग़में चक्कर लगाने लगता है, तब धर्मारूढ़ विश्वेश्वरके चरण कमलोंमें लोट जानेको किसके प्राण तैयार नहीं हो जाते?

पवनका वाहन मृग है। मृगको संस्कृतमें 'वातप्रेमी' भी कहते हैं। जिन्होंने कालिदासकी आँखोंसे व्याघ्रके डरसे भागते हुए मृगको छलाँगें भरते देखा है—वनमृगकी वह वायुको गतिको भी मात करनेवाली मायाविनी गति देखी है, अर्थात् उसे पलभरमें नज़रोंके सामने और पलही भरमें दूर—बहुत दूर चले जाते देखा है, वे अवश्य ही मान लेंगे, कि वह वायुकी सवारीके काममें आने लायक़ अवश्य ही है।

यमराजकी सवारी भैंसा है। क्रोधित हुए भैंसेकी मूर्त्ति

यमराजसे कम भयङ्कर नहीं होती। जिसने कभी गुस्सेमें आये हुए भैंसेको बेरोक तड़पते और शेरकी तरह गरजते देखा है, वह मृत्युके दरेसे सुखसे शीतल भले ही न हुआ हो, पर मृत्युके गलेकी आवाज़ ज़रूर सुन चुका है।

कुबेरका वाहन पुष्परथ है। यह भाव सङ्गत भी मालूम पड़ता है; क्योंकि जहाँ कुबेरका ख़ज़ाना हो, वहाँ तो चारों ओर फूल ही फूल नज़र आने ही चाहिये। वहाँ पुष्प-वृष्टि न होगी, तो और कहाँ होगी? वहाँ मनुष्यकी दृष्टि फूलोंके समान मधु बरसाती है, भाषा खिले हुए फूलोंकी बहार दिखलाती है, कर्त्तव्य-बुद्धिकी कठोर मूर्त्ति भी पुष्परस विलासिनी बन जाती है। वहाँ अन्धेका नाम नयन सुख, कुम्यड़ेका नाम कल्पतरु, ढिठाईका नाम धर्मबुद्धि, दुष्टताका नाम निडरपन, निर्दयताका नाम न्याय बदसूरतका नाम रूपचन्द और रातका नाम दिन है!

इन्द्रका वाहन-ऐरावत और शक्तिका वाहन सिंह है। दोनोंमें क्या ही चित्रनैपुण्य दिखलाया गया है! कार्त्तिकेयका वाहन मयूर है। रूप और गुणमें दोनों ही एक दूसरेके योग्य हैं। जिस समय मोर अपने सुन्दर परोंको फैलाकर आनन्द और अभिमानसे फूल उठता है, उस समय सिवा कार्त्तिकेयके और किसे उसकी पीठपर बैठाया जा सकता है? और कार्त्तिकेय जिस समय सौन्दर्यकी छटासे जगमगाते और रूप एवं तेजसे संसारको समुज्ज्वल करते हैं, उस समय मयूर बिना और कौन उन्हें अपनी पीठपर बैठा सकता है?

गणेशका वाहन चूहा है। यह देखनेमें भद्दा मालूम होनेपर भी, इसका अर्थ बड़ा ही गूढ़ है। गणेश, गणपति * हैं और गणपति * होनेहीके कारण सिद्धिदाता कहलाते हैं। इसलिये चूहा तो उनकी सवारीमें होना ही चाहिये। भला कहाँ कोई गणपति, चूहेके दाँतोंसे रास्ता साफ़ कराये विना, नैतिक सम्पदुसे भरे हुए स्वर्गकी सीढ़ीपर चढ़ सका है? इसीलिये पहले चूहा, पीछे सिद्धिदाता। इसीसे जो लोग मनुष्योंमें चूहेकी सी शकल और चाल चलनके हैं, जिन्हें देखते ही जी कुढ़ जाता है, जिनके शरीरकी गन्धसे जी नाक भौं सिकुड़ जाती है, मन घृणासे भर उठता है, वे ही लोग गणनायक कर्मवीरोंके पासवान और प्यारे हुआ करते हैं!

यही सब तो समझमें आया, पर एक बात समझमें नहीं आती। जिस मूर्त्तिको लोग वैकुण्ठविलासिनीकी पार्थिव प्रतिमूर्त्ति मानकर पूजते हैं, उसके लिये ब्रह्माण्ड-भरके सब पशुपक्षियोंको छोड़कर उल्लूकी ही सवारी क्यों ठीक की गयी, यह बात तो किसी तरह बुद्धिमें ही नहीं आती। मनुष्यने जितनी तरहकी देवमूर्त्तियोंकी कल्पना की है, उन सबमें लक्ष्मीकी मूर्त्ति ही सबसे अधिक मनोमोहिनी, और मनः-प्राण-संजीवनी है—वह मानों आशा और आनन्दका मनोहर झरना है। ऐसी मनोहर मूर्त्तिके पैरोंके नीचे भला एक बदसूरत उल्लूको क्यों बैठाया

* विघ्नकारक गणोंके ईश्वर अथवा किसी दलके मुखिया। The leader of a party

गया ? जिनके पैरोंकी धूल सिरपर रखकर देवता लोग भी आनन्दित हो जाते हैं, देवतुल्य ऋषिगण भी कृतार्थ हो जाते हैं, संसार सुख-सम्पदका सुमधुर हँसीसे सन्ध्याकालिक कुसुम-काननकी कमनीय कान्ति धारण कर लेता है, जिनकी एक नज़रसे घरों धनधान्यसे परिपूर्ण हो जाती है, जंगल भी नगर बन जाते हैं, राखसे सोना पैदा होने लगता है, उन्हीं सौन्दर्य समुज्ज्वल सुचित्रित प्रतिकृतिके पैरोंके पास उल्लू सरीखे भयङ्कर शोली और बेडौल सूरतवाले पक्षीको भला किसने बैठाया ?

प्रश्न होनेसे ही उसका उत्तर भी पाया जाता है। इस प्रश्न-का भी अवश्य ही कुछ न कुछ उत्तर होना चाहिये। परन्तु जो लोग संसारमें सौभाग्य-दायिनीके उपासक समझे जाते हैं, उनकी बुद्धि बड़ी विचित्र होती है। कहीं कहीं तो एकदम बुद्धिका अजीर्ण ही देखनेमें आता है। इसी लिये हमने चित्तको प्रबोध देनेके लिये विमल बुद्धिवाले बाबा ज्ञानानन्दके उपदेशके अनुसार इसका एक उत्तर निश्चित किया है। यह उत्तर लक्ष्मीके लाड़लोंके मन भायेगा या नहीं, सो नहीं कह सकते। हमें तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि चूँकि उल्लू दिवाभीत* है अर्थात् उँजा-लेसे डरनेवाला और अन्धकारको चाहनेवाला है, इसी लिये वह धन-धान्य-विलासिनी सौभाग्य-लक्ष्मीका प्यारा वाहन बनाया गया है। संसारी मनुष्य प्रकृत तत्त्वका मर्म न समझ सकनेके

*संस्कृतके [illegible] 'दिवाभीत' शब्दके दो मानी लिखे हैं—पहला 'उल्लू' और दूसरा 'चोर'।

कारण पृथ्वीकी धूल-समान-धन-सम्पत्तिको ही लक्ष्मीका प्रसाद मानते और उसके लिये जान देते हैं। साथ ही यह बात भी प्रसिद्ध है, कि सांसारिक धन-सम्पत्तिका आनाजाना अंधेरेमें ही होता है। वह नारियलके भीतर रहनेवाले जलकी तरह कब कैसे आ जाती है, यह कोई नहीं देख पाता। देखनेके लिये बहुतेरे लोग सोना हराम कर, कोजागरी-पूर्णिमाको रात-रातभर जागे रहते हैं, तो भी नहीं देख पाते। पर जब वह चुपचाप आकर घरमें बैठ जाती है, तब सब लोग उसे देखते हैं और शहदके लालची भौंरोंकी तरह उसके चारों ओर भुनभुनाते हुए मँड़राने लगते हैं। इधर जो लोग ब्रह्माके चारों वेद विष्णुकी पालनी प्रीति, महादेवका आशुतोष भाव, पवनकी द्रुतगति, यमकी संहारकारिणी मूर्त्ति, इन्द्रका वज्र और शक्तिकी तेजोराशि भूलकर केवल सौभाग्य-सम्पद्की ही आराधना करते हैं,—धर्म रहे या चूल्हे-भाँड़में जाये; दया हो या निर्दयता हो; ज्ञान, मान और पौरुषी प्रतिष्ठा रहे या धूलमें मिल जाये, तो भी हम तो धनकी ही आराधना करेंगे—ऐसा ही जिनका स्थिर सङ्कल्प है, उनका भी आवागमन रातमें ही होता है वे लोग भी दिवाभीत आलोक-सङ्कुचित और अन्धकार-प्रिय होते हैं। वे लोग कैसे क्या करते हैं, यह किसीकी समझमें नहीं आता; वे किस तरह छोटेसे तिनकेसे बढ़ते-बढ़ते ताड़की तरह बढ़ जाते हैं, इसका मर्म कोई नहीं जानता। जहां न्यायकी ज्योति या नीतिकी रोशनी जगमगाती रहती है, वहांसे वे या तो दुम दबाकर भाग जाते हैं या

उल्लूकी तरह आँखें बन्द कर लेते हैं, जिसमें उनकी निष्ठामें बट्टा न लगे। जहाँ कातर मनुष्योंके करुणामय विलाप और शोकके दुःखकी धारा बहती है, जहाँ विषाद और वेदनाके कलेजेको दो टुकड़े कर देनेवाले दृश्य दिखाई देते हैं, वहाँ भी वे उल्लू हो बन जाते हैं। ज्ञान भले ही चली जाये, पर वे आँखें उठाकर उस ओर कभी न देखेंगे, क्योंकि सम्भव है, कि इससे उनकी साधनाका फल नष्ट हो जाये! उल्लूमें इन्हीं लोगोंकी तरह गुण भरे हैं, इसी लिये यह लक्ष्मीका प्यारा वाहन माना गया है।

इसके सिवा उल्लूमें और भी एक अपूर्व गुण है। उसके मुँहसे सिवा 'नीम' के और कोई शब्द ही नहीं निकलता। सिवा इसके उसने और कोई ध्वनि सीखी नहीं। उसकी टुर बातका शुरू और आख़ीर 'नीम' है। 'नीम' कैसी कड़वी चीज है—यह सारी दुनिया जानती है। यह भी इसीलिये कड़वी बातें सुनाता और 'नीम' का नाम लिया करता है। जो लोग रोशनीसे डरकर अँधेरेमें छिपे हुए, केवल अन्धेरेमें ही सम्पत्तिकी आराधना करते हैं, इनलोगोंकी सारी आशा, सारी आकांक्षा और समस्त उन्नतियोंका अन्तिम परिणाम 'नीम' है अर्थात् नीमकी तरह कड़वा है। तुमने अनाथ और असहाय बच्चोंके मुँहका कौर और उनका धन छीनकर अपनी कुटियामें ही सारे सुखके सामान इकट्ठे कर लिये हैं, इसका परिणाम भी 'नीम' ही समझो। अथवा तुमने अगणित सहस्र मनुष्योंके दुःखसन्तप्त निःश्वासमें पाल उठाये हुए अपनी बहादुरीकी नैयाको चन्द्रलोक

पर लगा रखा होगा, तो तुम्हारे इस वैभवका भी परिणाम 'नीम' ही होगा। किसीने अन्धेकी तरह तुम्हारा विश्वासकर अपना सब कुछ तुम्हारे हाथोंमें सौंप दिया और तुमने अंधेरेमें छिप छिपकर उसे खूब चकमें दिये और अब फूलोंकी सेजपर सो रहे हो; पर इस ऐशका नतीजा भी 'नीम' ही होगा। अथवा अगर तुमने अपने आश्रय देनेवालेकी देहमें जोंककी तरह चिपटकर उसका सारा खून पी पीकर अपनी तोंद फुलायी होगी, तो इसका नतीजा भी 'नीम' ही समझो। तुम सचको झूठ और झूठको सच बनाकर सम्पदुके स्वर्ण पर्यङ्कपर शयन कर रहे हो, पर सच जानो, इस सम्पदुका परिणाम भी 'नीम' है। अथवा अगर तुम द्वारपर आये हुए दुःखियों और पड़ौसमें रहनेवाले ग़रीब पड़ोसियोंकी सर्द आहों और फ़र्यादोंकी तरफ़से कान बहरे किये हुए आप हलवा-पूरी या कलिया कोफ़्ता आदि मज़ेदार खाने खा-खाकर मोटे होते चले जायंगे, तो इस लोभका परिणाम भी 'नीम' होगा। अगर तुम दुध मुंहे बच्चोंको बुरी राह चलाकर या बातोंके फेरमें लाकर बुरी आदतें सिखलाकर आप उनके मालमतेके मालिक बन जाओगे, तो तुम्हारे इस ऐश्वर्यका परिणाम भी 'नीम' होगा। और अगर तुमने बदनामीका टीका सिरपर लगाकर यशके बदले प्रभुत्व पाया होगा, तो इस प्रभुत्वका परिणाम भी 'नीम' ही होगा। तुम विचारके नामपर ठगी कर करके राक्षसोंके चाचा बनना चाहोगे, तो इसका भी परिणाम 'नीम' हैं। अथवा यदि समृद्धिके सुशीतल स्पर्श-सुखके

लिये महत्त्व और मनुष्यत्वको तिलाञ्जलि देकर कभी स्यार और कभी कुत्तेकी चाल चलोगे, कभी सांपकी तरह फन फैलाओगे और कभी दुड़गिलकी तरह मुंह बढ़ाओगे, जिसे पाओगे, उसे ही कच्चा खा जाओगे, जो तुम्हारे पास आये, उसे ही जलाया करोगे जिसे नींदमें ग़ाफ़िल देखोगे, उसीपर चीलकी तरह झपटा मारोगे, तो तुम्हारी इस सारी आशा और उद्यमका परिणाम भी 'नीम' ही होगा। इस हास्य और रसोल्लासका अन्त 'नीम' है इस अजस्र वाहिनी आमोदलहरीको अन्तिम गति 'नीम' है। यह जो तुम्हारे चारों ओर दुर्जनों मुसाहब घेरे रहते हैं और तुम्हारे कानोंमें खुशामद भरी मीठी-मीठी बातें पहुंचाया करते हैं, इसका भी परिणाम 'नीम' है और यह जो अनुग्रह–प्रार्थियोंकी डरसे घबरायी हुई नजरें रह रहकर तुम्हारी तरफ हसरतकी निगाहोंसे देखती और फिर तुरत ही न जाने किस भय या सङ्कोचसे नीची हो जाती हैं और इस तरह तुम्हारे हृदयमें सौभाग्यका गर्व पैदा कर देती हैं, इसका भी परिणाम 'नीम' है। इसीलिये सम्पदकी छायामें पला हुआ उल्लू 'नीम नीम' कहकर सदा मनुष्यको सावधान करता रहता है और शायद तत्त्वदर्शिनी कल्पनाने भी यही बात बतलानेके लिए उलूकी इतनी कदर की है। परन्तु मनुष्य क्या कभी सावधान होनेवाला है? रावणकी सोनेकी लङ्का राख हो गयी, कौरव पाण्डवोंके हास्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ मिट्टीमें मिल गये, मुग़लोंका तख्ते ताऊस (मयूर सिंहासन) मराठोंका प्रबल पराक्रम, तथा सिराजुद्दौला, मीर जाफ़र और राजवल्लभ

करनेके लिये "व्युत्पत्तिवाद" नामका एक नया शब्दकोष तैयार किया है, जिसका कुछ थोड़ासा नमूना उन्होंने हमारे पास अवलोकनार्थ भेजा है। उसोमेंसे कुछ थोड़ेसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति, अर्थ और तात्पर्य हम नीचे प्रकाशित करते हैं। यदि पाठकोंको यह नमूना पसन्द आया, तो हमलोग कोशिश करके इसे भी काशीकी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित करा देंगे।

शब्दकोपका नमूना।

नाटक—(सं० नट् नर्तने, हिंसायाञ्च। प्रेरणे णिच्। नाटयति-चित्तं भ्रामयति;—वृद्धान् तरुणान्, बालकांश्च प्रमत्तवत् नर्त्तयति;—यद्वा पठनपाठनादिकं छात्रधर्मं, लज्जानम्रतादिकं कौमारगुणं, पूताचारप्रमुखं शूरसेव्यसद्भावसमूहं च हिनस्तीति नाटकम्। हिंसार्थे चौरादिकोऽयं धातुः।)

तात्पर्य—जो चित्तको नचाये, चलायमान करे, वही नाटक है। जो वृद्ध, युवा और बालक सबको पगलेकी तरह नचाये, अथवा पठन पाठन आदि छात्रधर्म, लज्जा और नम्रता आदि कौमार गुण और पवित्र आचार आदि सज्जनोंके सेवन करने योग्य सद्भावोंकी हत्या कर डाले। उसका नाम नाटक है। हिंसाके अर्थमें होनेके कारण ही यह चुरादिगणीय धातु माना जाता है।

इसी धातुसे संस्कृतके नट, नटी, नर्त्तन और हिन्दीके नट, नटी, नाटक, नाच, नर्त्तकी आदि शब्द बने हैं। भाषातत्त्वविद्

जैसे उधर उसके खेतमें अन्न नहीं पैदा होता था, वैसे ही उसके लिखे ग्रन्थोंसे भी पाठकोंका हृदय प्रसन्न नहीं होता। तथापि वह लिखता चला जाता है। दुध मुंहे बच्चे भी दूधके दांत टूटे विना हो, महिरावणके पुत्र अहिरावणकी तरह ग्रन्थकारोंके अखाड़ेमें आ कूदते हैं। जो वर्णमालाके एक भी अक्षरका ठीक ठीक उच्चारण नहीं कर पाते, जो बोझा ढोते ढोते अपने कन्धेकी चमड़ी छिलवा चुके हैं, वे भी आजकल कोई सिरधरू न होनेके कारण, हिन्दी भाषाके ग्रन्थकार बननेके लिये खमठोंके मैदानमें खड़े हैं। कहनेका मतलब यह, कि आजकल हिन्दीमें जैसी ग्रन्थोंकी बाढ़ आयी है, वैसी ही ग्रन्थकारोंकी आन्धी वह गयी है। परन्तु बड़े दुःखकी बात है, कि 'हिन्दी शब्द सागर' किसी कदर अच्छी चीज होने पर भी अभी तक कोई बढ़िया सा शब्द कोष हिन्दीमें नहीं निकला, जिससे ग्रन्थकारोंको लाभ पहुँचे। नित्य नये नये शब्द पढ़े जा रहे हैं,, पुराने शब्दोंके नये नये अर्थ जारी हो रहे हैं, उर्दू, फ़ारसी, अङ्गरेजी आदि भाषाओंके बहुतेरे शब्द हिन्दीमें घुसते चले जा रहे हैं, पर कोई अच्छा सा शब्दकोष न रहनेके कारण विद्यार्थियोंको बहुतसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति या भाव नहीं मालूम होने पाता।

इसी अभावको दूर करनेके लिये हमलोगोंने अपने अभिन्न हृदय मित्र, अद्वितीय शब्द-शास्त्र-विशारद (१) श्रीमान् ज्ञानानन्द जी सरस्वतीको बहुत आग्रह करके कहा, कि आप एक शब्दकोष तैयार कीजिये। उन्होंने हम लोगोंके इसी अनुरोधकी रक्षा

करनेके लिये "व्युत्पत्तिवाद" नामका एक नया शब्दकोष तैयार किया है, जिसका कुछ थोड़ासा नमूना उन्होंने हमारे पास अवलोकनार्थ भेजा है। उसीमेंसे कुछ थोड़ेसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति, अर्थ और तात्पर्य हम नीचे प्रकाशित करते हैं। यदि पाठकोंको यह नमूना पसन्द आया, तो हमलोग कोशिश करके इसे भी काशीकी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित करा देंगे।

शब्दकोषका नमूना।

नाटक—(सं० नट् नर्त्तने, हिंसायाञ्च। प्रेरणे णिच्। नाटयति-चित्तं भ्रामयति;—वृद्धान् तरुणान्, बालकांश्च प्रमत्तवत् नर्त्तयति;—यद्वा पठनपाठनादिकं छात्रधर्मं, लज्जानम्रतादिकं कौमारगुणं, पूताचारप्रमुखं शूरसेव्यसद्भावसमूहं च हिनस्तीति नाटकम्। हिंसार्थे चौरादिकोऽयं धातुः।)

तात्पर्य—जो चित्तको नचाये, चलायमान करे, वही नाटक है। जो वृद्ध, युवा और बालक सबको पगलेकी तरह नचाये, अथवा पठन पाठन आदि छात्रधर्म, लज्जा और नम्रता आदि कौमार गुण और पवित्र आचार आदि सज्जनोंके सेवन करने योग्य सद्भावोंकी हत्या कर डाले। उसका नाम नाटक है। हिंसाके अर्थमें होनेके कारण ही यह चुरादिगणीय धातु माना जाता है।

इसी धातुसे संस्कृतके नट, नटी, नर्त्तन और हिन्दीके नट, नटी, नाटक, नाच, नर्त्तकी आदि शब्द बने हैं। भाषातत्त्वविद्

पण्डितवर मैक्समूलर कहते हैं, कि अँगरेज़ीके 'नॉट' और 'नॉटी' * शब्द भी इसी धातुसे निकले हैं। आज कलके कुछ लोग कहते हैं, कि 'नाटक' शब्द संस्कृतका है ही नहीं—यह ख़ास बँगलाका शब्द है। बँगलामें 'टक' का अर्थ होता है 'मीठा'। इसलिये जो 'ना' 'टक' हो अर्थात् 'मीठा नहीं हो,' उसीका नाम नाटक है। संस्कृत और अँगरेज़ीके कुछ नाटक इस संज्ञामें नहीं आयेंगे; पर आज कलके "शीरीं फ़रहाद" "लैला मजनूँ" "शरीफ़ बदमाश" वग़ैरह विचित्र-विचित्र नामोंवाले नाटक शायद इसी गिनतीमें आ जायेंगे। लोग तो आजकल ऐसे-ऐसे नाटकोंकी ओर ऐसे लपक पड़े हैं, कि कुछ दिनोंमें "अभिज्ञान शाकुन्तल" में जो मिठास है, उसका स्वाद ही कोई न लेना चाहेगा।"

वक्ता—वक्‌ अपभाषणे, प्रलापकथने च। कर्त्तरि तृच् प्रत्ययः।

जो लोग सभाओंमें वक्तृता झाड़ते हैं, वे ही लोग आजकल वक्ता कहे जाते हैं। परन्तु मनुष्य जातिके भाव-विह्वल प्राण जिन्हें सच्चे वक्ता मानते हैं, वे और ही श्रेणीके मनुष्य हैं। वे लोग जगत्‌के नायक, प्रकृत मनुष्यत्वके परिचायक और मानव-समाजके परिचालक हैं। वे लोग किसी अंशमें दार्शनिक, किसी अंशमें कवि, भावुक, भावोंके स्रष्टा और सरल, तरल, कठोर, कोमल, गंभीर और मधुर आदि सभी तरहकी भाषाएँ

* Naught i. e. bad, worthless, of no value or account (बुरा, व्यर्थ, मूल्यहीन) Naughty—i. e. Corrupt (दुश्चरित्र)

धारावाहिक रूपसे बोल सकते हैं, और भाव उनके आगे हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। उनके मुँहसे निकली हुई बात, सर्वोत्तम कविताकी भाँति नवों रसोंसे भरी हुई और सब प्रकारके रस बरसानेवाली होती है। वह कभी तो ज्वालामुखी पर्वतकी तरह आग बरसाकर सारे समाजके हृदयको प्रज्वलित कर जलती है और कभी वीणा या सारङ्गीकी तरह मीठी मीठी तानें सुनाकर कानोंमें अमृतसा बरसा देती है। इसीलिये उनको हँसते देख, मनुष्य हँसते और रोते देख, रोते हैं—उनके प्राणोंके साथ अपने प्राणोंको जोड़कर कभी तो भक्तिकी उमङ्गसे अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं और कभी वीभत्सकी अन्तिम सीमापर पहुंचकर घृणासे जर्जरित हो जाते हैं। इसीलिये मनुष्य उन्हें कर्त्ता मानकर पूजते और उनके हाथोंमें अपने हृदय, मत और प्राण समर्पण कर, अपने अस्तित्व तकको मिटानेके लिये कमर कसकर तैयार हो जाते हैं।

नेपोलियन बोनापार्ट जिस समय लड़ाईके मैदानमें अपने सिपाहियोंके सामने ललकारकर खड़ा हो जाता था, उस समय उसका सेना-समुद्र तूफानसे खलबलाये हुए महासागरकी भाँति खलबला उठता था और उसकी, थोड़े शब्दोंमें कही हुई बिजलीके समान कड़कती और फड़कती हुई भाषा सुनकर बड़े ही डरपोक, नामर्द और कायरोंके प्राणोंमें भी न जाने कैसी एक अलौकिक शक्ति भर जाती थी, कि वे मरोंमें मिट्टियाँ भी शेरकी तरह गरजती हुई दुश्मनोंपर टूट पड़तीं और विजयकी पताका

फहरा देती थीं। ब्रिटिश पार्लामेन्टके प्रसिद्ध सभासद् सुविख्यात वक्ता फ़ाक्स (Fax) बोनापार्टके बड़े भारी भक्त थे। उन्होंने नेपोलियनको संसारका असामान्य वक्ता कहकर उसका सम्मान किया है। वक्ताओंके सिरमौर वर्क (Burke) और शेरिडनने (Sheridan) जिस समय वारन-हेस्टिंग्ज़की अत्याचार-राशिका वर्णन करनेके लिये हाउस-आफ़-लार्ड्समें वक्तृता दी थी, उस समयका ऐसा वर्णन इतिहासमें पाया जाता है, कि उस वक्तृताको सुनकर कितने ही सुशिक्षित, सुधीर-बुद्धि और कठोर चित्तवाले कर्मी पुरुष भी औरतोंकी तरह रोने लगे थे और कितनी ही सुशिक्षिता रमणियाँ सिसक-सिसककर रोती हुई मूर्च्छित हो गयी थी। अमेरिकाके पादरियोंमें वीचरस्टो (Beecher Stowe) बड़े मशहूर वक्ता थे; पर उन्होंने भी जब पहले-पहल इंग्लैण्ड आकर ग्लैडस्टनकी वक्तृता सुनी तब मुक्तकण्ठसे कहा, कि अँगरेज़ी भाषामें इतनी मिठास है और वह इस तरह सङ्गीतसे भी बढ़कर रसीली है, यह मैं पहले नहीं जानता था। ग्लैडस्टनके प्रिय मित्र जॉन ब्राइटकी वक्तृता सुनकर उनके राजनीतिक विपक्षी भी अपना पुराना मत और विश्वास पलटकर उन्हींके पक्षमें हो जाते थे और उनके ज़हरीले साँपकेसे वैरी भी उनके गहरे दोस्त बन जाते थे। अमेरिकाके अद्वितीय वक्ता वान्डेल फ़िलिप (Wandel Philip) जिस दिन अपनी नयी जवानीकी उमङ्गमें गुलामीकी प्रथाके विरुद्ध और 'भयङ्कर' वाग्मी डेनियल वेब्स्टरके (Daniel Wedsfer)

ख़िलाफ़ खड़े होकर वक्तृता दी थी। उस समय देशके धर्माचार्य और बड़े गम्भीर वक्ता महामति चैनिङ्ग भी उस सभामें मौजूद थे। वे बहुत बूढ़े और कमज़ोर हो गये थे, तो भी उस सभामें चले आये थे। उन्होंने उस नौजवानकी वक्तृता सुन, आनन्दसे गद्‌गदकण्ठ हो कहा,—"ईश्वरकी महीयसी शक्ति मनुष्यके कण्ठमें आकर इस तरह विचित्र भावसे प्रवाहित हो सकती है, इसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। हमारे इस देशमें भी केशवचन्द्र, दयानन्द आदि समाज-सुधारक और लोकमान्य तिलक आदि राजनीतिक वक्ता बड़ी प्रसिद्धि लाभ कर चुके हैं। कहते हैं, कि महात्मा गान्धीकी वक्तृता सुननेवालोंपर भी ऐसा ही प्रभाव पड़ता है और श्रोताओंको ठीक ऐसा विदित होने लगता है, कि इस महात्माके मुखसे हम ईश्वरका सन्देश श्रवण कर रहे हैं। महात्माजीके दाहिने हाथ, बँगालके गौरव, प्रसिद्ध देशबन्धु चित्तरञ्जनदास अपनी वाग्मिताके लिये सारे भारतमें प्रसिद्ध हैं। उनकोसी मोटी आयवाला कोई बैरिस्टर इस समय भारतमें नहीं है। आज तो वे सर्व-सङ्ग परित्यागी होकर, देशमाताके नामपर जेलकी चहारदिवारीके अन्दर बन्द हैं, पर जिन्होंने उन्हें बैरिस्टरके रूपमें देखा है, वे भली भांति जानते हैं, कि उनकी वाणीमें आत्म-पक्ष-समर्थनकी कितनी बड़ी शक्ति थी!

परन्तु हाय, वीणापाणिके प्राण-सर्वस्व 'पाणिनि' के 'वच धातु' का अलोक-साधारण प्रसाद-पुष्ट 'वक्ता' आजकल अप-

भाषणके अर्थमें प्रयुक्त होनेवाले 'वक्' धातु के अन्दर आ गया है। कहते हैं, कि जिसके विद्या नहीं, बुद्धि नहीं, और हृदयमें कवित्व तथा उद्दीपन तो दरकिनार, किसी सामान्य भावका भी प्रवेश नहीं वैसे 'अरबी न फ़ारसी भैयाजी बनारसी' भी आजकल वक्ता बन गये हैं।

क्या वकझक, बकवाद, बक-बक बकना, आदि शब्द इसी 'वक्' धातुसे नहीं निकले हैं? आजकलके बहुतसे वक्ता क्या कोरा बकवाद ही नहीं करते? बहुतसे व्याकरणके पण्डित तो वर्करा अर्थात् बकरा आदि शब्दोंको भी इसी धातुसे निकला हुआ मानते हैं; पर हमने यहां अशिष्ट प्रयोग समझकर वैसे शब्दोंके उदाहरण नहीं दिये।

स्त्री—स्तु स्तवने, कर्मणि ड्रट्। टित्वानङीप्। अर्थ—स्तवनीया अर्थात् जो गुरु, ज्ञानदाता अथवा इष्ट-देवताकी तरह सदा भक्तिके साथ पूजने योग्य हो।

इस शब्दके इसी अर्थके लिहाजसे आजकलके लोग, जीवनका आशा उद्यम, हर्ष विषाद, धर्म-कर्म, ध्यान-ज्ञान, लिखना-पढ़ना, सबकुछ स्त्रीके मक्खनसे मुलायम चरण-कमलोंपर न्योछावर कर खरीदे हुए गुलामकी तरह, सदा उनकी सेवा किया करते हैं, पालतू बिल्लीकी तरह सदा उनका मुंह जोहते रहते हैं अथवा भगवानमें लौ लगाये हुए साधककी भांति उनके मुखड़ेपर अठखेलियां करनेवाली मधुर मुस्कानको ही अपने जीवनका सर्वस्व समझ उनकी स्तुति करनाही अपना सबसे बड़ा कर्त्तव्य समझते हैं।

यह स्तुति कहीं गीतके रूपमें, कहीं ग्रन्थवद्ध प्रलापके रूपमें और युरोपमें तो कहीं कहीं स्तुतिभाजन सुन्दरीकी खिड़कीके पास बाजा बजाकर की जाती हैं। *

कुलाचार परायण तान्त्रिकों और प्रत्यक्षवादके प्रचारक अगस्त्य, कोमृत आदि वैज्ञानिकोंने जो स्त्रीकी उपासनाकोही सब सिद्धियोंका सीधा पथ बतलाया है, उसका कारण यही है। वर्तमान समयमें अनेक बुद्धिमान् लेखकगण, युगधर्मका उपदेश देनेके लिये, पुस्तकके आरम्भमें मज़ाकके तौरपर, सबसे पहले स्त्रीका नाम लिखा करते हैं। इसका कारण भी शायद यही अर्थ है।

वितर्क—पाणिनिके, प्रधान शिष्योंमें अन्यतम, महामहोपाध्याय श्रीमान् उज्ज्वल दत्तने, अपने लिखे हुए उणादि वृत्ति नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थमें 'स्त्री' शब्दकी व्युत्पत्ति कुछ और ही ढंगसे लिखी है। उनकी यह पद्धति शास्त्र-सङ्गत और युक्ति-सिद्ध है, कि नहीं, यह देखना, बहुत ही ज़रूरी है। उन्होंने शाकटायनके उणादि सूत्रसे सूत्र उद्धृत कर वृत्ति द्वारा उसकी विशद व्याख्या की है। जैसेः—

"स्त्यायतेड्ट्। ४।१६५।

"स्त्यै शब्द-संघातयोः। अस्मात् ड्रट्। डित्वात् टिलोपः। टित्वात्। ङीप्—स्त्री।"

* Serenade—Music Performed by a gentleman under a lady's window at night.

उज्ज्वलदत्तके मतसे "स्त्यै" धातुके दो अर्थ हैं। एक तो 'शब्द' और दूसरा 'संघात।' हमारे हिन्दी पढ़नेवाले तो इस 'संघात' शब्दको सुनते ही किसी सांघातिक भावकी कल्पना कर डरसे काँप उठेंगे; पर यहाँ इस शब्दके दो विशेष अर्थ हैं और वे दोनों ही सहृदयोंके लिये आनन्ददायक हैं। 'संघात' शब्दका एक अर्थ है श्लोकरचना करना और दूसरा है—किसी श्लोकका विषय होना। वैयाकरणोंमें अग्रगण्य भारत विख्यात भट्टोजि दीक्षितने भी अपनी सिद्धान्तकौमुदीमें यही अर्थ लिखा है।*

इससे यह मतलब निकलता है, कि जो ज़रा ज्यादा बोल सकें अर्थात् जिनकी ज़बानकी घोड़ी बेलगाम सरपट दौड़ करती हो; वे ही शास्त्रके अनुसार सुलक्षणा स्त्री हैं। अथवा जो दूसरोंके श्लोक अर्थात् स्तुतिका विषय बनें, वही व्याकरणके अनुसार स्त्री है। व्युत्पत्तिवादको इस दूसरे अर्थपर कोई आपत्ति नहीं है; क्यों कि व्युत्पत्तिवाद जिन्हें स्तुति करने योग्य' कहता है, उन्हें ही उज्ज्व-

*श्लोकृ संघाते। संघातो ग्रन्थः। स चेह ग्रथ्यमानस्य व्यापारो ग्रन्थितुर्वा। आद्ये ऽकर्मको द्वितीये सकर्मकः। इति तत्त्वबोधिनी टीकाऽलङ्कृत सिद्धान्त कौमुद्याम्।

संघात शब्दके दूसरे अर्थके अनुसार अर्थात् श्लोकरचना या ग्रन्थरचनाके अर्थमें लेखिकाओंकी भी गिनती आ जाती है; परन्तु और लोग जिसके गुण गायें, वह बड़ी है या जो अपनी प्रशंसा आप करें, वह बड़ी है, इसका विचार आप ही लोग कर लें। लिखना-पढ़ना स्त्रियोंका एक लक्षण है, यह उस धातुके अर्थसे प्रकट होनेपर भी प्राचीन वैयाकरणोंको शायद यह बात नहीं सूझी।

लक्त और भट्टोजि दीक्षित भी श्लोक अर्थात् प्रशंसाका विषय मानते हैं। इसी लिये होमरकी हेलेना, व्यासकी द्रौपदी, कालिदासकी शकुन्तला, श्रीहर्षकी रत्नावली ये सबकी सब उत्तम लक्षणोंवाली स्त्री हैं और जो इस तरह लाखों श्लोकों द्वारा कीर्तित नहीं हो सकी हैं अर्थात् जिनके जूड़े बाँधने या खोलनेकी कहानी सुनानेके लिये वेणी संहारकी तरह नाटक नहीं लिखा जाता, जिनकी अंगूठीका प्रसङ्ग लेकर अभिज्ञान-शाकुन्तलकी तरह अलौकिक पदार्थ, कवि-कल्पनाका चरम सौन्दर्य प्रदर्शित कर, मनुष्यके हृदयको विस्मय रसमें नहीं डुबो देता, वे भी यदि अपने स्तुति करवा सकें, तो वे निःसन्देह स्त्री हैं। इसी लिये हम कहते हैं, कि पुराने व्याकरणोंसे व्युत्पत्तिवादकी यह बात मिल जाती है। और, जिनकी इस जीव-जगतमें किसीने प्रशंसा नहीं की, अथवा जिनकी बिगड़ी हुई सूरत, गुस्साभरी आँखें और खट्टासा मुँह देखकर हड्डी हड्डीमें आग सुलग उठती है, वे और और लक्षणोंसे अबला होनेपर भी कभी स्त्री कहलाने योग्य नहीं हो सकतीं।

अस्तु, उज्ज्वलदत्तने जो पहला अर्थ लिखा है, उसपर व्युत्पत्तिवादकी आपत्ति है, क्योंकि यदि शब्द करना ही स्त्रीत्वकी पहचान हो, तो यह लक्षण अव्याप्ति और अतिव्याप्ति इन दोनोंही दोषोंसे भरा हुआ है, अतएव उपेक्षाके योग्य है। यह बात सुननेमें ही भद्दी मालूम होती है और प्रकृति तत्त्वके तो एकदम विरुद्ध है। इस संसारमें ढोल, दमामा भेरी, तुरही झाँझ, मृदङ्ग, वीणा

वंशी, सारंगी, सितार, इसराज, सरोद, हार्मोनियम, बेला आदि तरह तरहके बाजे ऐसे हैं, जिनका गुण ही शब्द करना है। आकाशमें जैसा मेघ गरजता है या बिजली कड़कती है, वैसा शब्द भला कितनी स्त्रियां मिलकर कर सकती हैं? फिर स्त्रीको ही वैयाकरणोंने शब्दकारिणी क्यों बतलाया? जड़ जगत्में जैसे तरह तरहके बाजे और मेघ बिजली आदि शब्द करनेवाले पदार्थ हैं, वैसे ही जीव जगत्में कौए, कोयल, मेढ़क और भौंरें भी तो हैं? यह भी संसारमें अपने शब्द-गुणसे ही प्रसिद्ध हैं; क्योंकि कवियोंने इन्हींको लेकर न जाने कितनी स्याही खर्च कर डाली है, वे कितना रोये चिल्लाये हैं। प्रकृति विज्ञानके समालोचकोंने भो इनकी खूब ख़बर ली है। यदि उज्ज्वलदत्तकी यह बात ठीक है, तो फिर हम इन सबको किस गिनतीमें रखें? और भी देखिये,—अबलाओंमें जो मृदुहासिनी, मृदुभाषिणी हैं, जो शान्तिमयी चन्द्रिकाकी तरह स्वप्न विलासिनी हैं, जिनके मनकी बात मनमें ही रहती है, कभी मुंहपर नहीं आती; जो क्या मानमें और क्या प्रीति, स्नेह या ममताके दानमें, क्या कलहमें, क्या विरहमें, कभी मुंहसे बड़ बड़ करके सोये हुए पुरुषकी नींदमें बाधा नहीं डालतीं; जो कवि-कल्पना द्वारा गजेन्द्रगामिनी होनेपर भी छायाकी तरह चुपचाप चलती हैं और जो केयूर, वलय, किङ्किणी, कङ्कण और नूपुर आदि झनकार पैदा करनेवाले गहनोंको शरीरपर धारण करती हुई भी फूलोंके भारसे झुकी हुई लताकी तरह लचककर चलतीं

और गहनोंको पजने नहीं देतीं, उन्हें क्या हम स्त्रियोंकी श्रेणीसे बाहर कर दें ? वे कम बोलती हैं, शोर, हल्ला, गुल्ला पसन्द नहीं करतीं, इसी लिये क्या हम उन्हें स्त्री जातिमें समासन पाने योग्य न मानेंगे। ऐसी छायामयी कल्पना कुछ व्युत्पत्तिवादकी कल्पना नहीं है, प्राचीन शास्त्रोंमें भी ऐसी बहुत सी ललनाओंका वर्णन मिलता है। 'साहित्य दर्पण' में भी लिखा है :—

"नोद्दामं हसति क्षणात् कलयते ह्रीयन्त्रणां कामपि।
किञ्चिद्भावगभीरवक्रिमलवस्पृष्टं मनाग् भाषते ॥"

अर्थात्—उसकी हंसी खिलखिलाकर नहीं होती, वह सदा सिमटी हुई रहती है। वह बहुत बातें नहीं करती—हां, कभी कभी थोड़ेसे मीठे शब्दोंमें गम्भीर भावयुक्त और मधुर श्लेषसे भरी हुई बातें कहती है।"

इससे तो यही सिद्धान्त निकलता है, कि उज्ज्वलदत्तने जो सूत्र लिखा है और उसपर अपनी ओरसे जो वृत्ति लिखी है, वह एकदम असत्य, अमूलक और उपेक्षा करने योग्य है। कारण, यदि इस प्रकारके मृदु-मधुर अव्यक्त गुञ्जनको भी, व्याकरणकी टांग तोड़नेके लिये, कौए और मेढ़ककी बोलियोंकी तरह 'शब्द' की श्रेणीमें ले आयेंगे, तब तो संज्ञा शास्त्रकी मर्यादा ही मिट्टीमें मिल जायगी।

डाक्तर—डक् छेदने, भेदने, क्रन्तने, विलुण्ठने च। तरण् प्रत्ययः। णकार इत् हुआ, इसलिये उपधा अकारके स्थानमें आकार हुआ।

डाक, डाकू, डकैती, डाकिनी आदि शब्द भी इसी धातुमें भिन्न भिन्न प्रत्ययोंके लगानेसे बने हैं। हिन्दीवाले अंगरेजोंके उच्चारणकी नकल करते हुए 'डाकृर' भी लिखते हैं, पर ऐसा लिखना अशुद्ध है। शुद्ध शब्द 'डाक्तर' ही है। बहुतसे लोग कहेंगे, कि डाक्तर, डाकू और डाकिनी, ये एक ही धातुसे निकले हुए होनेपर भी अर्थमें इतने आकाश पातालका भेद क्यों है? पर व्याकरणशास्त्र किसीका मुंह नहीं जोहता। विशेषतः, जो लोग जानते हैं, कि Passion (काम) और Patience (धैर्य) ये दोनों शब्द एक ही धातुसे निकले हैं और विद्या-वाचक 'पण्डा' तथा 'तीर्थके पुरोहित वाला' 'पण्डा' शब्द, दोनों एक ही 'पण्ड' धातुसे निकले हैं, वे कभी ऐसे अचरजको दिलमें जगह नहीं दे सकते।

सभ्य—सभ्* सौख्ये श्लाघायाम्, संवरणे, संघर्षेच। कर्त्तरि यत्।

सभ् धातुके चार अर्थ हैं—सौख्य, श्लाघा अर्थात् प्रशंसा, संवरण और संघर्ष। सौख्य शब्दका प्रचलित अर्थ है सुख। पर आजकल इसका अर्थ, सुख और स्वार्थपरायणता भी है। श्लाघाका अर्थ है, दुनियामें अपनी बड़ाई करना। संवरणका अर्थ आत्म-गोपन करना है और संघर्षका अर्थ है दूसरेकी बुराई चाहना, उसको दुःख देना और उसे जड़ मूलसे उखाड़ फेंककर अपनी जड़ जमाना। इन चारों अर्थोंके भीतर उपास्य

* "सौख्यमिह सुख-स्वार्थान्वेषणम्, संवरणमात्मगोपनं, संघर्षः पराभिभवेच्छा, धात्वर्थेनोपसंग्रहादकर्मकः।"

देवता 'भद्र' है। इसलिये जो लोग 'सभ्य' कहलाते हैं, वे स्वभाव और शिक्षाके प्रभावसे, सदा अपने ही मतलबकी बात ढूंढ़ा करते हैं। अपनाही आराम देखते हैं, अपना ही पेट भरना जानते हैं, अपने मुंह अपनी बड़ाई करते फिरते हैं, अपनेको बहुत बड़ा काबिल समझते हैं, बस अपने आपमें ही सदा संवृत अर्थात् लीन रहते हैं और अपना प्रभाव सदा सबपर बना रहे इसके लिये संघर्ष अर्थात् लड़ाई झगड़े, छीना झपटी, नोंच खसोटकी ताकमें सदा लगे रहते हैं। यदि वे इस संसारकी सभी अच्छी बुरी, मोटी पतली, सख्त और मुलायम चीजें हड़प कर जायें; तोभी डकार न लें। जो लोग असभ्य हैं, वे कभी सुख या स्वार्थकी खोजमें नहीं भटकते फिरते, ऐसी बात नहीं है। सुख और स्वार्थका अन्वेषण करना तो सभी जीवोंका स्वाभाविक धर्म है। कीटपतङ्गोंसे लेकर पहाड़ोंकी कन्दरामें समाधिमें डूबे हुए महर्षियों तकका जीवन सुख और स्वार्थके ही अनुसन्धानमें व्यतीत होता है। कारण, मनुष्य जिस समय खिले हुए फूलोंकी शोभा, फलोंसे लदे हुए वृक्षोंकी बहार अथवा पूर्णिमाके चांदकी छिटकी हुई चांदनी देखनेके लिये उत्सुक हो उठता है, उस समय भी तो वह सुख और स्वार्थका ही अनुसरण करता है? अथवा जब कभी वह परार्थ प्रीतिकी प्रबल तरङ्गमें पड़कर; परायेके लिये अपने प्राणतक देनेको तैयार हो जाता है, उस समय उसके हृदयमें उसी दूसरे मनुष्यके सुखको देखकर अनिर्वचनीय सुखका अनुभव होने लगता है। इसलिये सुख

और स्वार्थका अन्वेषण करना जीवके लिये स्वाभाविक है। तब सभ्यताके साथ इन दोनोंका जो नाता है, उसमें विशेषता यही है, कि सभ्योंको पराये सुख स्वार्थकी ओर देखनेकी कभी फुर्सत नहीं मिलती। वे सभ्यताके सूक्ष्म सूत्रित नियमोंसे सब अवस्थाओंमें ऐसे जकड़े हुए रहते हैं, कि अपने सिवा और किसीके लिये चिन्ता करनेका उन्हें अवकाश नहीं मिलता।

सभ्यताका दूसरा लक्षण श्लाघा अर्थात् 'अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना' है। जो सभ्य होगा, वह जरूर अपनी बड़ाई आप ही करेगा। शास्त्रोंके अनुसार यह काम भले ही बुरा हो, पर उनको तो इसमें कोई दोष ही नहीं दिखाई देता। कारण, वे सभ्य जो हैं। अगर वे कुछ देनेके लिये बायां हाथ आगे बढ़ायें तो इसके पहले ही उनका दाहिना हाथ उस दानकी तारीफ़ोंसे भरा हुआ एक लेख अख़बारोंमें भेजनेके लिये लिखने लग जायगा। वे एकान्तमें बैठे हुए निराकार तत्त्वका ध्यान करते हैं, पर उनकी ध्यान धारणाकी बात तरह तरहके विज्ञापनों द्वारा, ढोल पीटकर दुनियाको बतलायी जाती है। परन्तु, उनके हृदयमें परोपकारके सम्बन्धमें जो थोड़ी बहुत प्रवृत्ति बाकी रह गयी है, उसका विकास होनेके पहले ही संसारमें सौ सौ तरहसे उसकी समालोचना होने लगेगी और उनके आश्रित लोग इसके लिये रोना पीटना मचाने लगेंगे, कि संसारके असभ्य मनुष्य क्यों कृतज्ञताके साथ उनके आगे सिर झुकानेके लिये उनके द्वारपर नहीं आते? इसीका नाम है, सभ्यताकी

सची आत्मप्रशंसा। सुसभ्य व्यक्तिगण जिस विषयमें जो कोई बात कहते हैं, उसमें उतनी ही मात्रामें अपनी तारीफका पुल बांध देंगे, जितनी उस समय जरूरी मालूम पड़ती है।

धात्वर्थके क्रमानुसार तृतीय लक्षण संवरण या आत्म-गोपन है। जो सभ्य हैं, वे जब 'नहीं' कहनी होती है, तब 'हां' कहते हैं और जहां 'हां' करनी होती है, वहां 'नहीं' कर देते हैं। उनके पूर्वका अर्थ पश्चिम और पश्चिमका अर्थ पूर्व है। अपने इसी गुणसे वे हृदयके ज्वालामुखी पर्वतको मीठी हंसीसे छिपाकर परम शत्रुसे भी मीठी मीठी बातें करते हैं; जहां घृणा होती है, वहां भी प्रेम दिखलाते हैं; जहां विद्वेष होगा, वहां भी सहानुभूतिके साथ आंसू गिरायेंगे और जिसके सर्वनाशके लिये हथियार पैना रहे होंगे, उसके प्रति भी सब प्रकारसे सम्मान और सौहार्द प्रदर्शित कर सभ्यताका गौरव बढ़ायेंगे।

सभ्यताका चौथा लक्षण संघर्ष अर्थात् दूसरोंके ऊपर प्रभुत्व स्थापित करनेकी इच्छा है। इसी लिये इसका अर्थ असीम और क्षेत्र अनन्त है; क्योंकि यह 'दूसरा' शब्द कहीं तो अपने सिवा सारे लोक संसारके अर्थमें आता है, कहीं अपने बाल बच्चोंके अतिरिक्त सारे संसारके अर्थमें आता है और कहीं अपनी जातिके सिवा संसारभरकी सब जातियोंके अर्थमें आता है। पर चाहे किसी अर्थमें हो, 'दूसरा' तो इन सभ्योंकी आंखोंमें सदा ही खटकता रहता है। वह अपनी सारी शक्ति

लगाकर उस 'परायेको' अपना बना लेनेकी चेष्टा किया करते हैं। इसी लिये ये सुसभ्य लोग किसीके आगे सिर झुकाना नहीं चाहते। चाहे माँ हो या बाप, ज्ञानदाता हो या भयत्राता; पर ये लोग किसीको अपनेसे ऊंचे आसनपर नहीं बिठा सकते। जो सब जातियां संसारमें सुसभ्य कही जाती हैं, वे भी इसी कारण पास या दूरकी किसी दूसरी जातिका सुख, शान्ति, सम्पद् और समृद्धि सहन नहीं कर सकतीं। तुम चाहे पहाड़की ओटमें छिप जाओ या समुद्रके नीचे लुक जाओ, पर ये सुसभ्य जातियां अपनी गिद्धकी सी दृष्टिसे तुम्हें देख ही लेंगी और तुम्हारे कलेजेमें जहरीली सुई गोद देंगी। तुम चाहे पेड़की छाल पहन लो या सारे शरीरमें राख पोत लो, पर यह पराये सत्यानाशमें सुख माननेवाली, दूसरेका सुख छीननेवाली सभ्यता तुम्हें हर कहींसे ढूंढ़ लायेगी। क्योंकि,—

"सभ् संघर्ष, संघर्षः पराभिभवेच्छा।" प्राचीन वैयाकरणने और एक प्रकारसे इस सभ्य शब्दकी व्युत्पत्ति दिखायी है। कुछ उसकी भी बानगी देखिये :

सभा—सह भा दीप्तौ, अधिकरणे क्विप्। जहांपर सब लोग इकट्ठे होकर अपनी अपनी तेजस्वितासे चमक रहे हों, उस स्थानका नाम सभा है और सभामें जो साधु अथवा निपुण हैं, वे चाहे और तरहसे भले ही नीच, पापी, परम लोकद्रोही, दुराचारी और दुष्ट हों, पर शास्त्रके अनुसार तो वेही सभ्य कहलायेंगे। इस अर्थके अनुसार जो लोग सभाओंमें नहीं आते जाते,

वे चाहे राजा रामचन्द्रकी तरह संसारके आदर्श हों, तोभी वे असभ्य ही हैं। क्योंकि वे सभाके साधु* नहीं हैं। इसके सिवा जिनकी दीप्ति अर्थात् चमक दमक, ठाटबाट, पहनाव पोशाक खूब बढ़िया नहीं हो, वे भी असभ्य हैं। कारण 'भा' धातुका मुख्य अर्थ दीप्ति है। किन्तु जब यह देखते हैं, कि सभ्य शब्द केवल व्यक्तियोंके हिसाबसे नहीं जातियोंके अनुसार प्रयुक्त होने लगा है, तब तो लाचार पुराने अर्थको छोड़कर व्युत्पत्तिवादका ही अर्थ मान लेनेको जी चाहता है।

हाकिम—हक् हुङ्कारे, तर्जने गर्जने, दर्पदम्भने, लोकपीड़ने च। इमच् प्रत्ययः। ककार हल् होनेके कारण उपधा अकारके स्थानमें आकार होता है।

चूंकि यह 'हक्' धातु सभी अर्थोंमें भय और पीड़ा उत्पन्न करनेवाली है, अतएव न तो जिसमें हुङ्कार है, न भङ्कार, न तर्जन है न गर्जन, न दर्प है न दाम्भिकता, अथवा जो लोकपीड़नमें दिलसे लगे हुए नहीं होते, वे विचारक भले ही हों, पर हाकिम नहीं हो सकते। जो लोग भले आदमियोंको आँखें दिखाते डरते हैं, भलामानुस देखते ही उसे बिना डराये-धमकाये छोड़ देते हैं, और अच्छीसी बातमें भी भयङ्कर मुंह बनाकर ताना मारना नहीं

* शास्त्रमें असली साधु और सभाके साधुमें भेद बताया गया है। यथा,—"तत्र साधुः—सभायां यः। पाणिनि ४।४।९८। १०५ सभा इत्येतस्मात् साधुरिति अस्मिन् अर्थे य स्यात्। सभायां साधुः सभ्यः।"

जानते, वे भले ही विचारकोंकी गिनतीमें आजायें, पर हाकिम तो हरगिज़ नहीं कहला सकते। जो आत्म-कलहकी आगको दिलमें छिपाये हुए ऊपरसे किसी तरहकी दुश्मनी दिखलाते हुए सकुचाते हैं; ऊपरवालोंसे लात खाकर नीचेवालोंसे उसकी कसर नहीं निकालते, और महामूर्ख होनेपर भी ऊपरसे बड़प्पनका दिखाव नहीं कर सकते, वे विचारक भले ही हो जायें; पर हाकिम नहीं हो सकते। इसलिये हाकिम और विचारक इन दोनोंको विपरीत अर्थवाले शब्द समझना चाहिये। विचारकगण साधारणतः मनुष्य-पूजित और प्रचलित न्याय-नीतिके अनुसार विचार करना चाहते हैं। इसलिये मनुष्य उन्हें मनुष्य ही मानते हैं और वे भी मनुष्यको मनुष्य ही मानकर उसकी श्रद्धा करते हैं तथा मनुष्यके शारीरिक, सांसारिक और सामाजिक सुख दुःखको समझ-बूझकर काम करनेकी चेष्टा करते हैं। पर हाकिम लोग तो हमेशा अपनी हुकूमतकी ऐंठमें अकड़े रहते हैं—दिन-रात उनके दिमाग़की भट्ठीमें आग जलती रहती है। उस आगमें यदि दया, धर्म, न्याय, नीति, शिष्टाचार और सामाजिकता आदि गुण सदेह न जल गये, तो फिर हाकिम ही कैसा?

राध्—साध् संसिद्धौ, औणादिक उऽ प्रत्ययः।

जो लोग जगदाधार विश्वविधाताकी प्रीति और मनुष्यत्वके विकास-रूपी सिद्धियोंके लिये संसार भरकी सुख-सम्पद, भोग वैभव, रोष-तोष, आशा-आशंका और शत्रुता-मित्रता आदि बन्धनोंको तोड़कर नाना प्रकारकी कठोर साधनाओंमें दिन बिता

देते हैं, पहले ज़मानेमें वे ही लोग साधु कहलाते थे। वे साधु सबको आशीर्वाद देते, किसीको शाप नहीं देते थे। वे तत्त्व-ज्ञानकी ऊँची चोटीपर चढ़कर भी बच्चेकी तरह सरल, कोमल और नम्र बने रहते थे। वे किसीको अपने आत्म-गौरवकी उच्चता दिखला कर कष्ट नहीं पहुँचाते थे। दुनिया-भरके पापी-तापी उनके पास जाकर अपनी आत्माको शान्त करते थे। बड़े-बड़े पुराने रोगी उनके प्रीतिके साथ हाथ फेरते ही रोगसे छुटकारा पा जाया करते थे। आज इन गये-गुज़रे दिनोंमें भी कोई-कोई साधु इस ढंगके भी मिल ही जाते हैं। लोग उन्हें पहचानते ही उनके पैरोंपर सिर झुका देते हैं और उनकी चरण-रज माथेसे लगाकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं। पर ज़मानेके हेर फेरसे इस शब्दके अर्थमें भी भारी उलट फेर हो गया है। आज कलका प्रचलित अर्थ तो यह है—

"साध्नोति स्वकार्यं कौशलेन बलेन वा इति साधुः।"

अर्थात्—जो छलसे, बलसे या अद्भुत कौशलसे अपना मतलब गाँठते रहते हैं, वे ही साधु हैं। इसीसे आजकलके साधु वैरागीपनके नामपर हज़ारों तरहके ऐश-आराम लूटते और दिन-दिन विलासके समुद्रमें गोते लगाकर भी नहीं अघाते। पृथ्वीभरका प्रभाव और प्रतिपत्ति पाये बिना उनका जी नहीं मानता, इसीलिये कभी-कभी उदासीके मारे रो देते हैं—क्योंकि साधुओंको तो स्वभावतः ही झट किसी बातपर करुणा आ जाती है। इसी करुणाके मारे आँखोंमें आँसू लाकर वे मनुष्यसे

जानते, वे भले ही विचारकोंकी गिनतीमें आजायें, पर हाकिम तो हरगिज़ नहीं कहला सकते। जो आत्म-कलहकी आगको दिलमें छिपाये हुए ऊपरसे किसी तरहकी दुश्मनी दिखलाते हुए सकुचाते हैं; ऊपरवालोंसे लात खाकर नीचेवालोंसे उसकी कसर नहीं निकालते, और महामूर्ख होनेपर भी ऊपरसे बड़प्पनका दिखाव नहीं कर सकते, वे विचारक भले ही हो जायें; पर हाकिम नहीं हो सकते। इसलिये हाकिम और विचारक इन दोनोंको विपरीत अर्थवाले शब्द समझना चाहिये। विचारकगण साधारणतः मनुष्य-पूजित और प्रचलित न्याय-नीतिके अनुसार विचार करना चाहते हैं। इसलिये मनुष्य उन्हें मनुष्य ही मानते हैं और वे भी मनुष्यको मनुष्य ही मानकर उसकी श्रद्धा करते हैं तथा मनुष्यके शारीरिक, सांसारिक और सामाजिक सुख दुःखको समझ-बूझकर काम करनेकी चेष्टा करते हैं। पर हाकिम लोग तो हमेशा अपनी हुकूमतकी ऐंठमें अकड़े रहते हैं—दिन-रात उनके दिमाग़की भट्ठीमें आग जलती रहती है। उस आगमें यदि दया, धर्म, न्याय, नीति, शिष्टाचार और सामाजिकता आदि गुण सदेह न जल हाकिम ही कैसा?

राध्—सा' :।

जो ले

विका

अभिमान नहीं होता था। वह स्वयं दीन बना रहता, और जो उससे भी दीन-हीन होते, उनकी तन-मनसे सेवा करता था। वह दुनिया-भरके आगे विनयी बना रहता, दूसरोंके दोष न ढूँढ़कर सदा गुण ही ढूँढ़ता रहता था। उसके हृदयमें क्रोध, डाह और महत्वाकांक्षाको स्थान नहीं मिलता था। जैसे चन्द्रमाकी चाँदनी इस संसारके सभी जीवोंको सुख देती है, वैसे ही भक्तकी छाया भी प्राणी-मात्रको प्राण देनेवाली मालूम पड़ती थी। शुक, शौनक, प्रह्लाद, और विदुर आदि ऐसे ही भक्त थे। वे अपने कट्टरसे कट्टर वैरियोंका भी भला करते और जो उन्हें सदा बिना कारणके ही दुःख दिया करते थे, उन्हें भी दुःख नहीं देते और सदा उनकी भलाई ही चाहते थे। धात्वर्थ तो आजतक शब्दोंका त्यों ही रहा है, पर शब्दार्थमें तो बड़ा भारी उलट फेर हो गया है। आजकल जो औरोंकी भलाईकी ओर फूटी निगाहसे भी नहीं देखते और "राम-राम जपना, पराया माल अपना" अथवा "मुखमें राम, बगलमें छुरी" का पाठ पढ़ते हुए अपना स्वार्थ गाँठते रहते हैं, पर तुलसीकी माला, कण्ठी, छापा और तिलक धारण करनेमें बड़े सावधान रहते हैं, वे ही भक्त कहलाते हैं। ऐसे ही ऐसे भक्तोंके प्रतापसे हिन्दीवालोंने 'भक्त' शब्दको तोड़-मरोड़कर 'भगत' बना, उसकी पूरी दुर्गति कर दी है। कितने तो इन परम भक्तोंको 'बगुला भगत' भी कह डालते हैं! पर वे 'भगत' जी या 'बगुला भगत' भले ही हों, प्राचीन मर्यादावाले 'भक्त' नहीं हैं, इसमें तो कोई सन्देह नहीं। इसीलिये

अभिमान नहीं होता था। वह स्वयं दीन बना रहता, और जो उससे भी दीन-हीन होते, उनको तन-मनसे सेवा करता था। वह दुनियां-भरके आगे विनयी बना रहता, दूसरोंके दोष न ढूंढ़कर सदा गुन ही ढूंढ़ता रहता था। उसके हृदयमें क्रोध, डाह और महत्वमत्ताको स्थान नहीं मिलता था। जैसे चन्द्रमाकी चाँदनी इस संसारके सभी जीवोंको सुख देती है, वैसे ही भक्तकी छाया भी प्राणी-मात्रको प्राण देनेवाली मालूम पड़ती थी। शुक, शौनक, प्रह्लाद, और विदुर आदि ऐसे ही भक्त थे। वे अपने कट्टरसे कट्टर वैरियोंका भी भला करते और जो उन्हें सदा विना कारणके ही दुःख दिया करते थे, उन्हें भी दुःख नहीं देते और सदा उनकी भलाई ही चाहते थे। धात्वर्थ तो आजतक ज्योंका त्यों ही रहा है, पर शब्दार्थमें तो बड़ा भारी उलट फेर हो गया है। आजकल जो औरोंकी भलाईकी ओर फूटी निगाहसे भी नहीं देखते और "राम-राम जपना, पराया माल अपना" अथवा "मुखमें राम, बग़लमें छुरी" का पाठ पढ़ते हुए अपना मतलब गाँठते रहते हैं, पर तुलसीकी माला, कण्ठी, छापा और तिलक धारण करनेमें बड़े सावधान रहते हैं, वे ही भक्त कहलाते हैं। ऐसे ही ऐसे भक्तोंके प्रतापसे हिन्दीवालोंने 'भक्त' शब्दको तोड़-मरोड़कर 'भगत' बना, उसकी पूरी दुर्गति कर दी है। कितने तो इन परम भक्तोंको 'बगुला भगत' भी कह डालते हैं! पर वे 'भगत' जी या 'बगुला भगत' भले ही हों, प्राचीन अर्थवाले 'भक्त' नहीं हैं, इसमें तो कोई सन्देह नहीं। इसीलिये

आजकल कोई भक्त कहलाना नहीं चाहता। और जो कोई कहलाते हैं, उनमें युगधर्मके अनुसार 'भक्ति' के स्थानमें 'वगुला भगताई' ही सिद्ध हो जाती है। हमारे स्वामीजीने वहुतसे 'देशभक्तों' को भी 'देशभक्त' कहलानेसे मना कर दिया है; हाँ, जिनमें वे कलियुगी 'भक्ति' लहराती हुई देखते हैं, उन्हें तो स्वयं ही वड़े प्रेमसे 'देशभक्तजी' कहकर पुकारा करते हैं। व्युत्पत्ति-वादका यह अर्थ धीरे धीरे इतना व्यापक हो गया है, कि वहुतसे सीधे-सादे आदमी किसीके 'देशभक्त' कहकर पुकारते ही उसे डपट देते हैं।

वावू—वव् चाञ्चल्ये, वृथाभिमाने, परानुकरणे, प्रगल्भतायां, धृष्ट व्यवहारेच। औणादिकः णुः प्रत्ययः। ण् इत् हो जाता है। उ रहता है। आकारकी वृद्धि हो जाती है। जिनका स्वभाव चंचल हो, जो व्यर्थ ही घमंडके मारे चूर रहते हों, जिनका दिमाग हमेशा सातवें आसमानकी सैर करता रहता हो, जो हरदम दूसरोंकी नक़ल करनेमें ही अक़ल ख़र्च करते हों, जिनका व्यव-हार बेहद धृष्टतासे भरा हुआ हो, उन्हें ही 'वावू' कहते हैं। वावू लोग चंचलतामें भौंरेकी तरह होते हैं, इसलिये सभी वातोंमें भौंरोंकी ही तरह रहते हैं। जो लोग लिखने-पढ़नेके भौंरे हैं, वे औरतोंकी तरह उपन्यास आदि रसीले ग्रन्थोंकी सैर करते रहते हैं—कभी इसे पढ़ते हैं तो कभी उसके पन्ने उलटते हैं—पर पूरा किसीको नहीं करते। जो प्रेमके भौंरे हैं, उन्हें नित्य नयी प्रेमकी सामग्री चाहिये; क्योंकि उनका दिल एकसे राज़ी नहीं हो

स्वयं प्रजा हो गये हैं और कोई कोई तो उससे भी गये बीते हो रहे हैं। ये लोग महज़ एक सिपाहीके डरसे औरतोंके आंचलमें मुंह छिपा लेते हैं। भला ऐसे लोग प्रजारञ्जन क्या ख़ाक करेंगे ? इसलिये आधुनिक भाष्यकारोंके मतसे तो इन राजाओंका राज-धर्म प्रभु-रञ्जन ही है। नहीं तो रञ्ज धातुका प्रयोग फिर किस लिये होगा ? सच पूछो, तो शोभार्थक राज धातु और प्रीणनार्थक रञ्ज धातु—ये दोनों ही आजकलके 'राजा' शब्दमें सार्थक हो गये हैं। क्योंकि जब राजकूष्माण्ड अर्थात् तरबूज़, राज ग्रीव अर्थात् फ्लुई-मछली, राजताल अर्थात् सुपारीका पेड़, राज-तिनिश अर्थात् ककड़ी, राजपुत्रिका अर्थात् पक्षी-विशेष (अबाबील) राजपुत्री अर्थात् छछूंदर, राजफल अर्थात् ख़रगोश और राज-मण्डूक अर्थात् बरसाती मेंढ़क आदि पदार्थोंमें भी राज शब्द विशेषणकी तरह लगाया जाता है, तब तो यह स्पष्ट ही है, कि शोभा और प्रीणन, (अर्थात् दूसरोंको अपनी ख़ुशामदसे राज़ी रखना), ये दोनों राजाओंके प्रधान लक्षण हैं।

पिता—पत् अधोगमने। कर्त्तरिथा। निपातने इकार आगमः।

पुराने व्याकरणोंके मतसे पितृ शब्द: रक्षार्थक 'पा' धातुसे निकला है, और उसका अर्थ पालन या रक्षा करनेवाला है। आजकलके शब्द शास्त्रज्ञोंके मतसे तो पितृ—शब्द पत् धातुसे निकला है, जिसका अर्थ नीचे गिरनेवाला पापी होता है। इसी लिये तो आजकल जिन बालकोंके दूधके दांत भी नहीं टूटते ऐसे लड़के भी अपने पिता और पितामह आदिको अधोगामी

नहीं सकती। वे अन्याय करें, तो भी न्याय है। झूठ कहें, तो वह भी सच है!

राजा—राज् दीप्तौ शोभायाञ्च; कर्त्तरि अन् राजते इति राजा।

इसका मतलब यह है, कि जिनके गलेमें सोने और मोतियोंका हार हो तथा हीरे वगैरहकी चमक-दमकसे सारे शरीरकी विचित्र शोभा हो रही हो, पर भीतर आत्मामें भी ऐसी ही चमक-दमक या शोभा होनेका कोई लक्षण न हो, वही राजा है। इसीलिये यह शब्द आजकल पृथ्वीके कुछ थोड़ेसे सद्गुणालंकृत और प्रकृत गौरवान्वित लोगोंको छोड़ कर और तो सभी स्थानोंमें राजशक्तिका बोध न कराकर बढ़िया-बढ़िया पहनाव-पोशाक वालों हीका बोध करनेवाला रह गया है।

अथवा रञ्ज प्रीतौ, तस्मात् अन्। प्रभुस्था नीयान् सर्वप्रयत्नेन रञ्जयतीति राजा-अर्थात् जो लोग राजधर्मके विरुद्ध विविध प्रशंसनीय (!) कार्योंका अनुष्ठान कर प्रभुओंको प्रसन्न करना जानते हैं, उन्हें राज़ी करलेना बायें हाथका खेल समझते हैं, और इसीमें अपना जन्म सफल समझते हैं, वे ही राजा कहलाने योग्य हैं। पाणिनि और शाकटायन आदि पण्डितोंने रञ्ज धातुके मौलिक अर्थके अनुसार राजा उसीको माना है, जो प्रजारञ्जन करे। उनके मतसे जो अपने स्वभाव, शिक्षा और शक्तिके दोषसे प्रजा-रञ्जन न कर सके, वे राजा कहलाने योग्य नहीं हैं। पर आजकल तो ऐसा देखनेमें आता है, कि बहुतसे राजाओंको तो प्रजा ही नहीं है—केवल उनके प्रभु हैं! अर्थात् बहुतसे राजा

स्वयं प्रजा हो गये हैं और कोई कोई तो उससे भी गये बीते हो रहे हैं। ये लोग महज़ एक सिपाहीके डरसे औरतोंके आंचलमें मुंह छिपा लेते हैं। भला ऐसे लोग प्रजारञ्जन क्या ख़ाक करेंगे? इसलिये आधुनिक भाष्यकारोंके मतसे तो इन राजाओंका राज-धर्म प्रभु-रञ्जन ही है। नहीं तो रञ्ज धातुका प्रयोग फिर किस लिये होगा? सच पूछो, तो शोभार्थक राज धातु और प्रीणनार्थक रञ्ज धातु-ये दोनों ही आजकलके 'राजा' शब्दमें सार्थक हो गये हैं। क्योंकि जब राजकूष्माण्ड अर्थात् तरबूज, राज ग्रीव अर्थात् फलुई-मछली, राजताल अर्थात् सुपारीका पेड़, राज-तिनिश अर्थात् ककड़ी, राजपुत्रिका अर्थात् पक्षी-विशेष (अबाबील) राजपुत्री अर्थात् छछूंदर, राजफल अर्थात् ख़रगोश और राज-मण्डूक अर्थात् बरसाती मेढ़क आदि पदार्थोंमें भी राज शब्द विशेषणकी तरह लगाया जाता है, तब तो यह स्पष्ट ही है, कि शोभा और प्रीणन, (अर्थात् दूसरोंको अपनी ख़ुशामदसे राज़ी रखना), ये दोनों राजाओंके प्रधान लक्षण हैं।

पिता—पत् अधोगमने। कर्त्तरित्रा। निपातने इकार आगमः।

पुराने व्याकरणोंके मतसे पितृ शब्द: रक्षार्थक 'पा' धातुसे निकला है, और उसका अर्थ पालन या रक्षा करनेवाला है। आजकलके शब्द शास्त्रोंके मतसे तो पितृ-शब्द पत् धातुसे निकला है, जिसका अर्थ नीचे गिरनेवाला पापी होता है। इसी लिये तो आजकल जिन बालकोंके दूधके दांत भी नहीं टूटते ऐसे लड़के भी अपने पिता और पितामह आदिको अधोगामी

नारकी कहकर उनका संग विष समझते और उनसे अलग हो जाते हैं। जो लोग आजकलके ज़मानेमें भी पिताको अर्थात् पालक देवता समझकर पूजते हैं, और देह, प्राण, ज्ञान, मान आदि मानव-जीवनकी सब श्रेष्ठ सामग्रियोंका उन्हें रक्षक मानते हुए श्रद्धा, भक्ति और स्नेहसे भरे हृदयके साथ उनमें निष्कपट प्रेम रखते हैं, वे न तो व्याकरण ही जानते हैं, न उन्होंने कोई अच्छा सा कोश टटोला है—यह बात तो माननी ही पड़ेगी।

धन्यगण्य—"धन-गणं लब्धा।"* जिन्होंने किसी तरह कुछ धन कमा लिया है, वे ही 'धन्य' हैं। जिन्होंने दसपांच जनोंको अपने गण (साथी) बना लिया है—चाहे वे अच्छे हों या बुरे-वे ही 'गण्य' हैं। इसीलिये संसारमें धन्य और गण्य व्यक्तियों-की कमी नहीं है। जो लोग धन्य हैं, वे किसीका कोई उपकार न भी करें, तो भी उनके लम्बे-लम्बे कानोंमें धन्यवादकी मधुर ध्वनि पहुंचा ही करती है और जो लोग गण्य हैं, वे दुनियामें किसी गणनाके योग्य कामको न करते हुए भी सदा पाँचों सवारोंमें गिने जाते हैं। धन्य और गण्यका यह अर्थ कुछ नया नहीं है। ऋषि-युगमें पाणिनि भी यही अर्थ लिख गये हैं और कवियुगके क्रमदीश्वरके समयमें भी यही अर्थ प्रचलित था।

यदि इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण चाहो, तो आजकल हमारे समाजकी जो हालत है, उसे ग़ौर करके देखो। हमारे यहां

* पाणिनि ४।४।८४" धने लब्धाधन्यः—गणं लब्धा गण्यः। तल्लाभ्यरि धनगणाभ्या-मिति क्रमदीश्वरः।

अगर धन्य पुरुष खोजने जाओ, तो पहले किनके पास पहुँचना होगा ? जहाँ अध्यापक लोग बड़े कष्टसे वेद-वेदान्त आदि कठिन शास्त्रोंका मर्म समझकर शिष्योंको उसे सरल भावसे समझा रहे हैं और शास्त्र-व्याख्याके साथ-साथ जगज्जीवन जगदीश्वरकी अपार करुणाका गूढ़ तत्त्व भावमें डूबकर बतलाने लगते हैं, और इस प्रकार लोगोंकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, पर वहां आपको धन्य पुरुष नहीं दिखाई देंगे। जहां विद्याके वर पुत्रकी तरह प्रतिभाशाली पुरुष, अपने एकान्त ग्रन्थागारमें बैठा हुआ, ज्ञान विज्ञानके असली तत्त्वोंकी खोज कर रहा है, मानव-प्रकृतिके मर्म-स्थलमें छिपे हुए प्रेम, भक्ति, स्नेह और करुणा आदि पवित्र प्राण-शीतल-कारी और देव-दुर्लभ भावोंको अपनी अपूर्व सौन्दर्यमयी कविताओंमें गूँथा करता है, वहां भी तुम्हें धन्य पुरुष नहीं दिखाई देंगे। जहां कोई दीन-हीन युवा, आप दिन भर शाक-भाजी खाकर ही रह गया है और अपनी बूढ़ी तथा दुखिया माँको बचानेके लिये अपने पासका पैसा दिल खोलकर खर्च कर रहा है अथवा घरपर आये हुए किसी बूढ़े अतिथिको प्रसन्न करनेके लिये किसीने अपने आगेकी परोसी थाली हटा दी है, वहां भी तुम्हें धन्य पुरुषके दर्शन न होंगे। चुपचाप गुप्त दान करनेवाला, दुर्बल और पीड़ितका भय दूर करनेवाला, आफ़तमें पड़ी हुई सती नारीका मान बचानेवाला भी धन्य नहीं। धन्य तो वे हैं, जो गद्दी तकियेके सहारे लेटे हुए, मिट्टीके तेलकी धुँधली रोशनीमें एक हाथमें सुमिरनी

माला लिये ब्याज-बट्टेका हिसाब कर रहे हों, या ज़मीन्दार कहलाते हुए करके भारसे दबी हुई प्रजाका ख़ून चूसने और बेचारे ग़रीब पड़ोसियोंका सर्वस्व हड़पनेके लिये वकीलोंसे कानूनी सलाह ले रहे हों अथवा मदिराकी उन्मादिनी शक्तिके प्रभावसे होश हवास खोकर, ख़ुशामदी टट्टुओंके मुंहसे अपनी तारीफ़ोंके पुल बंधते देख रहे हों। जहां ऐसे ऐसे धन्य पुरुष रहते हैं, वहीं वन्दीजन स्तुति पाठ करते हैं, भाट कविता सुनाते हैं, और भावुक-गण अपने हृदयके उछलते भावोंको प्रकट कर अपनेको कृतार्थ समझते हैं। पाठको! सच कहना, क्या हमारे देशकी अवस्था ऐसी ही शोचनीय नहीं हो गयी है?

पद्य—"पदमस्मिन् दृश्यं, पद्यः कर्दमः।"*

अर्थात् जिस कीचड़में पशु-पक्षियोंके पैरोंके निशान दिखाई दें, वही पद्य है। साथ ही कण्टक और कङ्कर आदिको भी पद्य कहते हैं। पद्य-शब्दका यह पुराना अर्थ अवश्य ही संसारके करोड़ों पद्य- लेखकोंके कलेजेको चोट पहुंचायेगा और जो लोग मानव-जीवनके महान् उद्देश्यको भूलकर केवल जीवन और जीविकाके लिये विरह-दग्ध 'विदग्ध' विधुराकी भांति अन्तः-सार शून्य पद्य-रचनामें ही समय, शक्ति और संसार-धर्मका उत्सर्ग कर डालते हैं, उनको भी इस अर्थको सुनकर बड़ा दुःख होगा, इसमें भी सन्देह नहीं; पर क्या किया जाये? यह अर्थ तो

*पाणिनि ४।४।८७ पदात् तद्दृश्यमस्मिन् पद्यः। नातिपङ्कः कर्दमः। इति क्रमदीश्वरः। स्वयं तद्विध्यति-पादौ विध्यति इति पद्यः कण्टकः। इति च क्रमदीश्वरः।

खास महर्षियोंके पूज्य पाणिनि बाबाके सूत्रके अनुसार ही है। यही व्याख्या वामन और जयादित्यकी सुप्रसिद्ध वृत्तियोंमें भी है। इसकी विवृति पतञ्जलिके भाष्यमें है और इसका समर्थन वादोन्द्र चूड़ामणि क्रमदीश्वरने भी किया है। इसलिये 'पद्य'के अर्थ कीचड़, कादा, कंकड़, काँटा ही हैं। जो सब पद मालाएं रसात्मक वाक्य मानी जाती हैं, उन्हें तो कविता या काव्य कहते हैं। काव्य और पद्यको एक ही नहीं समझना चाहिये। कविता सुन्दर सुगन्धित कुसुमोंकी तरह भगवान्के चरणोंमें उपहार देने योग्य वस्तु है—वह तो जीवमात्रके हृदयको बरबस मोह लेती है।

मानव जीवन

वैज्ञानिकोंकी आलोचनाका विषय यह अखिल जड़ जगत् है। कवि, दार्शनिक, चरित लेखक और ऐतिहासिकोंकी आलोचनाका विषय यह अनन्त मानव जीवन है। मानव-जीवन-रूपी यह चिर पुरातन और चिरनूतन महान् ग्रन्थ सामने खुला पड़ा है। कोई तो इस ग्रन्थका कीड़ा बन गया है, कोई दूरहीसे थोड़ा-बहुत देख रहा है, कोई उससे भी दूर हाथमें कल्पनाकी दूरबीन लिये खड़ा है और कोई बिना कुछ देखे-सुने, बिना कुछ सीखे-समझे अपनेसे कम विद्या बुद्धि रखनेवालोंके आगे पण्डित बनते हैं।

मानव-जाति कहाँ किस प्रकार उन्नत हुई। कहाँ किस प्रकार अधःपातको पहुँचो अथवा मनुष्य—प्रकृतिकी कौनसी वृत्ति किस रास्तेसे चलकर, किस भावसे कार्य करती हुई किस प्रकार विकासको प्राप्त हुई, इन सब अगम तत्त्वोंकी ओर शहदके लोभी कवियोंकी दृष्टि साधारणतया नहीं जाती। जो लोग भास या शेक्सपियरकी आत्मा लेकर कविताकी वीन बजा गये हैं, उनकी बात न्यारी है। वे कवि थे या दार्शनिक, योगी थे या भोगी, ऋषि थे या विलासी, यह आजतक किसी मनुष्यकी समझमें नहीं आया।

साधारणतः सभी कवि मधुकर हुआ करते हैं। मधुकर जिस प्रकार मलय-मारुतके मन्द-मन्द हिलोरेमें मस्त होकर झूमता हुआ, फूलोंपर मँडराया करता और फूलसे मधु निकाल कर ही सन्तुष्ट हो रहता है, वैसे ही मधुपमति कवि भी कल्पनाके सुखदायी समीरसे सञ्चालित हो मानव-जीवनरूपी मनोहर उद्यानके भिन्न-भिन्न कल्प-कुसुमोंके बीच विचरण करते और उनके जीवनमें जहाँ कहीं सुधार दिखाई देता है, वहींसे उसे चुन लेते हैं। प्रेमका पवित्र उच्छ्वास या विरहका दीर्घ निःश्वास, विषयीकी आसक्ति, वियोगीकी अश्रुधारा, तापसकी प्रगाढ़ तृप्ति, तृषातुरका चित्तदाह, उदारचेता दयालु पुरुषकी निःस्वार्थ करुणा और वीर-हृदयका मर्मविदारक भैरव-क्रोध, यह सभी वस्तुएँ उक्त जीवनोद्यानकी विविध कुंजों और क्यारियोंमें घूमनेवाले हृदय-हारी कविके भण्डारमें भरी रहती हैं। जिसके पास इन सब चीजोंमेंसे एक भी नहीं है—है केवल कुछ कुत्सित कल्पना, कदर्यकथा और कदर्यशब्द, उसे तो कवि न कहकर कपि, काक किंवा कूप-मण्डूक कहना ही ठीक है।

और दूसरी तरह यदि देखा जाये, तो यह मानव-जीवन एक अगम, अपार, अथाह महासमुद्र है और जो लोग सर्व-साधारणसे बढ़े-चढ़े हैं, वे कवि लोग इस समुद्रके ग़ोताख़ोर हैं। जैसे चतुर ग़ोताख़ोर रत्नके लोभसे रत्नाकरमें डुब्बी लगाता है, वैसे ही निपुण कवि भी मानव-जीवनरूपी महासमुद्रके भीतर

जो लोग ऐतिहासिक और समालोचक हैं, वे मानव-जीवनके सम्बन्धमें कवि और दार्शनिक दोनोंका ही काम करते हैं। पर हैं ये कवि और दार्शनिक दोनोंसे भिन्न। कोई विशेष सौन्दर्य या विशेष सत्य ऐतिहासिकको मुग्ध नहीं कर सकता। परन्तु सारे मानव-जीवनका जो सौन्दर्य और सत्य, बहते हुए सोतेकी तरह, सम्मिलित शक्तिके साथ, बहते रहते हैं, उनपर उसका मन अवश्य ही मोहित हो जाता है। वह उत्सुक-चित्त और धीरमति होकर परिदर्शककी भाँति किसी ऊँचे स्थानमें जाकर खड़ा हो जाता है और वहाँसे मानव-जातिके निरन्तर प्रवाहित होनेवाले जीवन-स्रोतको वह प्रमत्त-प्रवाह और लहरोलीला समान आदर और अनुसन्धानके साथ देखता और उसकी समालोचना करता है।

राजाधिराज पृथ्वीराज एक दिन राजमहलके सामनेवाले कुसुम-काननमें बैठे हुए भारतवर्षकी उस समय जो दुर्दशा हो रही थी, उसे सोचते हुए आँखोंसे आँसुओंकी धारा बरसा रहे थे, सिर्फ़ इतनीसी बात कभी कोई ऐतिहास लेखक न लिखेगा। यह कविके लिखनेकी बात है और ऐसी-ऐसी न जाने कितनी ही बातें चन्द्रवरदाई अपने पृथ्वीराज-रासोमें लिख गये हैं, परन्तु भारतका भाग्य-सूर्य, आर्य-महिमाके प्रथम उदयसे लेकर किस प्रकार दिन-दिन ऊँचे चढ़ता चला गया और उस समय पृथ्वीकी सभी सभ्य जातियोंके हृदयमें अपनी उज्वल-ज्योति जगा दी थी—फिर एकाएक क्योंकर वह यवन-समुद्रमें डूब

गया; प्रबल पराक्रमी आर्य-जातिके प्रताप-स्रोतमें किस अज्ञात शक्तिकी बदौलत किधरसे भाठा आ गया; जो लोग वीरता और पराक्रमके कारण भीम और अर्जुनके सच्चे वंशधर कहलाते थे, वे क्योंकर मुसलमानोंके पैर चूमने लगे, इन सब बातोंको जो लोग सिलसिलेवार लिखते और भली भांति वर्णनकर सारी बातें, कार्य-कारणका सम्बन्ध दिखलाते हुए, सबको समझा देते हैं, वेही ऐतिहासिक कहलाने योग्य हैं।

पर यह समझना भूल है, कि सिवा कवि, दार्शनिक या ऐतिहासिक आदि उच्च श्रेणीके लोगोंके और कोई मानव-जीवनका न तो पाठ करता है, न कर सकता है। दुनियांमें सभी शेक्सपियर, मिल्टन, भारवि, कालिदास, वेन्थम या बकले नहीं होते। जिसे भगवान्‌ने आँखें दी हैं, उसीने इस ग्रन्थके दो-चार पृष्ठ पढ़ लिये हैं। जो ही इस संसारमें आया, उसीने कुछ-कुछ इसकी चालोंका पता पा लिया। तुम जिन्हें बुद्धिमान् समझते हो, उनसे जाकर बातें करो। तो तुम्हें मालूम होगा। कि वे न तो कवि हैं, न दार्शनिक, न ऐतिहासिक; पर मानव-जातिकी प्रकृति और मानव-जीवनकी गति-विधिके बारेमें वे थोड़ी-बहुत जानकारी अवश्य रखते हैं। इनमेंसे कुछ तो धोखा खाकर सीखे होते हैं और कुछ ठोकरें खाकर। ऐसा न होता, तो उनकी जानकारी कभी पूरी न होती। किसीने पहले तो किसी चीज़को कुछ समझा; पर परखनेपर उसे और ही रूपमें देखा, इसीलिये उन्हें ज्ञान हुआ यदि उनके ओर्की सब बातें इकट्ठी करके लिख

ली जायें, तो एक काव्यका मसाला या दर्शन शास्त्रका एक परिच्छेद तैयार हो जाय।

जिन लोगोंने चिन्ता और अभिज्ञताके साथ मानव-जीवनका अध्ययन करते हुए उसके विषयमें अपनी अपनी रायें दी हैं, उनको प्रधानतः दो श्रेणियाँ होती हैं। पहली श्रेणीके लोग स्तावक कहलाते हैं और दूसरी श्रेणीके निन्दक। यौवनके प्रथम उल्लासके समय तो अधिकांश मनुष्य मानवजातिके स्तावकही मालूम पड़ते हैं। पीछे जब जवानीकी उमङ्ग मिट जाती है, रगोंका खून ठंढा हो जाता है, बुद्धि परिपक्व हो जाती है, तब यह भ्रम या संस्कार धीरे धीरे मिट जाता है और ऐसा मालूम पड़ता है, कि सब लोग इस मानव जातिके निन्दक ही हैं। जो लोग एक दिन इसके बड़े भारी स्तावक थे, समय पाकर वे ही घोर निन्दक बन जाते हैं और ऐसा भी देखनेमें आता है, कि जो लोग पहले मनुष्य जीवनको असह्य नरकभोग कहकर अपने भाग्यको कोसा करते थे, वे ही फिर उसे स्वर्गका नमूना मानकर आह्लादसे नाच उठते हैं।

स्तावकगण प्रेमी होते हैं और निन्दक या तो हित चाहनेवाले बन्धु या विरक्त संन्यासी हुआ करते हैं। प्रेमीकी आंखोंमें अमृतका अञ्जन लगा होता है। उसे सभी चीजें सुन्दर ही दिखाई देती हैं, दोष भी गुणही मालूम पड़ते हैं और नितान्त अप्रिय दृश्य भी शरत्कालकी पूर्णिमाकी चटकीली चाँदनीकी तरह सुधामयी शोभा दिखलानेवाला मालूम पड़ता है। दोष-

दर्शी बन्धु या विरक्त संन्यासीकी आँखोंमें स्नेह रस नहीं होता। इसीसे उन्हें बहुत वार अच्छा भी बुरा मालूम पड़ता है।

जो लोग प्रेमके पुजारी हैं, उन्हें मनुष्य-जीवनकी हरएक वस्तु सुन्दर मालूम पड़ती है, उनके लिये मनुष्यकी हँसीमें सरलता भरी होती है, मनुष्यकी प्रीति प्रातःकालके खिले हुए फूलोंकी वहार दिखलाती है, बन्धु सब निष्कपट होते हैं, सबके चित्तमें महत्त्व भरा रहता है, और सबके आचार व्यवहार निष्कपट और निर्मल होते हैं। वे लोग मनुष्यकी बोलीमें देवताओंके मुखकी आवाज़ सुनते हैं और मनुष्यकी सारी क्रियाओंको स्वर्गीय सुख-सम्पद्का सौरभ समझकर आनन्दमें डूबे रहते हैं। उनके हिसाबसे मानव-जीवन नन्दन वनसे तोड़कर लाया हुआ पारिजातका फूल है। यदि कोई दुःसाहस कर मानव जीवनका किसी प्रकारका कलङ्कित चित्र उन्हें दिखलाये, तो वे उसे झटपट क्रूर हृदय और कठोर मनुष्य बताकर सबसे यही कहते फिरते हैं, कि उसकी कोई बात विश्वास करने योग्य नहीं है।

इधर जो लोग ठगे जाकर या और किसी कारणसे विरागकी विषैली ज्वालासे जलते हुए निन्दक बन जाते हैं, उनका हाल कुछ और ही है। उनको तो यह मानव-जीवन सदा कलङ्कसे भरा हुआ मालूम पड़ता है और मनुष्यकी एड़ीसे चोटी तक सारी देह अपवित्र और घृणित जान पड़ती है। उनका कहना है, कि मनुष्यकी आत्मा जीता जागता नरक है; हृदय विषका कभी न सूखनेवाला सोता है, दृष्टि, हास्य और रसना आदिसे

भी जहर ही टपकता रहता है तथा यह मानव जाति ऐसी खलतासे भरी हुई है, कि यह नागिनका रूप मालूम पड़ती है। इन निन्दकोंके शब्दकोषमें भद्रता, पवित्रता और सरलता आदि शब्द गूलरके फूल या गधेके सींगकी तरह अर्थ शून्य हैं। स्तावक लोग जिस प्रकार राजाओंके नाम गिनाते समय राजा हरिश्चन्द्र शिवि या युधिष्ठिर आदि महात्माओंके लेते हैं; स्त्रियोंके नाम लेते समय सावित्री, शैव्या, शकुन्तला, सीता, दमयन्ती और चिन्ता आदि पवित्रआदर्शवाली नारी कुलशिरोमणियोंके चरित्र यादकर प्रसन्नतासे खिल उठते हैं; मन्त्रदाताओंके नाम गिनाते समय वसिष्ठ या विदुर तथा धर्म प्रचारकोंके नाम लेते समय उद्धव, अक्रूर, शङ्कराचार्य या मिलेन्थन * आदिके नाम लेने लगते हैं;—उसी प्रकार निन्दकगण भी झटपट रोमके 'नीरो' और 'कैली गुला' अथवा इँगलैण्डके 'जौन' और 'जेम्स' आदि

* यह प्रसिद्ध ईसाई मत संस्कारक लूथरका प्यारा मित्र और प्रोटेस्टैण्ट मतका प्रतिष्ठापत्र था। इसके समान अद्वितीय पण्डित, अत्यन्त विनयी और कोमल स्वभाव धर्मवीर संसारमें विरले ही पैदा होते हैं। लूथरका यह दाहना हाथ था। लूथरमें यदि कुछ स्वार्थ था भी, तो यह बिलकुल ही निस्स्वार्थ था। इसके उपदेशोंसे लोगोंके हृदयपर बड़ा भारी असर पहुँचता था और असंख्य मनुष्य पोपके पापी प्रभुत्वसे परित्राण पानेके लिये लूथरके द्वारा प्रचारित धर्मकी शरणमें आ जाते थे। इसकी गिनती विदुर और उद्धवके साथ करके हमने बेजा नहीं किया है।

दर्शी बन्धु या विरक्त संन्यासीकी आँखोंमें स्नेह रस नहीं होता। इसीसे उन्हें बहुत बार अच्छा भी बुरा मालूम पड़ता है।

जो लोग प्रेमके पुजारी हैं, उन्हें मनुष्य-जीवनकी हरएक वस्तु सुन्दर मालूम पड़ती है, उनके लिये मनुष्यकी हँसीमें सरलता भरी होती है, मनुष्यकी प्रीति प्रातःकालके खिले हुए फूलोंकी बहार दिखलाती है, बन्धु सब निष्कपट होते हैं, सबके चित्तमें महत्त्व भरा रहता है, और सबके आचार व्यवहार निष्कपट और निर्मल होते हैं। वे लोग मनुष्यकी बोलीमें देवताओंके मुखकी आवाज़ सुनते हैं और मनुष्यकी सारी क्रियाओंको स्वर्गीय सुख-सम्पद्का सौरभ समझकर आनन्दमें डूबे रहते हैं। उनके हिसाबसे मानव-जीवन नन्दन वनसे तोड़कर लाया हुआ पारिजातका फूल है। यदि कोई दुःसाहस कर मानव जीवनका किसी प्रकारका कलङ्कित चित्र उन्हें दिखलाये, तो वे उसे झटपट क्रूर हृदय और कठोर मनुष्य बताकर सबसे यही कहते फिरते हैं, कि उसकी कोई बात विश्वास करने योग्य नहीं है।

इधर जो लोग ठगे जाकर या और किसी कारणसे विरागकी विषैली ज्वालासे जलते हुए निन्दक बन जाते हैं, उनका हाल कुछ और ही है। उनको तो यह मानव-जीवन सदा कलङ्कसे भरा हुआ मालूम पड़ता है और मनुष्यकी एड़ीसे चोटी तक सारी देह अपवित्र और घृणित जान पड़ती है। उनका कहना है, कि मनुष्यकी आत्मा जीता जागता नरक है; हृदय विषका कभी न सूखनेवाला सोता है, दृष्टि, हास्य और रसना आदिसे

भी ज़हर ही टपकता रहता है तथा यह मानव जाति ऐसी खलतासे भरी हुई है, कि यह नागिनका रूप मालूम पड़ती है। इन निन्दकोंके शब्दकोषमें भद्रता, पवित्रता और सरलता आदि शब्द गूलरके फूल या गधेके सींगकी तरह अर्थ शून्य हैं। स्तावक लोग जिस प्रकार राजाओंके नाम गिनाते समय राजा हरिश्चन्द्र शिवि या युधिष्ठिर आदि महात्माओंके लेते हैं; स्त्रियों-के नाम लेते समय सावित्री, शैव्या, शकुन्तला, सीता, दमयन्ती और चिन्ता आदि पवित्रआदर्शवाली नारी कुलशिरोमणियोंके चरित्र याद्‌कर प्रसन्नतासे खिल उठते हैं; मन्त्रदाताओंके नाम गिनाते समय वसिष्ठ या विदुर तथा धर्म प्रचारकोंके नाम लेते समय उद्धव, अक्रूर, शङ्कराचार्य या मिलेन्थन * आदिके नाम लेने लगते हैं;—उसी प्रकार निन्दकगण भी झटपट रोमके 'नीरो' और 'फेली गुला' अथवा इंगलैण्डके 'जौन' और 'जेम्स' आदि

* यह प्रसिद्ध ईसाई मत संस्कारक लूथरका प्यारा मित्र और प्रोटेस्टैण्ट मतका प्रतिष्ठापत्र था। इसके समान अद्वितीय पण्डित, अत्यन्त विनयी और कोमल स्वभाव धर्मवीर संसारमें विरले ही पैदा होते हैं। लूथरका यह दाहना हाथ था। लूथरमें यदि कुछ स्वार्थ था भी, तो यह बिलकुल ही निस्स्वार्थ था। इसके उपदेशोंसे लोगोंके हृदयपर बड़ा भारी असर पहुँचता था, और असंख्य मनुष्य पोपके पापी प्रभुत्वसे परित्राण पानेके लिये लूथरके द्वारा प्रचारित धर्मकी शरणमें आ जाते थे। इसकी गिनती विदुर और उद्धवके साथ करके हमने बेजा किया है।

राजाओं ; फ्रान्सकी कैथेरिना * आदि रानियों ; कासीक या मैकियावेल§ आदि स्वनाम-धन्य मन्त्री, छठे ऐलेकजेण्डर× आदि पोप नाम धारी धर्मरक्षक और 'जयोफ़रे' आदि धर्माधिकारी विचार पतियोंकी ओर इशारा कर मानव-जीवनका गन्दा चित्र दिखलाने लगते हैं। दोनों पक्षोंकी हर एक बात, हरएक दृष्टान्त और हरएक विषयमें बड़ा भारी मतभेद है ! जब इस तरहका मतभेद है, तब कार्य करनेके ढङ्गमें भेद भी हुआ ही

* कैथेरिना नामकी बहुतसी रानियाँ दुश्चरित्रा और पापीयसी हो गयी हैं ; पर यहां मतलब उससे है, जो जितनी भोग विलासकी प्यासी न थी, उससे कहीं अधिक खूनकी प्यासी थी ! यह फ्रांसके वेलोई वंशके तीसरे हेनरीकी माँ थी। इसकी दुष्टतासे कितने आदमी मारे गये, इसकी ठिकाना नहीं। याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

§ मैकियावेल इटलीका राजनीतिक मन्त्रगुरु था ; परन्तु युरोपमें जो कोई राजपुरुष, शत्रुका सर्वनाश करनेकी इच्छासे वीरधर्मको त्यागकर, असुरोचित क्रूरकर्म करनेको तुल जाता था, वही इसे गुरु मान लेता था। पर भारतके कणिक इसके भी दादागुरु थे, यह तो मानना ही पड़ेगा। काणिकके आगे तो वह राजनीतिकी पाठशालामें क ख सीखनेवाला विद्यार्थी मालूम होता है !

× छठे ऐलेक्ज़ेण्डर, पोपके सिंहासनपर बैठकर मनुष्य जाति के माथेपर बहुत बड़ा पापका बोझा लाद गये हैं। उन्होंने ऐसे ऐसे घृणित पाप किये, जिनका वर्णन करते हुए इतिहास डर जाता है, शर्मसे सिर झुका लेता है और झिझकने लगता है।

करेगा। युरोपियनोंका सुप्रसिद्ध धर्मशास्त्र बाइबिल इन निन्दकोंके हाथमें एक बड़ा भारी हथियार है। यह ग्रन्थ मानव-जीवनपर बड़ी गहरी घृणाका भाव पैदा करता है। बाइबिलके हिसाबसे मनुष्य पापकी मूर्त्ति है, पापका पुतला है, उसका आदिसे अन्ततक सब जीवन केवल पापसेही भरा हुआ है। इससे यह साफ़ जाहिर होता है, कि जिन लोगोंने यह पोथी लिखी है, उनमेंसे कोई मानव जातिके गुणोंका प्रेमी नहीं था। भारतवर्षके प्राचीन धर्मग्रन्थ, मानव-जातिकी समालोचना करनेमें, बाइबिलसे भिन्नता रखते हैं। वेदसंहितामें जो कुछ लिखा है, उससे कहीं भी यह नहीं झलकता, कि ऋषियोंको मनुष्यके प्रति घृणा या विरक्ति थी। उसमें तो सर्वत्र ही आनन्दका फौआरा छूट रहा है, जो कि मनुष्यके प्रति विश्वास और अनुरागके भावसे भरा हुआ है। प्रमाण देखना हो, तो ऋग्वेद और उपनिषदोंको उठा देखिये। ऋग्वेद और उपनिषद् आदि प्राचीन तत्त्व-शास्त्रोंकी भाषा आशा और आशीर्वादमें भी जान डालनेवाली है। इसीसे वैदिक साहित्यके अनेक स्थानोंमें शिशिर-स्नात नव कुसुमोंकी कमनीय कान्ति मनुष्यके हृदयको शीतल करती है; कहीं कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहां शुष्क, शीर्ण और कीड़ोंके खाये हुए फूलोंकी शोचनीय मूर्त्ति हमें दिखायी गयी हो। वीणापाणिके वरपुत्र, कविता-काननके सदा हरे भरे रहने वाले कल्प-वृक्ष, महाकवि वाल्मीकि उसी वैदिक महर्षि-जीवनके चरम विकास थे। वाल्मीकिका मानव-जीवन सचमुच इस मरुभूमिमें अमरावतीका प्रीति-प्रफुल्ल

नन्दन-कानन उतार लाया है। भारतीय कवि कल्पनाके आदि आचार्य या आदि साधक भारत-कवि वाल्मीकि इस कार्यमें जगत्‌में अद्वितीय और अतुलनीय हैं—अपनी उपमा वे आप ही हैं। वाल्मीकिने मनुष्य-प्रकृतिके जिन सब अलौकिक और अचिन्तनीय चित्रोंको अपनी कविताके चित्र पटपर युग युगान्तरके लिये अङ्कित कर रखा है, उन्हें देखकर महापापी असुरोंकी आंखें भी थोड़ी देरके लिये शीतल हो जाती हैं, दयासे भींग जाती हैं। वाल्मीकिकी कालसर्पिणी कैकेयी भी इस कलुष-कठोर कलङ्कित पृथ्वीमें देवता ही मालूम पड़ती है।* परन्तु वाल्मीकिके बादसे ही इस देशके सभी छोटे बड़े लेखकोंकी लिखी हुई पुस्तकोंमें चांदनीके परदे परदेमें अन्धकार तथा प्रीतिके कल कूजनके साथ ही साथ नैराश्यका हाहाकार दिखाई देता है। यहांके पुराणों, उपपुराणों और असंख्य तन्त्र ग्रन्थोंमें समागतप्राय कलियुगकी छायाकी तरह वर्त्तमान कालिक मानव जीवनकी जैसी भयानक मूर्त्ति अङ्कित की है वह आजकलकी यूरोपियन सभ्यताकी छटा दिखा देती है। उसके पास फटकते ही हृदय भय और विषादसे भर जाता है।

हम यहां यह नहीं कहना चाहते, कि हम जीवनपर अनुरक्त हैं या विरक्त, उसके स्तावक हैं या निन्दक? कहनेका न तो मौका है और न कह सकनेकी योग्यता। परन्तु जो लोग वर्त्त-

* हमने भी अपने लिखे "श्रीराम चरित" नामक ग्रन्थमें कैकेयीके चरित्रकी आलोचना करते समय उनको एक आदर्श महिला प्रमाणित किया है। अनुवादक।

मान युरोपीय सभ्यताके अग्रनायक हैं, आधुनिक संसारके चिन्ता-जगत्‌में मनुष्योंके पथप्रदर्शक हैं, उन्होंने बाहरसे अनुराग या विराग कुछ भी न दिखाते हुए किस तरह कैसी बातें मानव जीवनके बारेमें कही हैं और किस तरहका संस्कार लेकर मानव जीवनकी ओर दृष्टि फेरी है, उन्हीं सब बातोंकी हम यहां संक्षेपमें आलोचना करेंगे। साथ ही जो लोग युरोपीय सभ्यताका ही कोई न कोई आदर्श लेकर अपना जीवन गठन करते और अपने गुण तथा अपनी महिमासे नित्य ही नयी नयी तरङ्गोंमें बहते दिखाई देते हैं, नीचे जो कुछ लिखा गया है, उसमेंसे कौनसी बात उन्हें पसन्द है। इसका फैसला हम उन्हींपर छोड़े देते हैं।

युरोपीय तत्त्वदर्शियोंमेंसे किसी किसीका कहना है, कि मानव-जीवन स्वभावतः ही एक बड़ा भारी वाणिज्य-क्षेत्र है। इसलिये सभी मनुष्य छोटे बड़े बनिये ही हैं। दो और लो अथवा लो और दो यही यहांकी प्रधान बात है। यही सब नीतियोंका मूल है। राज-नीति, धर्म-नीति, समाज-नीति आदि सभी नीतियां वाणिज्य-शास्त्रका एक एक अध्याय है। क्या पति-पत्नीमें, क्या मालिक-नौकरमें, क्या गुरु-शिष्यमें, क्या पिता-पुत्रमें, क्या राजा-प्रजामें, क्या भाई भाईमें, जहां कहीं किसी मनुष्यका किसीके साथ सम्बन्ध हुआ, वहीं वाणिज्य व्यवहार आ घुसा। जो नहीं देता या नहीं दे सकता, वह इस बाजारमें न तो कुछ पाता है, न पा सकता है। यहां तो जो कुछ लेना

चाहो, उसके लिये पहले मूल्य देना पड़ेगा। यहां मोल बिना कोई माल नहीं मिलता। यदि पूरा दाम दो, तो सभी सुलभ और दुर्लभ वस्तुएं सहजही पा जाओगे। यदि दाम देनेकी नीयत या सामर्थ्य न हो, तो तुम खुद चाहे सोनेके ही सिरजे हुए क्यों न हो, स्वर्गके पारिजातकी तरह अलौकिक ही पदार्थ क्यों न हो, तुम्हें अवश्य ही निराश होकर खाली हाथ घर लौट जाना पड़ेगा।"

इस पृथ्वीमें पद, प्रतिष्ठा, सम्मान, समृद्धि, यश, कीर्ति जो कुछ चाहो, सब दाम देकर पा सकते हो। यह सब तो मोलके सौदे हैं बिक्रीका माल है! बिना दाम या बदलेमें कोई चीज दिये, कुछ भी नहीं मिल सकता। किसीको किसी ऊंचे पदपर या बड़ी प्रतिष्ठा पाते देखकर मन ही मन कुढ़ और जल जाते हो। लोग भी उसके आगे हाथ बांधे खड़े रहकर या उसकी तारीफोंके पुल बांधकर तुम्हारी ईर्ष्या और उसकी प्रतिष्ठाको नित्य बढ़ाते चले जाते हैं। कोई तो उससे आंखोंमें आंसू भरे दीन होकर प्रार्थना करता है, कोई उसकी डांट डपटके डरसे दूर ही खड़ा हो थर थर कांप रहा है और कोई उसे अपनेसे बढ़कर भाग्यवान् समझता हुआ उसकी ओर उसके भाग्यको ईर्ष्याभरी दृष्टिसे देखा करता है; पर उस अभागे "भाग्यवान्‌ने" जितना बढ़कर मूल्य देकर यह पद और प्रतिष्ठा पायी है, इतना सम्मान और समृद्धि प्राप्त की है; क्या तुमने कभी इसका भी [illegible] किया है [illegible] उसने बदला कुछ और ही मूल्य दिया होगा और अपनी सुख-शान्ति

और, परन्तु पद या प्रतिष्ठाके लिये जिस देशमें, जिस युगमें, जिस प्रकारका मूल्य ठहराया हुआ रहता है, वह दिये बिना ये दोनों हाथ नहीं आते।

यहांकी मित्रता और प्रतिष्ठाका भी यही हाल है। मित्रताका भी मूल्य है और प्रीतिका भी। जो मूल्य नहीं दे सकता उसे कौन पूछता है? उसे कौन प्यार करता है? उसे कौन अपना मित्र कहकर गले लगाता है? जिसके द्वारा किसी तरहका सुख सम्मान पानेकी आशा नहीं, जो तुरत या किसी दिन और ही अपना कोई मतलब पूरा नहीं कर सकता, जिससे किसी तरहकी भलाईकी उम्मेद नहीं, ऐसे आदमीको निस्स्वार्थ प्रीतिकी पूजा करनेको भला कितने आदमी तैयार होंगे? कितने आदमी लाभ या लोभके प्रबल ज्वारमें वाणिज्यकी नौकाको न तैराते हुए, मित्र-धर्मरूपी स्वप्न-सुखकी खोजमें उलटो धारमें जानेको तैयार हो सकते हैं?

जो उदाशय और उदारमति सहृदय व्यक्तिगण स्नेह और ममताके कमनीय माधुर्यके कारण जीव-हृदयके उपास्य होने योग्य हैं, वे लोग वणिक्-धर्मकी चतुराईके प्रभावसे, संसारके वाणिज्यमें, सैकड़ों बन्धुओंसे घिरे रह कर, सबसे आदर नहीं पाते, इसका क्या कारण है? क्या संसारमें ऐसा होही नहीं सकता? जिनके चित्तमें सदा प्रीति और महत्वका निवास रहता है, जिनकी आंखें सदा प्रतिभाकी ज्योतिसे जगमगाती रहती हैं और जिनका चरित्र परोपकार-व्रतका खासा इतिहास

ही है, वे अज्ञात-वनवास करते हुए भूखों मरते रहते हैं और जो पूरे बनियेकी तरह होशियार और बेमुरौअत आदमी दया, धर्म, उदारता और परार्था प्रीतिको जहन्नुम भेजकर पिशाचकी तरह खिलखिलाकर हँसते रहते हैं, पृथ्वीके प्रेम-व्यवसायी उन्हींके गलेमें प्रेमकी पुष्प-माला पहनाया करते हैं, उनके बन्धुगण बन्धुत्वकी स्वर्गीय सम्पत्ति लाभ करनेकी आशासे दिनरात उन्हें ही घेरे रहते हैं, कविलोग उन्हींकी तारीफ़में कवितायें बनाया करते हैं, और स्नेहसे भरे हुए आशीर्वादक लोग उन्हें आशीर्वाद देनेके लिये सदा दाहिना हाथ उठाये ही रहते हैं। इसका कारण क्या है? क्या संसारमें इस तरहकी घटनाएँ कम होती हैं यह सब देख-सुनकर भला कौन इस बातको अस्वीकार करेगा, कि मानव-जातिका जो कुछ विकास दिखाई देता है; वह वाणिज्य-नीतिका आश्चर्यजनक इतिहास है और जो बनियोंमें भी पूरे बनिये हैं, वे ही सबसे बड़े आदमी माने जाते हैं। उनकी बुद्धि मानव समाजके तौलनेका काँटा है और उनके हृदयके दोनों भाग उस काँटेके दो पलड़े हैं!

युरोपके एक और श्रेणीके चिन्ताशील पुरुषोंका कहना है, कि मानव-जीवन एक अनन्तपट-पूर्ण अपूर्व नाटकशाला है और सभी मनुष्य इसके स्वभावसिद्ध नट हैं। यह मनुष्यके लिये न तो दोषकी बात है, न निन्दाकी, बल्कि यह तो मनुष्य-जीवनका अवश्यम्भावी फल है। इन पण्डितोंका यह भी कहना है, कि मनुष्य समाजका जैसा विकास हुआ है, वह जिस तरीकेपर बना है, मनुष्यकी सामाजिक नीतिने, सामाजिक

मनोज्ञके इन सदस्य लाड़मार्ग जैसी मूर्ति धारण कर ली है, इससे मनुष्य, इन्हीं मददगारों की, लाचार होकर कपटता सीखने लगता है, क्योंकि पूरा कपटी होनेसे ही लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और कपटताकी दो चार सीढ़ियाँ और चढ़ जानेपर तो वह सांसारिक उन्नतिकी ऊँची अटारीपर पहुँच जाता है। इसी लिये इस मनोज्ञनाधीन, परिगृहीत, और प्रचलित कपटताके उभारमें कोई दाता है, कोई याचक है, कोई याजक है, कोई यजमान है, कोई धार्मिक है, कोई ढोंगी है, कोई गृही है, तो कोई संन्यासी है। कोई सोनेके सिंहासनपर बैठकर, सिरपर मुकुट रखे, राजाका पद करता है, तो कोई मेराबोंकी* तरह राजविद्रोही होकर राजाके दण्ड-मुकुट, वेशभूषा, स्वत्वाधिकार आदि छीननेके लिये, प्रजाके स्वत्व और अधिकारके नामपर हृदयके ज्वालामुखी पर्वतके भीतरसे क्रोधकी आग उगला करता है। कोई गुरु बनकर

* यह बड़ा भारी पण्डित और वक्ता था। फ्रांसकी राज्य-क्रान्तिका प्रधान नायक न होनेपर भी उसका एक अगुआ जरूर था। यह बालकपनमें पितृद्रोही, जवानीमें राजद्रोही और अन्तमें विश्वद्रोही तथा ईश्वरद्रोही बना रहा। पर पिता या ईश्वरके द्रोहमें यह जैसा अकपट बना रहा, वैसा राजद्रोहमें न रह सका। राज्यक्रान्तिके शुरूमें यह उभाड़ने वाली वक्तृताएँ दे देकर लोगोंमें जोश भरा करता था, पर पीछे तो राजासे पेन्शन पाकर विद्रोहको दबानेमें ही लग गया था! ऐसे स्वदेश-भक्त नेता हमारे देशमें भी बहुतसे पैदा हो गये हैं।

अपने मन और बुद्धिसे परे किसी अज्ञात, अश्रुत और अचिन्तित विषयमें लोगोंको तरह तरहका ज्ञान सिखलाता है, तो कोई गुरुका योग्य चेला बनकर उस ज्ञानलोकके स्पर्श-मात्रसे ही शुकदेवकी तरह गम्भीर बन बैठता है। नाटकके खिलाड़ी जिस तरह झूठी हंसी हंसते, झूठा रोना रोते, झूठा स्नेह दिखाते हुए शत्रुके भी गले लग जाते हैं, मिथ्या प्रेम दिखाते हुए आँखोंमें आँसू भर लाते, महा डरपोक होते हुए अपने गर्जन-तर्जनसे सब दर्शकों-को चौंकाते हुए भीष्म या भीमसेनके अवतार बन जाते हैं और चटुल-नयना, वार-विलासिनी भी पवित्र-हृदय डेसडिमोनाका * पार्ट करती है, शाइलक* मनुष्यका प्यासा भी पुराण-प्रसिद्ध राजा शिबिकी तरह पूजनीय व्यक्तिका पार्ट करता है तथा जीवोंको दुःख देनेमें ही जिसे मज़ा मालूम होता है, जो महा दुष्ट, पापी

* डेसडिमोना शेक्सपियरकी मानसी कन्या है। वह पति-प्रेम, पति-परायणता आदि स्त्री-धर्मोंके कारण रमणी कुलकी शिरो-मणि थी। दूसरेके बहकावेमें पड़कर जब उसके पतिने उसकी जान लेनी चाही, तब भी वह पतिकी जीवनरक्षाके लिये सच न बोली। इस सच न बोलनेसे उसे पाप हुआ या पुण्य, यह तो भगवान् ही जानें; पर उसका हृदय प्रेम, स्नेह और दयासे कैसा भरा हुआ था, यह सोचकर मन आनन्दसे भर उठता है।

*शाइलक बड़ा भारी सूदखोर यहूदी था। इसने अपने रुपयेके बदलेमें कर्ज़दारके कलेजेका मांस लेना चाहा था, परन्तु अन्तमें आप ही जालमें फँस गया। आजकल भी उसकेसे कट्टर सूद-खोरोंकी दुनियामें कमी नहीं है।

और जीवोंको सुख-शान्ति नष्ट करनेवाला यम भी जीमूतवाहनका * पार्ट लेकर विपदुमें पड़े हुए प्राणीकी रक्षाके लिये अपनेको विपद्के मुंहमें डालनेके लिये तैयार दिखलाई देने लगता है; ठीक उसी तरह संसारके लोग जो वे नहीं हैं, वही बनते हैं अर्थात् लोगोंको जँचाया चाहते हैं। ये सचको झूठ और झूठको सच कर दिखाते हैं, हृदयमें दुःख रहते हुए ऊपरसे सुखी हँसी हँसते हैं, मन-ही-मन खुश होते हुए भी दिखलानेके लिये आंखोंमें आंसू भर लाते हैं। इस तरह अपना-अपना नैपुण्य दिखलाकर और अपने खेलनेको जो पार्ट मिला था, उसे हमने किस खूबीसे अदा किया, इसकी आलोचना करते हुए नट लोग अभिनय-गृहके पीछे नेपथ्यमें जाकर अपना नकली वेश उतार देते हैं, वैसे ही मनुष्य भी अपनी एकान्त कोठरीमें जब अकेला बठा रहता है, तब उसमें बनावटकी बू नहीं रहती।× पर भाग्यका भी कुछ ऐसा फेर है, जिसका नेपथ्य ज़रा भी खुला हुआ है, वही मनुष्य-समाजमें निन्दित समझा जाता है।

यह जो तुम्हारे पास बैठी हुई धीरे-धीरे मुस्कराकर मीठे और

*जीमूत वाहन 'नागानन्द' नाटकका नायक है। वह बड़ा ही धर्मात्मा और परोपकारी था। उसने विपद्में पड़े हुए प्राणीकी रक्षाके लिये अपनी जान न्योछावर कर दी थी। उसकी कथा पढ़नेसे आज भी चित्तमें पुण्यका प्रवाह जारी हो जाता है।

× "A man is most sincere, when he is most alone."

मनोहर शब्दोंमें तुमसे बातें कर रही है, पल-पलमें बीसों बार प्रिय सम्बोधनों द्वारा तुम्हारे प्राणोंको शीतल कर रही है, वह मिथिलाधिराजनन्दिनी जानकीकी अनुकारिणी है या मिस्रकी रानी क्लियोपेट्राकी* छाया-रूपिणी है,-यह भला कैसे मालूम हो सकता है? पर यदि मालूम करनेकी इच्छा हो, तो हमारे साथ एक बार नेपथ्यमें चलो। वह जो ध्यान लगाये, आंखें मूंदे, धीर गम्भीर युवा निर्वाणकी खोजमें लगे हुए बुद्धदेवकी तरह चुपचाप अचल होकर बैठा हुआ है और क्षण क्षणमें आँखोंके इशारे द्वारा तुम्हें लोक परलोक, साधु-लोक और स्वर्ग-लोककी तरह तरहकी बातें बतला रहा है, उसका अपना हृदय इस समय किस लोककी सैर कर रहा है, ज़रा इसे भी तो सोचो। ये जो गूढ़ार्थ-दर्शी देश-हितैषी महात्मा, ऊँचेसे मञ्चपर खड़े हो, हाथ हिला हिलाकर लेक्चर झाड़ रहे हैं और सब किसीको देशके लिये विषय, वैभव, प्राण, मान और हृदयका गरमा-गरम खूनतक दे डालनेके लिये उपदेश दे रहे हैं; उन्होंने आप कभी किसीके लिये एक बूँद आँसू भी ख़र्च किया है या नहीं, ज़रा यह भी तो मालूम कर लो। जैसे और दस जने बहुरूपियेकी तरह नये नये रूप निकालते रहते हैं, वही हाल इनका भी है। कम पढ़े-लिखे या निर्बोध मनुष्य उन्हें देख देखकर मोहित होते और उनकी बातें सुनकर प्रेमाश्रुकी धारा बहाते हैं; पर जिसके आँखें हैं वह तो यह सब

* मिस्रकी राजकन्या क्लियोपेट्रा, रूप, गुण और राजनीतिक महिमाके कारण रमणीकुलमें अग्रगण्या थी। वह पति हीना और पुत्रवती थी और प्रेमकी नाटकमें आत्म-सुखाभिलाषिणी होनेपर भी उसने अन्तमें आत्महत्या कर ली थी।

देख देखकर मनही मन जलता रहता है। मानव-जीवनको यह दुःखं देख, बड़ा कष्ट होता है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु यह कल्पना सभ्यताके अभिमानमें डूबे हुए युरोपमें तो आम बात है। इसीलिये बहुतसे लोग समझते हैं कि कोरी कल्पना ही नहीं है, बल्कि स्वभावानुगत और शास्त्र-सिद्ध बात है।

युरोप मतवाद वर्तमान युगके वैज्ञानिकोंका है। इनके विचारसे मानव-जीवन एक बड़ी ही भयानक संग्राम-भूमि है और मनुष्यके जन्मसे लेकर मरण-पर्यन्तका इतिहास एक लम्बी चौड़ी युद्ध-कथा ही है। कभी इनके साथ, कभी उसके साथ, इस तरह किसी न किसीके साथ जमकर रगड़ा झगड़ा चलता ही रहता है। अन्तमें कोई लहूलुहान शरीर लिये भूमिपर गिर पड़ता है, और कोई गलेमें विजयकी माला पहने अपनी जयध्वनिसे दसों दिशाओंको आलोड़ित करता है। जल, वायु, अग्नि आदि भौतिक पदार्थ, बाघ, सिंह, भैंसा और गैंड़ा आदि जंगली जानवर और परिचित अपरिचित, आत्मीय अनात्मीय सभी श्रेणीके मनुष्य, मनुष्यके स्वाभाविक वैरी हैं। इसलिये सबको छल-बल कौशलसे परास्तकर अपनी धाक जमाना ही मनुष्य-जीवनका एकमात्र कर्तव्य है और यही प्रकृतिकी आज्ञा है!

जैसे किसी पेड़से एक फल टपक पड़ते ही सैकड़ों कौए कांव-कांव करते हुए दौड़ पड़ते हैं अथवा एक टुकड़ा मांसका कुछ दूरपर फेंक देनेसे उसे खानेके लिये सैकड़ों स्यार-कुत्ते आपसमें लड़ मरते हैं, वैसे ही मनुष्योंमें भी खाने, पीने, ओढ़ने,

पहननेकी सुविधा तथा मान बड़ाई, जगह जमीन, सुख सम्पद्, प्रताप प्रतिष्ठा और प्रभावप्रतिपत्ति लाभ करनेके लिये आपसमें खूब चोटें चलती हैं। इस तरहका विरोध आप एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यका, एक परिवारसे दूसरे परिवारका और एक जातिसे दूसरी जातिका सब जगह देख पायेंगे। जो मनुष्य, जो परिवार या जो जाति, इस विरोध-विघट्टनसे विकम्पित न होकर स्थिर भावसे अपनी जगहपर डटी रह जाती है, वही इस संसारमें टिकने पाती है और जिसने इसके आगे सिर झुका दिया या हार मान ली, उसे तो गया गुजरा ही समझना चाहिये। मनुष्य-समाजकी जो इतनी उन्नति हुई है, उसका कारण यह विरोध ही है। इसीसे शिक्षा, सभ्यता और मानवीय शक्तिका विकास होता है। यदि यह विरोध मिट जाये, तो वसुन्धराका जो शिल्पाम्बर—विभूषित सुन्दर वेश आज दिखाई देता है, वह न रह जायगा और वह फिर जंगली जीवोंका ही घर हो रहेगी। इतनी बड़ी शक्तिके लोप होने पर तो सुख, समृद्धि, शोभा सम्पद्—सबका बण्टाधार हो जायेगा।

इस मतके माननेवाले न्यायको शक्तिकी नींव नहीं मानकर शक्तिको ही न्यायकी नींव मानते हैं। ये लोग तो बल पौरुष दिखाकर कोई काम करलेनेवालोंका ही जन्म सार्थक समझते हैं। * रूसने जो पोलैण्डको हत्यारे राक्षसकी तरह टुकड़े टुकड़े करके उसको अपनी डाढ़ोंमें दबा लिया, युरोपकी भिन्न भिन्न

* "The Good Old Rule—the simple plan,
For him to take and keep, who can,"

जातियोंने जो जगह जगह जाकर वहांके आदिम निवासियोंको एक दम ही नष्ट कर दिया या मार भगाया, आधुनिक अमेरिकन लोगोंने जो अफ्रिकावालोंको जानवरोंकी तरह कुचल डाला और जर्मनोंने जो अलसास और लोरेनके हज़ारों निवासियोंको पैरोंतले रौंदकर उन प्रान्तोंको अपने अधिकारमें कर लिया, उसे ये लोग बुरा नहीं समझते। कारण,यह सब शक्तिका प्रभाव है, शक्तिसे जो कुछ किया है, सब ठीक ही है। "जिसकी लाठी उसकी भैंस!"

हमने ऊपर युरोपके तीन तरहके आदमियोंके विचार संक्षेपमें दे दिये, पर अक्लमन्दोंके लिये यह इशारा भी काफी है! अब हम पूछते हैं, कि हे सौम्य! हे सुखप्रिय! हे प्रियदर्शन पाठक! हे रसके रसिक और भावके भावुक! हे संसार सर्वस्व धीर! तुम इन विचारोंमेंसे किसके अनुयायी हो, किस पथके पथिक हो, क्या तुमने कभी इसका भी विचार किया है? अथवा सबके सब बातोंको समयके अनुसार अपने मतके अनुकूल बनाकर योंही पानीमें बढ़े चले जाते हो? तुम सौहार्दके बाजारके बनिये, सामाजिकतामें नटकेसे खिलाड़ी, और शिक्षा तथा परीक्षाके कर्म-क्षेत्रमें योद्धा हो, पर क्या यही तुम्हारा नित्य जीवन है? अथवा तुम्हारे हृदयके अन्दर छिपी हुई प्रीति और भक्ति आदि देववृत्तियां, जीवनमें कभी कभी दूरसे दिखाई देनेवाली शैल-शोभाकी भांति एक उच्चतर जीवनका जो आदर्श दिखला देती हैं, उसीका अनुसरण करना, तुम्हारा सच्चा जीवन है?

मस्त रहते हैं। नहीं, तो वे आगको देखकर जलनेवाले पतङ्गकी तरह अपने दिलोजिगर, दीनोईमान—सबको जलती भट्ठीमें झोंकनेके लिये क्योंकर तैयार हो जाते हैं!

और देखो, जो लोग प्रीति और सत्यके बलसे बलवान् और न्यायवान् हैं—जो लोग उदार प्रीति और उच्चतर सत्यकी पवित्र ज्योतिसे अनिर्वचनीय सामर्थ्य लाभकर, शङ्कराचार्य आदि महापुरुषोंकी भाँति सांसारिक जीवनके विषैले विकारोंका संशोधन करने अथवा धर्मकी विशुद्ध नींव डालनेके लिये उठ खड़े होते हैं, उनका प्रधान लक्षण क्या है? यही, कि वे निर्भीक, निरुत्कण्ठ, द्रूक्‌पात-शून्य और स्तुति-निन्दासे परे होते हैं। लोग भला कहें या बुरा, करोड़ों कण्ठोंसे यश गाया जाये या अयुत कण्ठोंसे निन्दा की जाये, वे इसकी कोई परवा नहीं करते। सच पूछो, तो पृथ्वीके महापुरुषोंने जितनी निन्दा और गाली सुनी है, जितना कलङ्क सिरपर उठाया है, उसका सौवाँ हिस्सा भी यदि आजकलके साधुओंको नसीब हो, तो ये आग ही बरसा दें। पर महात्माओंके निकट तो वह निन्दा इसी तरह आकर चली जाती है, जैसे कोई नदी बड़े वेगसे आकर पहाड़से टकरा मनमारे दूसरी राह चली जाती है, पहाड़ उसकी टक्करसे ज़रा भी नहीं [illegible] निन्दा और कलङ्कके सिवा आपद् [illegible] भय तो इन महापुरुषोंकी प्रतिभामयी [illegible]। जो लोग धर्म, प्रीति या [illegible] संसारभरके मनुष्योंके

कष्टोंको सोचते हुए भी पवरा उठती है। एक तो पृथ्वीकी समस्त सम्पदाओंको ज्ञान द्वारा प्राप्त होनेवाली दैवी सम्पदके सामने तुच्छ समझकर तत्त्वसमुद्रमें डूब रहा है और दूसरा एक खिलौना पाकर उसे ही संसारभरकी शिक्षासे, दुनियाभरके धर्मोंसे, मूल्यवान् समझकर उसी खिलौनेको लेकर मस्त हो बैठा रहता है। परन्तु इन दोनोंके जीवनमें इतना भेद रहते हुए भी वर्तमान कालका विज्ञान कहता है, कि ज्ञान और अज्ञान एकही चीज़ है। जो ज्ञान रूपी पर्वतके सबसे ऊंचे शिखर पर जा पहुंचे हैं, वे भी अन्तमें यही कह उठते हैं, कि मैं कुछ भी नहीं जानता और जिसे लोग भले बुरेके ज्ञानसे शून्य, मनुष्योंमें पशु समझकर उससे घृणा करते हैं, उसकी भी अन्तिम बात यही है, कि वह कुछ समझता बूझता नहीं। ज्ञानकी प्रान्त-रेखामें इस प्रकार दोनों ही बराबर हैं। वैदिक समयके आचार्यों-से लेकर यूनानके सुक़रात, जर्मनीके स्पिनोज़ा, फ्रान्सके सेएट सायमन, अमेरिकाके एमरसन और इंग्लैण्डके कार्लाइल, मिल और स्पेन्सर आदि मनुष्य समाजके अग्रगण्य मनस्वियोंने भी यही कहकर अतृप्त हृदय और भिन्न भिन्न भावोंसे विलाप किया है, कि हम कुछ भी न जान सके। और जिन अभागे मूर्खोंकी जिन्दगी यन्त्रोंकी तरह नाचते ही बीती, जिनके लिये सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय गेंदका खेल है ... गंभीर-तम दुःख और अति गम्भीर वेदना ... रहते हैं, उन्होंने भी अपनी इस ... दे दी, कि वे कुछ भी न समझे

दिगन्त-मिलन

पूरब और पच्छिम, उत्तर और दक्खिन ये दिशाएँ देखनेमें तो बड़ी दूर दूर मालूम पड़ती हैं। दिङ्-मण्डलके एक प्रान्तमें पूर्व, एकमें पश्चिम, एकमें उत्तर और एकमें दक्षिण है। बीचमें अनन्त व्यवधान है। पर बुद्धि जहाँ दिगन्तकी कल्पना करती है, गोलककी उस कल्पित प्रान्त रेखामें पूर्व और पश्चिम परस्पर प्रणय-चुम्बन करते हैं और उत्तर तथा दक्खिन एकसे प्रतीत होते हैं।

नीति जगत्में भी ऐसे दिगन्त-मिलनके बहुतसे उदाहरण देखनेमें आते हैं। ज्ञान और अज्ञान नैतिक दिङ्मण्डलके दो प्रान्तोंमें हैं। ज्ञानका नाम प्रकाश और अज्ञानका नाम अन्धकार है। ज्ञानसे मनुष्यको नया जन्म मिलता है और अज्ञान उसे जन्मान्ध बना देता है। इन दोनोंमें इतना भेद है, कि ज्ञानीजन अज्ञानियोंको ज्ञानालोकवर्जित दुर्भाग्य मनुष्य कहते और उसे एक प्रकारका जन्तु ही समझने लगते हैं। एक जगत्के आदि तत्त्व किंवा वर्त्तमान शक्ति-प्रवाहका कारण ढूँढ़नेमें मस्त है, तो दूसरा अपने तत्काल करने योग्य ज़रूरी कामोंकी ओरसे भी उदासीन बना रहता है। एककी दृष्टि कालका आवरण भेदकर, पृथ्वीके परदे परदेमें अथवा नक्षत्रमण्डलके तारे तारेमें विश्वसृष्टिके इतिहासका पाठ करती है और दूसरेकी जड़बुद्धि महज़ मामूली

वार्तोको सोचते हुए भी घबरा उठती है। एक तो पृथ्वीकी समस्त सम्पदाओंको ज्ञान द्वारा प्राप्त होनेवाली दैवी सम्पद्के सामने तुच्छ समझकर तत्त्वसमुद्रमें डूब रहा है और दूसरा एक खिलौना पाकर उसे ही संसारभरकी शिक्षासे, दुनियां भरके कामोंसे, मूल्यवान् समझकर उसी खिलौनेको लेकर मस्त हो हँसता रहता है। परन्तु इन दोनोंके जीवनमें इतना भेद रहते हुए भी वर्त्तमान कालका विज्ञान कहता है, कि ज्ञान और अज्ञान एकही चीज़ है। जो ज्ञान रूपी पर्वतके सबसे ऊंचे शिखर पर जा पहुँचे हैं, वे भी अन्तमें यही कह उठते हैं, कि मैं कुछ भी नहीं जानता और जिसे लोग भले बुरेके ज्ञानसे शून्य, मनुष्योंमें पशु समझकर उससे घृणा करते हैं, उसकी भी अन्तिम बात यही है, कि वह कुछ समझता बूझता नहीं। ज्ञानकी प्रान्त-रेखामें इस प्रकार दोनों ही बराबर हैं। वैदिक समयके आचार्यों-से लेकर यूनानके सुक़रात, जर्मनीके स्पिनोज़ा, फ्रान्सके सेएट साइमन, अमेरिकाके एमरसन और इंग्लैण्डके कार्लाइल, मिल और स्पेन्सर आदि मनुष्य समाजके अग्रगण्य मनस्वियोंने भी यही कहकर अतृप्त हृदय और भिन्न भिन्न भावोंसे विलाप किया है, कि हम कुछ भी न जान सके। और जिन अभागे मूर्खोंकी जिन्दगी बन्दरोंकी तरह नाचते ही बीती, जिनके लिये सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय गेंदका खेल है, मनुष्य-हृदयका गंभीर-तम दुःख और अति गम्भीर वेदना सुनकर भी जो हँसते ही रहते हैं, उन्होंने भी अपनी इस अक्लसे इसी बातकी गवाही दे दी कि वे कुछ भी न समझे।

इसी प्रकार तपस्यामें लगे हुए योगी और तृष्णामें डूबे हुए भोगी अथवा सर्वसाधारणके सुख और स्वत्त्वका पोषण करनेवाले नीति-धर्मके प्रवर्त्तक धीर और नीति तथा सामाजिक शान्तिके चिरविरोधी असुर-वीरमें देखनेपर कोई समानता नहीं मालूम होती। जल और स्थलमें, गरमी और सर्दीमें जितना फ़र्क़ है, इनमें उससे भी अधिक फ़र्क़ मालूम पड़ता है। कहाँ तो तपस्या या योगकी अमृतमयी पवित्रता और कहाँ पाशविक पिपासाकी प्रदाहमयी प्रमत्तता! कहाँ शान्तिकी निर्मल सुधा और कहाँ अशान्तिका ज्वालामय विष! कहाँ सारे संसारके मनुष्योंके मंगलके लिये अश्रु विसर्जन और कहां अमङ्गलके अवतारकी तरह मानव समाजका कलेजा काट लेना और हड्डी मांस चवाना! एक देवताकी भांति हाथ उठाये स्नेहभरे हृदयके साथ मनुष्यको आशीर्वाद कर रहा है और जो बुराई करता है, उसकी भी भलाई करता है, जो क्रोधसे मुँह बिगाड़कर जली कटी सुनाता है, उसे भी प्रीतिसनी मीठी मीठी बातें सुनाकर उपदेश देता हुआ उसे मनुष्यत्वका उच्चतम आदर्श दिखलाता है और दूसरा, राक्षस या भूतकी तरह दाँत पीसता हुआ, आशीर्वादकी जगह शाप देता है और 'अमङ्गल! तू ही मेरा मङ्गल हो!' * ऐसा कहता हुआ असुर दर्पसे भौंहें टेढ़ी कर अपनी भयङ्कर मूर्त्ति दिखला रहा है। एक तो महत्त्वकी पूजाके प्रचार और मनुष्य-निष्ठ प्रकृत महिमाका गौरव बढ़ानेके लिये अपने हृदयका रक्त दान करनेको तैयार रहता है और दूसरा,

उन महत्त्वके मस्तकपर पदाघात कर, विकृत लालसासे अन्धे होकर अपने हृदयसे सारी सुकुमार वृत्तियोंको जड़ मूलसे उखाड़ फेंकता है। एक तो दयाके सुकोमल स्पर्शसे पिघलकर, अपने प्राणोंको दयाकी सौ सौ धाराओंमें संसारको बहाये लिये जाते हुए, सैकड़ों हजारोंके प्राण शीतल करता है—जहाँ रोग हो, वहाँ औषध देकर; जहाँ शोक हो, वहाँ समझा बुझाकर; और जहाँ विपद् हो, वहाँ साक्षात् साहस और धैर्यकी मूर्त्ति बनकर दिखाई देता है; अथवा जगत्के दुःख और पापके भारको हटानेके लिये एकसे सहस्र होकर सहस्राधिक हृदयोंको एक सूत्रमें बांध देता है और इस असाध्यका साधन करनेके लिये आगमें कूद पड़ने और फांसीपर लटक जानेको तैयार हो जाता है, जिसे देखकर धूलमें लोटनेवाले मनुष्य धर्मकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति और मूर्त्तिमती मानुषी शक्तिके दर्शन करते हैं। इधर दूसरा, कब, किस तरह, किसके हृदयमें निर्दय होकर छुरा मार दूंगा—इसी सोचमें पड़ा हुआ है। यह रोगीका रोग, शोकाकुलका शोक और भी बढ़ा देता है, विपदमें पड़े हुओंके सिरपर और भी ग़ज़ब ढा देता है और बुद्धिके फेरसे या शैतानी हरकतके कारण दिनको रात और रातको दिन समझता हुआ, अपनी प्रपञ्चमें पड़ी हुई आत्माको ही समाजका एकमात्र पूज्य पदार्थ मानता है। अपनी इस क्षुद्रता और क्षुत् पिपासाके सामने यह धर्म, नीति, इहलोक, परलोक और सब कालके साथी अपने अध्यात्म जीवनको ही नष्ट कर डालनेका यत्न करता है। परन्तु कैसा

इसी प्रकार तपस्यामें लगे हुए योगी और तृष्णामें डूबे हुए भोगी अथवा सर्वसाधारणके सुख और स्वत्त्वका पोषण करनेवाले नीति-धर्मके प्रवर्त्तक धीर और नीति तथा सामाजिक शान्तिके चिरविरोधी असुर-वीरमें देखनेपर कोई समानता नहीं मालूम होती। जल और स्थलमें, गरमी और सर्दीमें जितना फ़र्क़ है, इनमें उससे भी अधिक फ़र्क़ मालूम पड़ता है। कहाँ तो तपस्या या योगकी अमृतमयी पवित्रता और कहाँ पाशविक पिपासाकी प्रदाहमयी प्रमत्तता! कहाँ शान्तिकी निर्मल सुधा और कहाँ अशान्तिका ज्वालामय विष! कहाँ सारे संसारके मनुष्योंके मंगलके लिये अश्रु विसर्जन और कहां अमङ्गलके अवतारकी तरह मानव समाजका कलेजा काट लेना और उसका मांस चबाना! एक देवताकी भांति हाथ उठाये स्नेहभरे हृदयके साथ मनुष्यको आशीर्वाद कर रहा है और जो बुराई करता है, उसकी भी भलाई करता है, जो क्रोधसे मुंह बिगाड़कर खरी कटी सुनाता है, उसे भी प्रीतिसनी मीठी मीठी बातें सुनाकर उपदेश देता हुआ उसे मनुष्यत्वका उच्चतम आदर्श दिखलाता है और दूसरा, राक्षस या भूतकी तरह दाँत पीसता हुआ, आशीर्वादकी जगह शाप देता है और 'अमङ्गल! तू ही मेरा मङ्गल हो!' * ऐसा कहता हुआ असुर दाँत और पंजे बढ़ाकर अपनी भयङ्कर मूर्त्ति दिखला रहा है। एक तो मनुष्यकी पूजाके प्रचार और मनुष्य-शिशु प्रकृत महिमाका गौरव बढ़ानेके लिये अपने हृदयका रक्त दान करनेको तैयार रहता है और दूसरा,

र महत्त्वके मस्तकपर पदाघात कर, विकृत लालसासे अन्धे कर अपने हृदयसे सारी सुकुमार वृत्तियोंको जड़ मूलसे खाड़ फेंकता है। एक तो दयाके सुकोमल स्पर्शसे पिघलकर, पने प्राणोंको दयाकी सौ सौ धाराओंमें संसारको बहाये लिये ते हुए, सैकड़ों हजारोंके प्राण शीतल करता है—जहाँ रोग , वहाँ औषध देकर, जहाँ शोक हो, वहाँ समझा बुझाकर, ौर जहाँ विपद् हो, वहाँ साक्षात् साहस और धैर्यकी मूर्त्ति नकर दिखाई देता है; अथवा जगत्‌के दुःख और पापके भार- ो हटानेके लिये एकसे सहस्र होकर सहस्राधिक हृदयोंको एक त्रमें बाँध देता है और इस असाध्यका साधन करनेके लिये ागमें कूद पड़ने और फांसीपर लटक जानेको तैयार हो जाता है, जिसे देखकर धूलमें लोटनेवाले मनुष्य धर्मकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति और मूर्त्तिमती मानुषी शक्तिके दर्शन करते हैं। इधर दूसरा, कब, किस तरह, किसके हृदयमें निर्दय होकर छुरा मार दूंगा— इसी सोचमें पड़ा हुआ है। यह रोगीका रोग, शोकाकुलका शोक और भी बढ़ा देता है, विपद्‌में पड़े हुओंके सिरपर और भी ग़ज़ब ढा देता है और बुद्धिके फेरसे या शैतानी हरकतके कारण दिनको रात और रातको दिन समझता हुआ, अपनी प्रपञ्चमें पड़ी हुई आत्माको ही समाजका एकमात्र पूज्य पदार्थ मानता है। अपनी इस क्षुद्रता और क्षुत् पिपासाके सामने यह धर्म, नीति, इहलोक, परलोक और सब कालके साथी अपने अध्यात्म जीवनको ही नष्ट कर डालनेका यत्न करता है। परन्तु कैसा

आश्चर्य है। इन दोनोंमें इतना भयानक भेद रहते हुए भी, नीति-मण्डलकी प्रान्तसीमापर ये दोनोंही श्रेणीके मनुष्य, प्रकृतिके अनेक लक्षणोंसे एकसे हैं!

तपस्याका एक लक्षण आत्मविस्मृति भी है। जो तपमें लग जाते हैं, वे स्वभावतः ही अपने आपको भूल जाते हैं। वे दुनियांमें मौजूद रहकर भी नहीं रहते। उनकी दृष्टि, श्रुति, आशा और आकांक्षा सब उसी तपस्यामें जाकर लीन हो जाती है। वे नृत्य गीतके कलकूजन और कोलाहलमें भी पर्वतकी तरह अचल अटल होकर बैठे रहते हैं। कवि कहते हैं,—

"श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्,
हरः प्रसंख्यानपरो बभूव।
आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः,
समाधिभेद प्रभवोभवन्ति॥"

अर्थात्—"अप्सराएं चारों ओरसे नाच गा उठीं, पर उनकी आवाज़ शिवके कानोंमें न पहुँची। महादेवका ध्यान न टूटा। क्योंकि, जो तपस्याके प्रभावसे अपनी आत्मापर विजय प्राप्त कर लेते हैं, लाख विघ्न होने पर भी उनकी समाधि नहीं भङ्ग हो सकती।"

तपस्याका एक दूसरा लक्षण उन्मत्तता है। यह उन्मत्तता आत्मानन्द-जनित उत्साहके सिवा और कुछ नहीं है। इसीलिये यदि इस संसारमें कोई सच्चा उन्मत्त है, तो वह एकाग्रचित्त योगी ही है। मदिरा क्या ख़ाक मनुष्यको मस्त कर सकती है!

नदिपके प्रभावसे थोड़ी ही देरके लिये मनुष्यकी रगोंमें गरमी पैदा होती है, जोश उबल आता है और शान्त-भाव नष्ट होकर अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, किन्तु जिन्होंने गैलिलियो अथवा गट्टेशकी तरह ज्ञानकी तपस्यामें अथवा उससे भी किसी ऊँचे तत्त्व-साधनमें अपनेको डुबा रखा है, उनके हृदयकी मत्तता सदा, सब समय, एकसी बनी रहती है, उनकी मस्ती कभी उतरती नहीं, खुमारी कभी टूटती नहीं।

यदि आत्म-विस्मृति और उन्मत्तता, इन दोनों लक्षणोंसे मिलाकर देखा जाये, तो जो लोग प्रकृतिके विकृत प्रवाहमें पड़कर उसकी अन्तिम सीमातक पहुँचना चाहते हैं, उनकी मानसिक अवस्था भी ठीक ऐसी ही रहती है। वे भी आत्म-विस्मृत, वाह्यज्ञान-शून्य और दिन-रात उन्मत्त बने रहते हैं। उनके लिये दिन-रात बरावर हैं। वे घरमें रहें या बनमें, दोनों हालतोंको वे एक समान समझते हैं। वे बिना रोगके रोगी, बिना जराके जीर्ण, बिना शोकके ही शोकाकुल रहते हैं। वे सब समय न जाने किस धुनमें मस्त रहते हैं! सच पूछो, तो भक्ति आदि ऊँचे भावोंके असाधारण उच्छ्वासमें जो मोह है, भोग-लालसाके अत्युत्कट और अप्रकृत विकासमें भी वैसाही मोह भरा रहता है। इसीसे जैसे तपस्वी अपने भावमें आप ही डूबा रहता है, वैसे ही जिन्होंने पाशविक सुखके मोहमय प्रलोभनमें पड़कर प्राण, मन, बुद्धि, बल, जीवन सब प्रकारकी उन्नति और जीवनकी सुखशान्ति भी खो दी है—वे भी अपने ध्यानमें आपही

मरा करते हैं। नहीं, तो वे आगको देखकर जलनेवाले पतङ्गकी तरह अपने दिलोजिगर, दीनोईमान—सबको जलती भट्ठीमें झोंकनेके लिये झाँककर तैयार हो जाते हैं!

और देखो, जो लोग प्रीति और सत्यके बलसे बलवान् और न्यायवान् हैं—जो लोग उदार प्रीति और उज्ज्वल सत्यकी पवित्र ज्योतिसे अनिर्वचनीय सौन्दर्य लाकर, शङ्कराचार्य आदि महापुरुषोंकी भाँति सांसारिक जीवनके विषैले विकारोंका संशोधन करने अथवा धर्मकी विशुद्ध नींव डालनेके लिये उठ खड़े होते हैं, उनका प्रधान लक्षण क्या है? यही, कि वे निर्भीक, निष्कपट, पक्षपात-शून्य और स्तुति-निन्दासे परे होते हैं। लोग भला कहें या बुरा, करोड़ों कण्ठोंसे यश गाया जाये या अयुत कण्ठोंसे निन्दा की जाये, वे इसकी कोई परवा नहीं करते। सच पूछो, तो पृथ्वीके महापुरुषोंने जितनी निन्दा और गाली सुनी है, जितना कलङ्क सिरपर उठाया है, उसका सौवाँ हिस्सा भी यदि आजकलके साधुओंको नसीब हो, तो ये आग ही बरसा दें। पर महात्माओंके निकट तो वह निन्दा इसी तरह आकर चली जाती है, जैसे कोई नदी बड़े वेगसे आकर पहाड़से टकरा मनमारे दूसरी राह चली जाती है, पहाड़ उसकी टक्करसे ज़रा भी नहीं हिलता। निन्दा और कलङ्कके सिवा आपद्-विपद्का भय भी आता है। भय तो इन महापुरुषोंकी प्रतिभामयी मनोवृत्तिमें स्थान ही नहीं पा सकता। जो लोग धर्म, प्रीति या नीतिकी कोई नयी छटा दिखानेके लिये संसारभरके मनुष्योंके

विरुद्ध पर्वतकी तरह अटल होकर खड़े होते हैं, जो जीवनके क्षन-क्षणमें यातना, लाञ्छना, विडम्बना और विघ्न-विपत्ति झेलनेके लिये तैयार रहते हैं, जो सुखको सुख या दुःखको दुःख नहीं मानते, मृत्युका कराल ग्रास जिनके लिये स्वर्ग-सम्पदकी पहली सीढ़ी है, उन्हें भला इस संसारमें डर काहेका ? यदि ऐसे-ऐसे अलौकिक उपादानोंसे सिरजे हुए महात्माओंके हृदयमें भी भय पैदा होने लगेगा, तो सत्य कहाँ जाकर टिकेगा ? यदि ऐसे-ऐसे लोग भी क्षणजीवी मनुष्योंकी तरह भयकी चिन्तासे डरें या विचलित होंगे, तो मनुष्य-समाजको तोड़-मरोड़ कर, जला-गलाकर, अश्रु-जलसे धोकर, समय समयपर नये साँचेमें कौन ढाला करेगा ? परन्तु हाय ! फ्रान्सीसी युवराज फ्रन्सोआ * और फ्रान्सीसी राज-पुरुष मेरावो+ की तरह पाशव विकारसे प्रवल वेगसे वलवान् होते हैं, वे भी अधिकतर इसी तरह भय-शून्य, मृ-क्षेप-शून्य, स्तुति-निन्दासे लापरवाह और अभिमानसे अटल बने रहते हैं ! वे भी अपने आपमें ही लीन रहते हैं। उनकी बुद्धि संसारभरसे बढ़कर होती है, और इस संसारमें जहाँतक पौरुष

* फ्रान्सके अपुत्रक राजा हेनरीका भाई। तृतीय हेनरीका नाम लेते हुए इतिहास वेत्ता गण लज्जित हो जाते हैं, पर युवराज फ्रन्सोआसे तो वह अच्छा ही था। जिन लोगोंने इसे अपना प्यारा मित्र समझ, अपने प्राणोंकी परवा न कर, बार बार इसकी जान बचायी थी, उन लोगोंको भी इसने अपना कोई मतलब सिद्ध करनेके लिये जानसे मरवा डाला था।

+ इसका परिचय पूर्व निबन्धमें दिया जा चुका है।

और पराक्रमकी कल्पना हो सकती है, वह सब उनकी बपौती है। संसारभरके मनुष्य उनके लिये चूहे बिल्लीसे बढ़कर नहीं,—इसीलिये मनुष्यकी स्तुति, निन्दा, आशीर्वाद, शाप आदिको तो वे पैरोंसे ठुकरानेयोग्य भी नहीं समझते। तुम किसे उपदेश दोगे? किसके आगे सुनीति और कुनीति तथा उन्नति और अवनतिकी कथा सुनाने जाओगे? जहाँ प्रकृतिका विकार, अभिमानकी विकृतिसे गँठबन्धन किये, मनुष्यहृदयके सभी स्वर्गीय भावोंको ग्रास कर लेता है, मनुष्यको मनुष्यसे विरक्त, वीत-स्पृह और घृणान्वित कर डालता है—वहाँ भला कोई तत्त्वोपदेश काम कर सकता है? जहाँ दर्पका ही दौरदौरा है और दया पास भी नहीं फटकने पाती; जहाँ धर्म झूठी चीज़ है, धर्मका बन्धन कच्चा सूत है, सर्वग्रासिनी पैशाचिक क्षुधा ही समस्त हृदय और उनकी अधीश्वरी बनी बैठी है वहाँके गहरे अन्धकारको भला कौनसी रोशनी हटा सकती है?

तब क्या सचमुच ज्ञान और अज्ञान, योगमत्तता और भोगमत्तता, धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य, स्वास्थ्यका सामर्थ्य और रोगका विकार एक ही वस्तु है! चूँकि सुकरातने कह दिया, कि मैं कुछ भी न जान सका, इसीलिये क्या संसार अब ज्ञानका अनुसन्धान करना ही बन्द कर दे? और प्रकृतिका प्रमाद और पापका मोह भी निर्भीकता और पौरुष उत्पन्न करता है, इसीलिये क्या मनुष्य पापण्ड असुर बन जाये? इन प्रश्नोंका उत्तर देनेकी चेष्टा करनी व्यर्थ है। मनुष्य-हृदयका अन्तः-प्रवाह

इसका प्रतिरोधी है, मनुष्य समाजका शक्ति-प्रवाह भी स्वभावतः इसका विरोधी है। तो भी यदि मनुष्यकी बुद्धि उसे इसी सिद्धान्तपर पहुँचा दे, तो सारा मानव-समाज ध्वंस हो जायेगा, इसकी सारी गाँठें खुल जायेंगी, उच्छृंखलता मूर्त्ति धारणकर अन्धकारमें चक्कर लगाया करेगी और संसारमें एक ऐसा भयङ्कर हाहाकार-रव उठेगा जिससे तीनों लोक काँप जायेंगे। यदि हम अपनी घड़ी बिगाड़ रखें, तो हमारे समयके ज्ञानमें फेर आ सकता है, पर संसारके समयमें कुछ भी हो फेर न होगा। हम अपनी आँखें आप ही फोड़ डालें, तो दुनियां थोड़े ही अन्धी हो जायेगी ! सूर्य-चन्द्रकी रोशनी थोड़े ही बुझ जायेगी ! हमारे लिये इस संसारके कार्य-क्रममें विकार क्यों पैदा होने लगा ! हम अज्ञान और अविद्याका पल्ला पकड़कर अपनी बुद्धिका नाश और प्रकृतिका विकार-साधन करनेकी चेष्टा कर सकते हैं; परन्तु इससे हमारे ही मनुष्यत्वमें बट्टा लगेगा, किसी औरका कुछ भी नुक़सान न होगा। हम अनीतिका सहारा लेकर दूसरोंकी सुख-शान्ति और स्वत्वाधिकारको कुछ कालके लिये पैरोंतले कुचल दे सकते हैं, पर उसके संसारका न्याय-धर्म नहीं उलट जायेगा। इसके विपरीत, जब हम स्वयं दूसरों द्वारा उसी प्रकार कुचले जायेंगे, जब दूसरे आकर हमारे स्वत्व और अधिकारको छीननेके लिये आसुरिक बल और अत्याचारका हाथ ऊँचा करेंगे, तब 'हा धर्म !' कहकर रोनेके सिवा हमारी कोई गति न रह जायेगी। दीप जलाते और बुझते समय बड़े

ज़ोरसे जल उठता है; परन्तु एककी रोशनी अन्धेरा दूर करती है और दूसरेकी रोशनी अन्धेरेको न्यौता देकर बुलाती है। स्वास्थ्यकी सञ्जीवनी स्फूर्त्ति और रोगको प्रमादिनी गति, दोनों क्षणभरके लिये एकसी शक्तिशालिनी मालूम पड़ती हैं; परन्तु एकके बाद दीर्घ जीवन और दूसरेके बाद जीवनका नाश होता है। उषा और प्रदोष देखनेमें एकसे मालूम होते हैं सही, परन्तु उषाके बाद प्रफुल्ल ज्योति आती है और प्रदोषके बाद घोर अन्धकार। तब आशाकी बात इतनी ही है, कि ज्योति हो या अन्धकार, उदय हो या लय; परन्तु सबका सद्यःप्रसूत किंवा सुदूर-सम्भावित परिणामफल—मङ्गलमय है।

प्रेमाश्रम

लेखक—श्रीयुत "प्रेमचन्द"

यह "प्रेमाश्रम" श्रीयुक्त प्रेमचन्दजीकी रचनाकी पराकाष्ठा है। मनुष्य जीवनकी सभी घटनाओंका अद्भुत समावेश है। पुस्तक क्या है संसारकी वर्त्तमान परिस्थितिका जीता जागता चित्र है। भारतकी धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक और गार्हस्थ्य अवस्थाओंका अद्भुत स्वरूप है। इसमें आपको पुलिसकी चालबाजी, वकीलोंके हथकंडे, डाक्टरोंकी धूर्त्तता, धर्मका ढोंग, राजनैतिक घातें, विदेशी सरकारकी नीति, कृषकोंकी दुर्दशा, जमींदारोंकी ज्यादती आदि प्रायः सभी विषयोंका बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन मिलेगा।

इसके सिवाय आप यह भी देखेंगे कि सच्ची देशभक्तिके आगे अभिमान, लोभ, निष्ठुरता आदि किस तरह सिर झुका देते हैं। अच्छी संगतिसे दुष्टात्मा भी किस तरह महान आत्मा बन सकता है, सब कुछ देकर भी किस तरह एक साध्वी स्त्री अपना धर्म निबाहती है। सच्चे उदाहरणसे ऐसे लोग भी साधु बन सकते हैं जिनको रुपयेके लिये कोई कार्य भी दुःसाध्य नहीं हो। कहांतक लिखा जाय प्रायः सभी विषयोंमें यह उपन्यास आदर्श है। एक बार आरम्भ करनेपर समाप्त किये बिना पुस्तक छोड़नेको जी नहीं चाहता। बढ़िया चिकने कागजपर छपा है, २८ लाइनका पेज होनेपर भी पृष्ठ संख्या ६६० के लगभग है। सुन्दर खादीकी जिल्द सहित मूल्य ३॥)

मिलनेका पता—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता।